सत्योपाख्यानम्



सत्योपाख्यानम्



सम्पादकः
डॉ. शैलजापाण्डेयः

Ganganatha Jha Campus Text Series No. 56

General Editor
Dr. Prakash Pandey

Satyopākhyānam

Edited by
Dr. Shailaja Pandey



Rashtriya Sanskrit Sansthan
Ganganatha Jha Campus
Chandrashekhar Azad Park
Allahabad - 211 002

2011

Published by : Principal
Rashtriya Sanskrit Sansthan
Ganganatha Jha Campus
Chandrashekhar Azad Park
Allahabad - 211 002 (U.P.) India

First Edition : 2011

Price :

Printed At :
Academy Press
Allahabad

गङ्गानाथझापरिसरमूलग्रन्थमाला प्रसूनम् - 56

प्रधानसम्पादकः
डॉ. प्रकाशपाण्डेयः

सत्योपाख्यानम्

सम्पादकः
डॉ. शैलजापाण्डेयः

राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्
गङ्गानाथझापरिसरः
आजादोद्यानम् , इलाहाबादः 211002
2011

प्रकाशकः प्राचार्यः
राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्
(मानित-विश्वविद्यालयः)
गङ्गानाथझा-परिसरः,
इलाहाबादः -2

संस्करणम् प्रथम

प्रकाशनवर्षम् - 2011

मूल्यम् :

पृष्ठविन्यासकारः
ब्रह्मानन्दमिश्रः

मुद्रणम्
एकेडमी प्रेस
दारागंज, इलाहाबाद

आमुखम्

ॐ नमश्चण्डिकायै

जन्म कर्म च मे दिव्यं एवं यो वेत्ति तत्त्वतः।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन।।

श्रीमद्भगवद्गीता ४.९

अव्यक्त रूप से व्यक्त रूप में प्रादुर्भाव होना अवतार कहलाता है। यह अवतार परम अलौकिक और रहस्यमय है। इसलिए भगवान् ने उपर्युक्त श्लोक में कहा है कि, भगवान् के अवतरित होने के दिव्य रहस्य को जो जानते हैं वे भगवान् को प्राप्त हो जाते हैं।

भगवान् सभी प्राणियों पर अहैतुकी दया करते हुए संसार के परम हित के लिए अवतार लेते हैं। श्रीमद्भागवत में श्री ब्रह्माजी के कथन का एक प्रसङ्ग है कि –

सुरेषु ऋषिष्वीश तथैव नृष्वपि तिर्यक्षु यादस्स्वपि तेऽजनस्य।
जन्मासतां दुर्मदनिग्रहाय प्रभो विधातः सदनुग्रहाय च।।
को वेत्ति भूमन् भगवन् परात्मन् योगेश्वरोतीर्भवतस्त्रिलोक्याम्।
क्व वा कथं वा कति वा कदेति विस्तारयन् क्रीडसि योगमायाम्।।

श्रीमद्भागवत १०,१४,२०,११

देवता, ऋषि, मनुष्य, तिर्यक् और वैसे ही जलचरादि योनियों में अजन्मा भगवान् का जन्म असत् पुरुषों के मद का मंथन और सत् पुरुषों पर कृपा करने के लिए ही होता है। भगवान् सर्वव्यापक परमात्मा और योगेश्वर हैं। जिस समय वे अपनी योगमाया का विस्तार कर क्रीडा करते हैं उस समय त्रिलोकी में कौन जान सकता है कि उनकी लीला कहाँ, किस प्रकार, कितनी और कब होती है?

गीता में भगवान् ने स्वयं कहा है कि–

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया।।

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।।
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे।।

श्रीमद्भागवद्गीता ४,६-८

अजन्मा और अविनाशी स्वरूप होते हुए भी और समस्त प्राणियों का ईश्वर होते हुए भी अपनी प्रकृति को अधीन कर अपनी योगमाया से प्रकट होता हूँ। जब-जब धर्म की हानि और अधर्म की वृद्धि होती है तब-तव मैं अपने रूप को रचता हूँ, साकार रूप में प्रकट होता हूँ। साधु जनों का उद्धार करने के लिए, पापकर्म करने वालों का विनाश करने के लिए और धर्म की संस्थापना के लिए प्रत्येक युग में प्रकट हुआ करता हूँ।

यद्यपि उपरि वर्णित सभी कार्य विना अवतार लिए भी भगवान् कर सकते हैं फिर भी लोगों पर विशेष दया करके अपने दर्शन, स्पर्श और भाषण आदि के द्वारा सुगमता से उन्हें उद्धार का सुअवसर देने के लिए और अपने भक्तों को अपनी दिव्य लीलाओं का आस्वादन कराने के लिए इस भूलोक में साकार रूप से प्रकट होते हैं। इन अवतारों में धारण किए गए रूप, गुण, प्रभाव, नाम, माहात्म्य और दिव्य कर्मों का श्रवण, कीर्तन और स्मरण करके सभी लोग सहज ही संसार सागर से पार हो जाते हैं। यह बिना अवतार के संभव नहीं है इसलिए भगवान् अवतार लेते हैं। अवतार लेने पर भगवान् एक क्षेत्र विशेष में सीमित नहीं रहते हैं। निराकार रूप से सर्वत्र व्याप्त हैं और अग्नि के सदृश चकमक पत्थर या दिया सलाई आदि के माध्यम से जहाँ चाहें प्रकट किया जा सकता है। जिस समय एक स्थान में अग्नि को प्रकट किया जाता है उस समय अन्यत्र अग्नि का अभाव नहीं होता है। एककालावच्छेदेन अनेक स्थानों पर प्रकट किया जा सकता है। जहाँ भी अग्नि प्रकट होती है उसमें पूर्ण शक्ति रहती है। एक साथ अलग-अलग स्थान पर प्रकट होने के कारण दाहकता में कमी नहीं आती है। भगवान् के अवतार में भी वही स्थिति होती है। भगवान् निराकार रूप से सर्वत्र व्याप्त हैं। एक साथ अनेक स्थानों पर प्रकट हो सकते हैं। श्रीमद्भागवत में एक प्रसङ्ग आता है कि एक बार भगवान् श्रीकृष्ण मिथिला गए। वहाँ के राजा बहुलाश्व उनके अनन्य भक्त थे। वहीं श्रुतदेव नामक एक ब्राह्मण भी भगवान् का अनन्य भक्त था। दोनों ने एक ही समय अपने-अपने घर में पधारने के लिए भगवान् से प्रार्थना की। दोनों ही उपर्युपरि भक्त थे। दोनों में से किसी के भी मन को भगवान् तोड़ना नहीं चाहते थे। इसलिए दोनों में से किसी को भी न जनाते हुए एक साथ दो रूप धारण कर एक कालावच्छेदेन दोनों के घर जाकर दोनों को ही कृतार्थ किया। यथा-

भगवांस्तदभिप्रेत्य द्वयोः प्रियचिकीर्षया।
उभयोराविशद् गेहमुभाभ्यां तदलक्षितः।।

श्रीमद्भागवत १०,८६,२६

इस प्रकार अनेक प्रसङ्ग श्रीमद्भागवत में आते हैं। (श्रीमद्भागवत १०,६९,१३-४३)

भगवान् श्रीराम के विषय में भी इस प्रकार का वर्णन आता है। लंका विजय के पश्चात् जब भगवान् श्री राम अयोध्या लौटे, उस समय अयोध्या का हर प्राणी उनके दर्शन के लिए आतुर था। इसलिए उन्होंने उस समय असंख्य रूप धारण कर लिए और पल भर में सभी से मिल लिए। यथा–

प्रेमातुर सब लोग निहारी। कौतुक कीन्ह कृपाल खरारी।।
अमित रूप प्रगटे तेहि काला। जथाजोग मिले सबहि कृपाला।।
छन महि सबहि मिले भगवाना। उमा मरम यह काहु न जाना।।

रामचरितमानस उत्तर. ६/४,५,७

मर्त्यलोक में अवतार लेने पर भी उनका शरीर पाञ्चभौतिक या मायिक नहीं होता है और न ही कर्म से प्रेरित होता है। ये स्वयं ही गीता में कहते हैं–

न मां कर्माणि लिम्पन्ति न मे कर्मफले स्पृहा।
इति मां योऽभिजानाति कर्मभिर्न स बध्यते।।

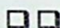
(गीता ४,१४)

भगवान् का अवतार मत्स्य, कूर्म, वाराह, नरसिंह, वामन आदि के रूप में भी हुआ है। इनके अतिरिक्त भगवान् का एक और अवतार होता है। इसे अर्चावतार कहते हैं। पूजा के लिए भगवान् की धातु, पाषाण, मृत्तिका आदि से प्रतिमाएँ बनायी जाती हैं। वे भगवान् की अर्चाविग्रह कहलाती हैं। कभी-कभी उपासक के प्रेमबल और निष्ठा से मूर्तियाँ चेतन हो जाती हैं। चलने-फिरने लगती हैं। हँसने बोलने लगती हैं। इन अर्चाविग्रहों में भगवान् की शक्ति के उतर आने को अर्चावतार कहते हैं।

प्रस्तुत ग्रन्थ सत्योपाख्यान में रामावतार का वैशिष्ट्य, भगवान् राम को विष्णु का अवतार, लक्ष्मण को शेषनाग का अवतार और भरत और शत्रुघ्न को शंख एवं चक्र का अवतार माना गया है। मन्थरा के पूर्वजन्म का वृत्तान्त और विष्णु से जन्मजात वैर भी ग्रन्थ का मुख्य प्रतिपाद्य प्रतीत होता है। दशरथ एवं कैकेयी के विवाह में नारद और देवयोगिनी की भूमिका का वर्णन भी इस ग्रन्थ का वैशिष्ट्य है।

गङ्गानाथ झा परिसर की सहायक आचार्या डा० शैलजा पाण्डेय द्वारा इस ग्रन्थ के सम्पादन एवं प्रकाशन से न केवल मातृका का प्रकाशन हुआ है अपितु साङ्ग, सायुध, सवाहन भगवान् श्री राम कथा के अध्ययन, मनन और चिन्तन से आम पाठक को पारलौकिक सुख की प्राप्ति का मार्ग भी प्रशस्त हुआ है। अतः डा० श्रीमती शैलजा पाण्डेय जी को धन्यवाद और वर्धापन।

प्रो० सर्वनारायण झा
प्राचार्य (का०)



प्ररोचना

सत्योपाख्यान : एक परिचय

यह ग्रन्थ राम कथा साहित्य की अमूल्य निधि है। राम-कथा परक इस ग्रन्थ का नाम सत्योपाख्यान है – अर्थात् सत्य अथवा सत्या का उपाख्यान। इस ग्रन्थ में सत्य शब्द का प्रयोग श्रीराम के लिए अत्यल्प है किन्तु सत्या शब्द का प्रयोग अधिक प्राप्त होता है। यहाँ सत्या शब्द के दो अर्थ प्राप्त होते हैं–अयोध्या एवं सीता। ग्रन्थ में अयोध्या नगरी परक अर्थ का प्रयोग अधिक प्राप्त होता है। सत्या अयोध्या नगरी का ही एक अभिधान है। तीनों अर्थ इस प्रकार प्राप्त होते हैं–

१. सत्या, अयोध्या–

यह भगवान् विष्णु की आदि पुरी है–

विष्णोराद्या पुरी सत्या तस्या माहात्म्यमीदृशम्।

–अ. ३४।२२

इस पुरी के सम्मुख पापी टिक नहीं पाते। उनके सम्मुख आते ही यह पुरी अपनी गदा से उन्हें मारती है–

उद्यतायुद्धद्दोर्दण्डाः सत्यायाः सन्मुखं गताः।
अयोध्यापि महावीर्या यथा नाम तथा गुणाः।।

ताडितायोध्यया सर्वे गदया भीमवेगया।
पलायनपराः सर्वे पुरस्तस्या न तस्थिरे।।

३४।१४,१५

लोक एवं वेद में प्रसिद्ध अयोध्या पुरी सत्या के साथ-साथ विमला नाम से भी जानी जाती है–

सत्या च विमला चैव पुरी चाद्या प्रकीर्तिता।
अयोध्या नाम विख्याता वेदे लोके तथैव च।।७९।३

२. सत्या, सीता–

इस ग्रन्थ में सत्या शब्द का दूसरा अर्थ सीता दिया गया है। ग्राम-वधुओं ने अयोनिजा सीता को सत्या एवं इन्दिरा (लक्ष्मी स्वरूपा) माना है–

सत्यामयोनिजां सीतामिन्दिरां मेनिरे स्त्रियः। –७२।१६

३. सत्य, श्रीराम–

भगवान् श्रीराम स्वयं नारायण एवं परब्रह्म हैं। यह चित्, सत्य एवं आनन्द स्वरूप हैं एवं योगीगण इन्हीं में अपना मन रमाते हैं। इनके इस सत्यस्वरूप का उल्लेख ग्रन्थ में स्थान-स्थान पर किया गया है। ग्रन्थ के मङ्गलान्त में इनकी स्तुति करते हुये कहा गया है–

एवं ध्यायेत् सदा रामं जानकीपतिमव्ययम्।
रमते योगिनो यस्मिन् सत्यानन्दे चिदात्मनि।।
इति रामपदेनासौ परब्रह्माभिधीयते। –७९।२,३

यद्यपि पूरे ग्रन्थ में सत्य रूप श्री राम का वर्णन है किन्तु ग्रन्थ में सत्या शब्द का प्रयोग अयोध्या के अर्थ में अधिक प्राप्त होता है। समग्र राम-कथा भी अयोध्या पुरी के चतुर्दिक् ग्रथित है अतः सत्योपाख्यान अयोध्या पुरी की कथा अधिक प्रतीत होती है। अयोध्या की संज्ञा सत्या सम्भवतः इसलिये है क्योंकि यह सच्चिदानन्द रूप श्री विष्णु की आदि-पुरी है एवं यहाँ उनका सर्वदा वास रहता है। सत्य (श्री विष्णु) को सदैव धारण करने के कारण यह पुरी सत्या है। श्री विष्णु की शक्ति के रूप में लक्ष्मी ही सीता के रूप में अवतरित हैं, अतः सीता को भी सत्य-रूप श्री राम की शक्ति सत्या कहा गया है।

सत्योपाख्यान में राम-कथा के कतिपय प्रमुख पात्र

राम, लक्ष्मण, भरत एवं शत्रुघ्न

सत्योपाख्यान की कथा में भगवान् श्रीराम आदि चारों भाइयों को शेषशायी, शङ्ख एवं चक्रधारी नारायण का चार रूपों में विभक्त होना दिखाया गया है। यह अन्यत्र नहीं प्राप्त होता है।(श्री नारायण के इस स्वरूप का वर्णन अगस्त्य संहिता,३/९-१०,सम्पा. पं.भवनाथ झा, महावीर मन्दिर प्रकाशन ,पटना ,२००९में भी किया गया है।) भगवान् राम साक्षात् नारायण तथा लक्ष्मण रजत विग्रह वाले, सहस्र शिरों वाले शेष हैं जो सदैव नारायण की सेवा में तत्पर रहते हैं। भरत शंख के अवतार हैं एवं चक्र शत्रुघ्न हैं। भगवान् विष्णु के रामावतार एवं शेष के लक्ष्मणावतार का वर्णन सर्वत्र प्राप्त होता है किन्तु भरत

एवं शत्रुघ्न के शंख एवं चक्र होने का उल्लेख नहीं प्राप्त होता। इस तथ्य का वर्णन सत्योपारख्यान में कई स्थानों पर है।

इस ग्रन्थ में प्रथमतः द्वितीय अध्याय में इसका उल्लेख है। महर्षि वशिष्ठ से कौशल्या आदि रानियाँ कभी-कभी आने वाले स्वप्न का उल्लेख करती हैं। कौशल्या कहती हैं कि उन्हें अपना पुत्र अत्यन्त तेजस्वी, शंख एवं चक्र से युक्त गरुड़ पर विराजमान दिखाई पड़ता है—

कदाचित् रामं पश्यामि स्वप्ने परमभास्वरम्।
गरुडोपरि राजन्तं शङ्खचक्रधरं सुतम्।

—२।२,३

इस प्रकार सुमित्रा अपने पुत्र लक्ष्मण को सहस्रशिर वाले रजत शरीर से युक्त देखती हैं—

ममापि शृणु विप्रर्षे स्वप्ने पश्यामि लक्ष्मणम्।
सहस्रशिरसं नागं रजतस्यैव विग्रहम्।

—२,३,४

कैकेयी को अपने पुत्र भरत शंख रूप में स्वप्न में दिखाई पड़ते हैं—

अहं पश्यामि मो विप्र भरतं शङ्खरूपिणम्। —२।५

अन्य प्रसंग में सीता अपनी सखी से श्री विष्णु के रामावतार की चर्चा करते हुये कहती हैं कि नारायण भूमि के भार का हरण करने के लिये एवं रावण वध के लिये श्रीराम का अवतार लेंगे। उनके साथ शेष, शंख एवं सुदर्शन चक्र भी दशरथ के गृह में अयोध्या में अवतरित होंगे—

अयं मम पतिः श्रीमान् शेषेन चैव शङ्खेन च।
सुदर्शनेन त्वयोध्यायां गृहे दशरथस्य च।।

अ. ५०।३६,३७

तीसरा प्रसंग राम-सीता विवाह के समय प्राप्त होता है। सीता की शारदा नामक सखी ने श्रीरामादि के वास्तविक स्वरूप को पहचान लिया था। उसने हास-परिहास करते हुये श्रीराम से कहा कि आप नारायण, लक्ष्मण शेष, भरत शंख एवं शत्रुघ्न चक्र के रूप में मुझे दिखाई पड़ रहे हैं—

भवान्नारायणो देवो श्यामसुन्दरविग्रहः।
लक्ष्मणः शेषरूपश्च भरतः शङ्खमूर्तिभृत्।।

शत्रुहा चक्ररूपश्च मया ह्येवं विलोकिताः।

—६१।२५,२६

इस प्रकार श्रीराम अपने तीनों भाइयों समेत शंख, चक्र एवं शेषनाग से युक्त भगवान् नारायण के अवतार कहे गये हैं, जिन्होंने धरा-धाम के कष्ट के निवारण हेतु अयोध्या पुरी में राजा दशरथ के घर अवतार लिया था।

इस कथा में विशिष्ट तथ्य भरत का शंख होना एवं शत्रुघ्न का सुदर्शन चक्र होना है। लक्ष्मण के रूप में शेषावतार एवं श्री राम के रूप में भगवान् विष्णु का अवतार अन्य राम कथाओं में भी परिलक्षित होता है।

सीता, उर्मिला, माण्डवी एवं श्रुतकीर्ति—

सीता को नारायण की शक्ति लक्ष्मी का, उर्मिला को शेषनाग की शैषी शक्ति का, माण्डवी को पाञ्चजन शंख की शक्ति तथा श्रुतकीर्ति को सुदर्शन की शक्ति का अवतार कहा गया है। सीता की सखियाँ अणिमा आदि विभूतियाँ हैं। सीता इस रहस्य को अपनी सखी वासन्तिका के समक्ष प्रस्तुत करती हैं—

अहं कन्या भविष्यामि जनकस्य महीतलात्।
शैषी शक्तिरुर्मिला च जनकस्यैव ह्यौरसी।।

पत्नी पाञ्चजनस्यापि माण्डवीति प्रकीर्तिता।
श्रुतकीर्त्तिः तु चक्रस्य कुशध्वज सुते इमे।।

उत्पत्स्येते महाभागे विमले प्रस्तुते जनैः।
भविष्यन्ति च मे सख्यो अणिमाद्याः विभूतयः।।

—५०। ३८,४०

शान्ता—

शान्ता को श्रीराम की बहन एवं मुनि शार्दूल श्रृषि शृङ्ग की पत्नी कहा गया है। इन्होंने अपने आश्रम में श्रीराम का तीनों भाइयों समेत एवं उनके सैनिकों सहित स्वागत किया था—

शान्तापि भगिनी तस्य रामस्य परमात्मनः।
पाद्यं अर्घ्यं विधायाथ चक्रे नीराजनं ततः।।

—४९। ३८

लक्ष्मीनिधि एवं सिद्धि—

लक्ष्मीनिधि राजा जनक के पुत्र एवं सीता के भाई हैं। इन्होंने सीता के विवाह

के अवसर पर श्रीराम सहित तीनों भाईयों एवं राजा दशरथ का स्वागत किया था। वर रूप में द्वार पर उपस्थित चारों भाइयों एवं राजा दशरथ को सम्मान देने के लिये गज के उतरते समय हाथ पकड़ कर नीचे उतारा था–

जनकस्य च पुत्रो वै नाम्ना लक्ष्मीनिधिर्महान्।
हस्तावलम्बनं दत्त्वा गजाद्राममरोपयत्।
तथैवान्यान् कुमारान् वै तथा दशरथं नृपम्।।

–६०। १०-११

सिद्धि लक्ष्मीनिधि की पत्नी थी एवं राजा जनक की पुत्रवधू थी–

तासां मध्यात् समुत्थाय राज्ञी लक्ष्मीनिधेस्तुया।
नाम्ना सिद्धिस्तु सा ख्याता सखी यस्यास्ति शारदा।
वधू जनकराजस्य प्रिया लक्ष्मीनिधेः शुभा।।

–६१। ५-६

श्रीरामादि के साथ विवाह के अवसर पर इनका हास-परिहास प्राप्त होता है।

इनके अतिरिक्त राम-कथा में राजा दशरथ, उनकी पत्नियाँ कौशल्या, कैकेयी एवं सुमित्रा, राजा जनक, उनकी पत्नी एवं राजा जनक के भाई कुशध्वज आदि का वर्णन कई स्थानों पर प्राप्त होता है।

मन्थरा

यद्यपि मन्थरा का चरित्र सभी रामकथाओं में प्राप्त होता है किन्तु उसका जितना विशद वर्णन इस कथा में प्राप्त होता है, वैसा अन्यत्र परिलक्षित नहीं होता। मन्थरा के पूर्व जन्म का वृतान्त एवं श्री राम से उसका विरोध अत्यन्त विस्तार से वर्णित है एवं यह इस ग्रन्थ का वैशिष्ट्य भी है। मन्थरा का परिचय ग्रन्थ में इस प्रकार प्राप्त होता है–

दैत्य-कन्या–

मन्थरा दैत्य-वंश में उत्पन्न थी। उसके पीठ पर कूबर था एवं श्रीराम को वह क्रूर-दृष्टि से देखती थी। कैकेयी के अनुसार उसके पाप-समूह ही उसकी पीठ पर कूबर बनकर स्थित थे–

इदं पापसमूहं ते स्थगुरूपेण वर्तते।
पृष्ठोपरि महापापे श्रीरामे क्रूरदर्शिनी।।

–८। ३२,३३

यह पूर्व-जन्म में दैत्य राज विरोचन की पुत्री तथा प्रह्लाद की पौत्री थी–

नाम्ना विरोचनो दैत्यो ब्रह्मण्यः सत्यसङ्गरः।
तस्येयं मन्थरा कन्या पूर्वजन्मनि नागराः।।

–१०। ६

भगवान् विष्णु से युद्ध करते हुये, उनके प्रति मन में विरोध भाव रखते हुये उसकी मृत्यु हुई थी। अगले जन्म में वह कश्मीर देश में उत्पन्न हुई एवं कैकेयी के साथ उसकी प्रगाढ़-प्रीति थी। इसी से कैकय-नरेश ने विवाह के समय उसे भी कैकेयी के साथ राजा दशरथ के यहाँ भेज दिया था।

विष्णु से विरोध–

मन्थरा के पिता विरोचन अत्यन्त धर्मात्मा प्रतापी तथा ब्राह्मणों का सत्कार करने वाले थे। उन्होंने अपने प्रताप से देवों का राज्य प्राप्त कर लिया था। देवों ने पुनः अपने राज्य की प्राप्ति के लिये गुरू बृहस्पति से उपाय पूछा। देव-गुरू बृहस्पति ने देवों को ब्राह्मण बनकर विरोचन से उसकी आयु को माँगने का प्रस्ताव दिया। ब्राह्मण-वेष में उपस्थित देवों को यद्यपि विरोचन ने पहचान लिया था किन्तु ब्राह्मणस्वरूप का सम्मान करते हुये उनकी पूजा की एवं उनका अभिप्राय पूछा। उन्होंने अपनी याचना विरोचन के सम्मुख रखी। दैत्य विरोचन ने हँसते हुये अपने प्राणों का त्याग कर दिया। उसके इस त्याग पर स्वर्ग से उसके मृत-देह पर पुष्प-वृष्टि हुये। देव-गण तो अपना राज्य पाकर प्रसन्न हुये किन्तु दैत्यों में शोक छा गया।

इसके पश्चात् असुर-कर्म में निपुण विरोचन की पुत्री मन्थरा दैत्यों की रक्षा के लिये उठ खड़ी हुई। वह मय, शम्बर, बाण एवं बलि आदि दैत्यों के साथ देवों के विनाश के लिये युद्ध में प्रवृत्त हो गयी। दोनों पक्षों में तुमुल संग्राम हुआ। प्रथमतः देवों की पराजय हुई किन्तु बाद में नारायण की प्रेरणा से इन्द्र ने मन्थरा के मस्तक पर वज्र से प्रहार किया। इससे मन्थरा मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ी। सभी दैत्य युद्ध-क्षेत्र से भाग खड़े हुये। इन्द्र के प्रहार से उसका सिर, ग्रीवा एवं कटि-भाग भग्न हो गया तथा पीठ पर कूबर निकल आया। उसने रोते हुये इन्द्र को प्रेरित करने वाले विष्णु के प्रति मन में वैर पाल लिया तथा रोती-कलपती मन्थरा की मृत्यु हो गयी।

यही सत्योपाख्यान की खलनायिका भी है।

देवयोगिनी

देव-योगिनी का वर्णन अन्य राम-कथाओं में नहीं प्राप्त होता है। यह इस ग्रन्थकार की उद्भावना है। दशरथ एवं कैकेयी के विवाह में इसकी महती भूमिका रही

है। यह मोहिनी-विद्या की ज्ञाता थी।

एकबार महर्षि नारद अयोध्या पहुँचे। उन्होंने राजा दशरथ के सम्मुख कैकेयी का वर्णन करते हुये कहा कि इस कन्या के हाथ में स्थित रेखाओं से ज्ञात होता है कि उसका पुत्र यशस्वी, परम ज्ञानी एवं तपस्वी होगा। यह कन्या अतीव सुन्दरी है, अत: आपको उससे विवाह करना चाहिये। राजा अभी कैकेयी से किस प्रकार विवाह हो, इस विषय में चिन्तन कर ही रहे थे कि देवयोगिनी उनके समीप पहुँच गयी। उसने राजा दशरथ से चिन्ता का कारण पूछा। राजा ने सम्पूर्ण वृतान्त बताते हुये कहा कि यदि मैं अपना दूत कैकय नरेश के पास भेजूँ तो यह उपहास का कारण बनेगा।

इस पर योगिनी ने उन्हें सहयोग करने का वचन दिया और कहा, कि वह कैकेयी को मोहित करके विवाह करने के लिये नहीं, बल्कि स्वयं उसे स्वेच्छया विवाह करने के लिये प्रेरित करेगी। इसके पश्चात् वह कैकयपत्तन नगर पहुँची। वहाँ एक निर्मल सरोवर के पास निवास बनाकर तापसी वेष धारण कर स्थित हो गयी। वहाँ लोग प्राय: स्नान के लिये आते थे। वहाँ कैकेयी भी स्नान के लिये पहुँची। तापसी से कैकेयी की भेंट हुई। उसने कैकेयी को राजपत्नी होने का फल-कथन किया। इसके पश्चात् मोहिनी देव-योगिनी का केकय नरेश के गृह में प्रवेश हो गया। वहाँ कैकेयी को अपनी बातों से वशीभूत कर अयोध्या नरेश दशरथ का गुणगान किया एवं उसे अयोध्या नरेश में अनुरक्त किया। कैकेयी ने राजा दशरथ के प्रेम में वशीभूत होकर अन्न-जल का त्याग कर दिया। इसके पश्चात् कैकेयी के माता-पिता को अपनी पुत्री के अनुराग का ज्ञान हुआ। अनेक तर्कों के पश्चात् तथा राज पुरोहित गर्ग के परामर्श के अनुसार कैकय-नरेश विवाह के लिये तैयार हुये।

विवाह की सारी पृष्ठभूमि तैयार हो जाने पर योगिनी ने राजा दशरथ को पूरा वृतान्त सुनाया। इस प्रकार देव-योगिनी के चरित्र की परिकल्पना ग्रन्थकार की अनूठी योजना है।

इस प्रकार ग्रन्थकार ने ग्रन्थ में राम कथा के प्रसिद्ध पात्रों के साथ नवीन उद्भावनाओं को जोड़ा है, साथ ही नवीन पात्रों की भी कल्पना की है।

तिथि एवं व्रत

सत्योपाख्यान चूँकि राम-कथा, परक ग्रन्थ है, अत: इसमें श्री राम से सम्बद्ध नवमीतिथि का माहात्म्य एवं व्रत तथा एकादशी तिथि का माहात्म्य एवं व्रत वर्णित है। इनका वर्णन इस प्रकार प्राप्त होता है–

नवमी

इस तिथि एवं व्रत का माहात्म्य ग्रन्थ के ३१ एवं ३२ वें अध्याय में किया गया है।

राम जन्म एवं सीता जन्म–

चैत्र मास की नवमी तिथि को पुनर्वसु नक्षत्र रहने पर भगवान् श्री राम का जन्म हुआ था–

चैत्रे मासे नवम्यां तु जातो रामः स्वयं हरिः।
पुनर्वस्वर्क्षसंयुक्ता सा तिथिः सर्वकामदा।।

–३२ । ७

इस तिथि का दूसरा महत्त्व सीता के प्राकट्य से जुड़ा हुआ है। वैशाख मास में शुक्ल पक्ष की पुष्य नक्षत्र से युक्त नवमी को मंगलवार के दिन भगवती सीता का भूमि से प्राकट्य हुआ था–

मासोत्तमे महापुण्ये वैशाखे माधवप्रिये।
कुजवारे शुक्लपक्षे नवमी पुष्यसंयुता।।
पृथिव्या पूजनं कृत्वा जनकस्तु नरेश्वरः।
हलेन कर्षणं चक्रे सर्वेषां पश्यतां सताम्।।
लाङ्गलस्य मुखाग्रात्तु रमाकन्या विनिर्गता।
भित्वा क्षितितलं सद्यः सीतानाम्ना बभूव सा।।

–५१। ४-६

इस ग्रन्थ में राम जन्म से जुड़ी चैत्र मास की नवमी का महत्त्व प्रतिपादित है। (इस ग्रन्थ का यह अध्याय **अगस्त्य संहिता**, अ.२८ में भी प्राप्त होता है।)

रामनवमी व्रत–

चैत्र मास की नवमी को यदि पुनर्वसु नक्षत्र भी पड़े तो इस दिन श्रीराम को उद्देश्य कर तर्पण करने से ब्रह्म की प्राप्ति होती है। इस दिन व्रत एवं जागरण करना चाहिये। इस तिथि को भोजन करने से कुम्भीपाकनरक की प्राप्ति होती है। उस दिन पितृतर्पण तथा दान करने से पितरों को विष्णु पद की प्राप्ति होती है एवं थोड़ा भी दान महादान के तुल्य होता है। इस दिन तुला–पुरुष का दान भी विहित है। इस व्रत का पारण दशमी तिथि में ही किया जाना चाहिये।

इस तिथि को भगवान् श्रीराम के वशिष्ठ आदि ऋषियों से घिरे हुये एवं सीता

से संलाप करते हुये विग्रह का पूजन करना चाहिये तथा द्वादशाक्षर मन्त्र (ॐ नमः भगवते वासुदेवाय) का जप करना चाहिये। इसके पश्चात् अर्घ्य, धूप एवं दीपादि से भगवान् श्रीराम का पूजन करना चाहिये। पुराण एवं वेदादि का पाठ, नृत्य, गीत एवं वाद्य आदि के द्वारा रात्रि जागरण करते हुए रात्रि व्यतीत करनी चाहिये। प्रातः काल स्नान, सावित्री मन्त्र का जप एवं सन्ध्या पूजन करना चाहिये।

इस तिथि के महत्त्व का प्रतिपादन करते हुये ग्रन्थ में पाँच पापियों की कथा दी गई है जिन्होंने अनजाने में नवमी तिथि को अयोध्या की यात्रा, नवमी व्रत एवं सरयू स्नान करके मुक्ति प्राप्त किया था।

एकादशी

एकादशी तिथि के व्रत का विष्णु-भक्तों के मध्य अत्यधिक महत्त्व है। एक बार नारद ऋषि राजा दशरथ के ग्रह में उपस्थित हुये। उस दिन एकादशी तिथि थी। राजा ने उनसे फलाहार ग्रहण करने का अनुरोध किया। इस पर एकादशी व्रत का विधान मुनि ने कहा जो इस प्रकार है–

व्रत विधि–

एकादशी को फलाहार भी नहीं करना चाहिये। इस दिन फलाहार करना मध्यम व्रत की श्रेणी में आता है। इस दिन भोजन करना अतीव निन्दनीय होता है। कम से कम दो बार भोजन नहीं करना चाहिये। इस व्रत में दिन में हरि-कीर्तन एवं रात्रि में जागरण का विधान है।

अयोध्या एवं अयोध्या में स्थित तीर्थ

सत्योपाख्यान ग्रन्थ का वर्ण्य-विषय श्रीराम चन्द्र की कथा के साथ-साथ अयोध्या पुरी भी है। इसमें अयोध्या पुरी एवं उसके तीर्थों का विवेचन प्राप्त होता है। इस पुरी का धार्मिक, सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक स्वरूप इस ग्रन्थ में परिलक्षित होता है।

भौगोलिक स्थिति–

हिमालय एवं विन्ध्य पर्वत के मध्य देश में अयोध्या पुरी की स्थिति कही गयी है–

हिमवद्विन्ध्ययोर्मध्ये भूवैकुण्ठोऽपि दृश्यते।
नाम्नायोध्येति विख्याता ह्यजेया सकलैरपि।।

–१८। १४,१५

पुरी की समृद्धि–

यह पुरी ऊँची-ऊँची अट्टालिकाओं, सुवर्ण वस्त्र एवं दण्ड से युक्त पताकाओं, अश्व, गज एवं रथों से युक्त थी। यहाँ सरयू नदी प्रवाहित होती है। नदी के तट पर अन्नों के पर्वताकार ढेर लगे थे तथा जलपोत द्वारा वणिक् जनों का व्यापार होता था। यहाँ के बाजार (पण्यवीथि) मणियों से भरे थे। यहाँ के नर-नारी अत्यन्त सुन्दर तथा सुन्दर वस्त्रालंकरणों से युक्त थे। इस पुरी में भोग की सभी सामग्रियाँ एवं सुख के साधन सुलभ थे। यहाँ स्वर्गोपम सुख प्राप्त था। इस नगरी में अशोक वन, शान्तानिक वन, मन्दार वन जैसे अनेक उपवन, एवं आखेट योग्य वन थे। संक्षेप में, यह पुरी अन्न-धन से परिपूर्ण एवं अत्यंत समृद्ध थी।

आध्यात्मिक स्वरूप–

अयोध्या नगरी आध्यात्मिक दृष्टि से भी अत्यन्त समृद्ध नगरी कही गयी है। इसमें पापी-जनों का प्रवेश निषिद्ध है। इसकी रक्षा में दश मूर्तिमान् दण्ड-धारी विघ्न लगे रहते हैं। ये हैं-काम, क्रोध, लोभ, दम्भ, स्तम्भ, मत्सर, निद्रा, तन्द्रा, आलस्य एवं पैशुन (चुगलखोरी)–

अयोध्यायां तु ये विघ्ना, मूर्तिमन्तस्तु ते सदा।
कामक्रोधश्च लोभश्च दम्भः स्तम्भोऽथ मत्सरः।।

निद्रा तन्द्रा तथालस्यं पैशुन्यमिति ते दश।
हस्ते दण्डं गृहीत्वा तान्मूर्तिमन्तो विदुद्रुवुः।।

–३३। २७,२८

यहाँ चैत्र मास के शुक्ल पक्ष की नवमी को जाकर स्नान, दानादि का विशेष महत्त्व है।

अध्याय ३४ में अयोध्या की दैवी मूर्ति का विस्तार से वर्णन प्राप्त होता है। यह तीर्थों से सेवित, शंख एवं चक्र धारण किये हुये तथा चक्र पर आरूढ़ सुन्दर मुख वाली है। इसे सत्या एवं विमला भी कहा गया है। इसके दर्शन से यम-दूत की बाधा नहीं होती है।

अयोध्या के तीर्थ-स्थल–

अयोध्या के शिरोभाग में गोप्रतार तीर्थ है। यह सरयू तट पर है। सरयू तट पर ही यमस्थल, वाशिष्ट्य पुलिन है (अ. ३५)। इसके अतिरिक्त सहस्रधारा तीर्थ, पश्चिम में राजतीर्थ, इनके मध्य में पापमोचन तीर्थ, स्वर्ग द्वार (अ.-६७) सरयू के उत्तर में पार्वती सर (अ. ६८), मनोरमा नदी, उद्दालक ऋषि का यज्ञ स्थल (अ. ६९) देवखात

सरोवर, पञ्चाश्वा तडाग, रामरेखा तीर्थ (अ. ७१) रमा तीर्थ (अ. ७३) एवं गुप्तहरि तीर्थ (अ. ७३, ७६) हैं।

सरयू नदी

सरयू नदी की चर्चा के बिना अयोध्या का वर्णन असम्भव है। इसके जल को 'ब्रह्मद्रव' कहा गया है–

ब्रह्मद्रवे पुनश्चात्र रामः क्रीडां करिष्यति। –१८। ११

ग्रन्थ के ३७ वें अध्याय में सरयू की उत्पत्ति का पूरा इतिहास प्राप्त होता है। यह भगवान् विष्णु के नेत्रों से उत्पन्न हुई है। इस नदी के कोख में श्रीराम अपने भाइयों समेत निवास करते हैं। पृथिवी पर इनका आगमन स्वायम्भुव मनु के काल में वशिष्ठ ऋषि द्वारा हुआ था।

सरयू की उत्पत्ति–

इनकी उत्पत्ति की कथा इस प्रकार है। सृष्टि के प्रारम्भ में ब्रह्मा ने भगवान् विष्णु के आदेश से तपस्या की। ध्यानस्थ ब्रह्मा को भगवान् विष्णु का दर्शन हुआ। उन्होंने गरुड़ पर आरूढ भगवान् विष्णु का दर्शन एवं हाथों का स्पर्श प्राप्त किया। स्पर्श से सुखी होकर उन्होंने नेत्र खोल कर भगवान् दर्शन किया। भगवान् विष्णु के नेत्रों से जल गिरा, जिसे ब्रह्मा ने प्रेम पूर्वक ग्रहण कर अपने कमण्डलु में रख लिया एवं उसे ब्रह्म द्रव जान कर एक मानसरोवर के सदृश सरोवर बनाया। वहीं नारायण का न्यास कर जल को स्थापित किया। कालान्तर इक्ष्वाकु-वंशी राजाओं ने वशिष्ठ ऋषि की आज्ञा से इस सरोवर को नदी का रूप दिया। इस कार्य में मञ्जुकेशी ने सहायता की। आगे-आगे वशिष्ठ ऋषि चलते गये एवं पीछे-पीछे सरयू नदी रूप में चलती गयी। इस प्रकार सरयू नदी अयोध्या पहुँची।

स्तुतियाँ

सत्योपाख्यान ग्रन्थ में विविध देवों की अनेक स्तोत्र एवं स्तुतियाँ हैं। इस स्तुतियों की भाषा अत्यन्त सरल एवं भावपूर्ण है। इनमें प्रमुख स्तुतियाँ इस प्रकार हैं–

नारद द्वारा श्रीराम की स्तुति (२२। ११-२३), ब्रह्मा कृत गणेश-स्तुति (२३। १०-१४), कौशल्या तथा उनके साथ अन्य स्त्रियों द्वारा बालक राम की रक्षा हेतु पठित रक्षा स्तोत्र (२४। ५-१८), काक भुशुंड कृत बाल रूप राम की स्तुति (२६। ३२-५२, ६४-६७), यमराज कृत अयोध्या स्तुति (अष्टक)(३५। २९-३६), राजा दशरथ कृत सरयू स्तुति-अष्टक (३७। १-९), बिल्व संज्ञक गन्धर्व द्वारा की गई श्री राम स्तुति (४१। १५-२०), शंकर ब्राह्मण द्वारा कृत भरत स्तुति (४७। १८), देह से मुक्त देव कृत शत्रुघ्न

स्तुति (४८। ५३-५५) तथा रमापाद ब्राह्मण कृत श्री सीता-स्तुति (७३। १०-२०)

ये सभी स्तुतियाँ अपने पाठ-फल के साथ उल्लिखित हैं।

विभिन्न कथायें

ग्रन्थकार ने श्री राम के चरित्र, अयोध्या के महात्म्य तथा उससे सम्बद्ध तीर्थों के माहात्म्य के वर्णन हेतु विभिन्न कथाओं का उल्लेख किया है। कुछ प्रमुख कथायें इस प्रकार हैं।

मन्थरा वृत्तान्त (अ. १०-११), भुशुंड की कथा (२६), विश्वावसु की कथा (२७), रत्नकला की कथा (२९,३०), नवमी व्रत कथा (३१,३२), पाँच पापियों की कथा (३३,३४), सरयू उत्पत्ति की कथा (३७), महिष वध की कथा (४१), डिंडिंर किरात की कथा (४२), शंकर ब्राह्मण की कथा (४७), गज-देह के शाप से माहिष्मती के ब्राह्मण की मुक्ति की कथा (४८), अहल्योद्धार की कथा (५४), पञ्चाश्वा तडाग की कथा (७१), एवं रमापाद ब्राह्मण की कथा (७३)

निर्वचन एवं सूक्तियाँ

निर्वचन-

ग्रन्थकार ने कथा एवं प्रसङ्गों की व्याख्या करते हुये अनेक शब्दों का निर्वचन एवं अर्थ स्पष्ट किया है। कतिपय पदों के निर्वचन द्रष्टव्य हैं-

अस्य बालकस्य-

ब्रह्मा ने गणेश से बालक राम की बाधा तथा कुदृष्टि से रक्षा हेतु कहा-'रक्षां क्रियतामस्य बालकस्य' (२३[१८), गजानन ने 'अस्य बालकस्य' शब्द का निर्वचन इस प्रकार किया। 'अस्य' पद की व्याख्या-

अकारो वासुदेव स्यात् षष्ठी ह्यस्य भवेद् भुवम्।

-२३। १९

तथा 'बालक' की व्याख्या एवं निर्वचन-

बालः केशः इति प्रोक्तः कशब्देन प्रजापतिः।
बाले बाले ककारस्तु जायते तस्य नित्यदा।
इति बालकशब्देन परब्रह्म विधियते।
बालकस्यास्य चार्थोऽयं मया ज्ञातः सुनिश्चितम्।।

-२३। २०-२१

'अस्य' पद में अकार वासुदेव तथा 'स्य' भुव है। 'बालक' पद 'बाल' का अर्थ

केश है एवं 'क' का अर्थ प्रजापति है। जिसके प्रत्येक बाल में सदा प्रजापति उत्पन्न होते हैं वह बालक है।

विश्वावसु–

विश्वावसु संज्ञक गन्धर्व ने राजा दशदथ से अपने नाम का निर्वचन करते हुये कहा कि सभी प्रकार के स्वरों का धन ही जिसका गुण हो वह विश्वावसु है–

विश्वरावधनं यस्य तस्माद् विश्वावसुस्त्वहम्।।

–२७। २३

अयोध्या–

अयोध्या शब्द की व्याख्या करते हुये इसका निर्वचन इस प्रकार प्राप्त होता है–

पापैर्न योध्यते यस्यास्तेनायोध्येति कथ्यते। –३७। ४

अर्थात् जिससे पाप-समूह युद्ध न कर सकें, वह अयोध्या है।

निरञ्जन–

श्रीराम की ब्रह्म रूप में एक संज्ञा निरञ्जन है। होलिका के अवसर पर हास-परिहास करते हुये सीता की सखियाँ उन्हें काजल (अञ्जन) लगाने का प्रयत्न करती हैं। उस समय राम अपने मन में विचार करते हैं कि यदि ये मुझे काजल (अञ्जन) लगाने में सफल होती हैं तो मेरा नाम निरञ्जन के स्थान पर साञ्जन हो जायेगा–

निरञ्जनं च मे नाम साञ्जनं तद् भविष्यति। –७७। १२

दशहरा–

ज्येष्ठ मास की दशमी तिथि को दशहरा भी कहा जाता है। जो दश पापों का हनन करे वह दशहरा है–

दशहरा च साज्ञेया दशपापानि हन्ति या। ७८। १

वाशिष्ठी

सरयू नदी की एक संज्ञा वाशिष्ठी भी है। स्वायंभू मनु के काल में वशिष्ठ ऋषि के द्वारा लाये जाने के कारण इन्हें वाशिष्ठी कहा गया है–

वशिष्ठेन समानीता मनो स्वायंभुवै सति।
वाशिष्ठीति समाख्याता पुत्रा मे हृदये धृताः।।

–३७। १९

राम–

पर ब्रह्म के रूप में राम शब्द की व्याख्या करते हुये ग्रन्थकार ने सत्, चित् एवं आनन्द स्वरूप श्री राम का निर्वचन किया है कि इनमें योगी जन रमते हैं–

रमन्ते योगिनो यस्मिन् सत्यानन्दे चिदात्मनि।
इति रामपदेनासौ परब्रह्माभिधीयते। –७९। २३,२४

सूक्तियाँ–

ग्रन्थ में स्थान-स्थान पर सूक्तियाँ प्राप्त होती हैं जिनमें कुछ इस प्रकार हैं–

१. सुकेशी श्यामनेत्राश्च श्यामाः श्यामेन वर्जिताः। –१९। २२

अयोध्या नगरी की स्त्रियाँ सुन्दर केशों वाली कृष्ण नेत्रों वाली स्त्रियाँ श्यामा (नायिका का भेद-विशेष) हैं, किन्तु उनमें श्यामत्व (चारित्रिक दोष) नहीं है।

२. निधिलाभाद् दरिद्रस्य तस्य प्रेम तु तत्र वै। –२८।३

राम के प्रति कौशल्या का प्रेम उसी प्रकार का जिस प्रकार दरिद्र को निधि प्राप्त हो जाय।

३. भाग्यात् भाग्यवतां भूतिः सर्वत्र किल जायते।–५९।१९

विश्वामित्र राजा दशरथ से श्रीरामादि के विवाह के प्रसंग में कहते हैं कि भाग्यवानों के अपने भाग्य से सभी स्थानों पर भूति (समृद्धि, अभ्युदय) प्राप्त होती है।

सामुद्रिक शास्त्र

(अ१६)

सत्योपाख्यान में श्रीराम के बालरूप एवं शुभ-चिह्नों का वर्णन करते हुये सामुद्रिक शास्त्र का भी विवेचन किया गया है। प्रमुख लक्षण इस प्रकार हैं–अष्टमी के चन्द्रमा के समान ललाट, धनुषाकार भौंहें, खञ्जन पक्षी तथा मछली के समान नेत्र, शुक के समान नेत्र, सुन्दर गण्ड-स्थल, दिव्य कर्ण, अनार के बीज के समान दाँत, लाल ओष्ठ, चिबुक पर गर्त, कण्ठ पर तीन रेखायें, सुवर्ण के सदृश प्रकाशमान् नख, सुन्दर नाभि तथा ऊरु सघन एवं पीन थे।

उनके चरण कमल के सदृश थे। उनके पैरों में वज्र बिन्दु, ध्वज अमृतकुण्ड, वस्त्रांकुश, जम्बूफल, मत्स्य, इन्द्रधुनष, त्रिकोण, पद्म, यव, षट्कोण, शंख, चक्र एवं अष्टकोण तथा मूर्धा पर रेखा, घट एवं स्वस्तिक के तथा चन्द्र के चिह्न थे।

इस प्रकार भगवान् श्रीराम के दिव्य चिह्नों के वर्णन से ग्रन्थकार के सामुद्रिक-शास्त्र परक ज्ञान का बोध होता है।

नाट्यशास्त्र एवं नृत्यविद्या

श्रीराम-जानकी के विवाह के अवसर पर सीता की सखी वासन्तिका के नृत्य के माध्यम से ग्रन्थकार ने नाट्य-शास्त्र में वर्णित नियमों का भी वर्णन अध्याय ५० में किया है।

वासन्तिका नृत्य, गान तथा भावाभिनय में प्रवीण थी। भाव, कटाक्ष एवं हेतु शृङ्गार-रस के आदि बीज हैं। प्रेम, मान, प्रणय, स्नेह, राग, अनुराग उसके अंग हैं। कटाक्ष तीन प्रकार के होते हैं– श्याम, श्वेत एवं श्वेत-श्याम। इसी प्रकार हास भी तीन प्रकार का होता है। अभिनय चार प्रकार के होते हैं–आङ्गिक, वाचिक, आहार्य एवं सात्विक। इतिकर्त्तव्यता दो प्रकार की कही गई है–चित्तवृत्यर्पिका एवं बाह्यवस्त्वनुकारिणी। नाट्य धर्म दो प्रकार के होते हैं– लोकधर्म्य एवं सनातन। दृष्टि के दश प्रकार हैं–जवत्व, स्थिरता, रेखा, भ्रमरी, अश्रम दृष्टि, प्रीति, मेधा एवं गीति। सम्प्रदाय का अनुसरण मुद्रा होती है।

जो आङ्गिक अभिनय से व्यक्त की जाती है उसे मार्ग नृत्य कहते हैं। अंगों के संचालन से, जिसमें अभिनय नहीं होता उसे समीरज नृत्य कहते हैं। ताल एवं लय पर आश्रित नृत्य सुरेखाक संज्ञक होता है। शिर, नेत्र आदि अंगों के सञ्चालन एवं मध्य-भाग के निरन्तर वर्तन से तथा प्रमाण-रेखा (कायस्थितिर्मनोनेत्रहारी रेखा-५०। १८) से युक्त नृत्य को मद-नृत्य कहते हैं। इधर दृष्टि हो, उधर हस्त हो, जहाँ दृष्टि हो, उधर मन हो, जहाँ मन हो वहाँ भाव हो, भाव से रस प्रगट हो, अङ्ग सञ्चालन से एवं हाथों से गीत का अभिनय हो तभी सुन्दर नृत्य होता है।

नृत्य एवं अभिनय में नेत्रों से भावाभिनय होता है। पैरों से ताल का निर्णय होता है। पैरों की गति या थिरकन के सात भेद होते हैं। भानवी, मैनवी, गजलीला, तरङ्गिणी, हेंसी, मृगी तथा खञ्जरीटी। लास्य नृत्य के लिये लाव, हंस, मयूर, हय, कुञ्जर, तित्तिर, कुक्कुट एवं मीन की गति कही गयी है। ये सब नृत्य के भेद हैं।

इस प्रकार नृत्य एवं नाट्क के विशद् वर्णन में यह ज्ञात होता है कि ग्रन्थकार को नाट्य शास्त्र का तलस्पर्शी ज्ञान था।

पृथिवी एवं भारतवर्ष का वर्णन

देवों ने विमान से आकाश में उड़ते हुये(अ.१७) पृथिवी का, पृथिवी में जम्बू द्वीप एवं भरत खण्ड (भारत वर्ष) का दर्शन किया।

विमान से उड़ते हुये पृथिवी सप्त समुद्रों, द्वीपों, सागरों, पर्वतों एवं वनों से युक्त दिखाई पड़ी। भूमि का स्वरूप वलयाकार परिलक्षित हो रहा था। पृथिवी के मध्य में

सुमेरू सुवर्ण-पुष्प सा प्रतीत हो रहा था एवं जम्बूद्वीप के नौ खण्ड दिखाई पड़ रहे थे।

भारत खण्ड–

जम्बू द्वीप के नौ खण्डों में एक खण्ड का नाम भरत खण्ड (भारत वर्ष) है। इसे कर्म-भूमि कहा गया है। यहाँ देवों की अराधना कर के स्वर्ग लोक की प्राप्ति होती है एवं सौ यज्ञ करने वाला देवराज बनता है। इसमें भी हिमालय से विन्ध्य पर्वत के मध्य रहने वाले अतीव भाग्यशाली होते हैं। भरत-खण्ड के पुण्य-शाली क्षेत्रों में सागर के समीप स्थित जगन्नाथ का स्थान, विश्वनाथ की काशी, पितरों का तर्पण-स्थल गया, तीर्थराज प्रयाग, चित्रकूट, महेन्द्र, दर्दुर, ऋक्षवान् तथा सह्याद्रि आदि पर्वत, व्यङ्कटेश का स्थल, सेतुबन्ध रामेश्वर, द्वारका, मायापुरी (हरिद्वार), मथुरा, वृन्दावन एवं अयोध्या आदि परिगणित हैं।

कृष्णावतार की पूर्व-पीठिका

सत्योपाख्यान ग्रन्थ में जहाँ एक ओर राम कथा प्रधान रूप से चलती रहती है, वहीं कृष्णावतार की पूर्व-पीठिका भी तैयार होती चलती है। इसमें सर्वप्रथम रत्नकला(पाठभेद में रत्नालका नाम भी प्राप्त होता है।) एवं वीरसिंह की कथा (अ. २९,३०) है। वीरसिंह रघुवंशी थे। रत्नकला ने श्रीराम को शिशु रूप में गोद में लिये राजा दशरथ को देखा। उसके मन में शिशु राम को गोद में लेने की अदम्य लालसा हुई एवं वह रुग्ण हो गयी। उसको अस्वस्थ जानकर रानी कौशल्या अपने पुत्र के साथ उसे देखने गयीं। रत्नकला ने उन्हें गोद में लेकर उनको अपने गले से लगा लिया एवं मन ही मन उनके जैसे पुत्र की कामना करते हुये भगवान् विष्णु का स्मरण किया। इसके पश्चात् पति-पत्नी ने श्री राम की इच्छा से प्रेरित होकर वशिष्ठ ऋषि से इस तरह के पुत्र-प्राप्ति का उपाय पूछा। वशिष्ठ ऋषि ने ध्यान करके देखा कि बाल स्वरूप राम ही भविष्य में कृष्ण होंगे। उन्होंने उस दम्पति को तप करने को कहा। ध्यान में ही उन्हें यह ज्ञात हुआ कि द्वापर युग के अन्त में वीर सिंह नन्द एवं रत्नकला यशोदा के रूप में गोकुल में जन्म लेंगे एवं यही राम कृष्ण के रूप में उनके यहाँ उनके पुत्रत्व को प्राप्त करेंगे–

द्वापरान्ते युवां जन्म लभेतां गोकुले पुनः।
वीरसिंहस्तु नन्दो वै यशौदा च भवेत्वियम्।
रामोयं कृष्णरूपेण पुत्रत्वं च भविष्यति।।

–३०। ३१,३२

राम के कृष्णावतार की अगली सम्भावना (अ.५३)। विश्वामित्र के साथ वन जाते हुये श्री राम के मन में उठे विचार से प्राप्त होती है। वन के मार्ग में श्री राम गायों,

बछड़ों एवं उन्हें दुहते हुये गोपालों को देखते हैं। उनके मन में यह इच्छा उत्पन्न होती है कि मैं भी अगले अवतार में द्वापर युग में ऐसा करूँगा–

गावश्च दुहतो वत्सान् लिहन्ती च ददर्श च।
ताश्च दृष्ट्वा तदा रामो मनसा च विचारयत्।।
अहमप्येवं करिष्यामि द्वापरे कृष्णजन्मनि।

–५३। २८,२९

ग्रन्थकार की दृष्टि में राम एवं कृष्ण एक ही हैं। उनमें भेदबुद्धि अनुचित है–

रामस्तु कृष्णरूपेण रामरूपेण माधवः।
तयोः भेदं न कर्तव्यं कृत्वा पापमाप्नुयात्।। –३०। ६१

ग्रन्थ का वैशिष्ट्य

अन्य रामायणों एवं रामकथाओं से सत्योपाख्यान में वर्णित राम कथा किञ्चित् विशिष्ट है, यद्यपि राम कथा के प्रधान पात्र अन्य राम-कथा-परक ग्रन्थों के ही हैं। ग्रन्थ-वैशिष्ट्य इस प्रकार हैं–

१. सत्योपाख्यान में राम-कथा श्रीरामादि चारो भाइयों के विवाह तक ही है। विवाह के पश्चात् सभी भाई एवं उनकी पत्नियाँ अयोध्या में स्थित तीर्थों का भ्रमण करते हैं एवं उसी के साथ ग्रन्थ पूर्ण हो जाता है।

२. रामावतार की उद्भावना भी इस ग्रन्थ का वैशिष्ट्य है। श्रीराम को विष्णु का अवतार एवं लक्ष्मण को शेषनाग का अवतार सर्वत्र राम कथाओं में माना गया है किन्तु भरत एवं शत्रुघ्न को शंख एवं चक्र का अवतार यहीं माना गया है। इस प्रकार श्री राम यहाँ शंख, चक्र एवं शेष के साथ अवतरित वर्णित हैं।

३. मन्थरा के पूर्व जन्म का वृत्तान्त एवं पूर्व जन्म से विष्णु से वैर की कथा इसी ग्रन्थ में प्राप्त होती है।

४. दशरथ एवं कैकेयी के विवाह में नारद का एवं देवयोगिनी का योगदान इस ग्रन्थ का वैशिष्ट्य है।

५. द्वापर-युग में श्रीराम का कृष्ण के रूप में अवतार के बीज इसी राम कथा में प्राप्त होते हैं। इस सन्दर्भ में रत्नकला एवं वीरसिंह को यशोदा एवं नन्द के रूप में जन्म लेना एवं कृष्ण का उनके पुत्र के रूप में उनके यहाँ रहना रामावतार में ही सुनिश्चित् हो जाता है।

६. श्री राम एवं अयोध्या पुरी से सम्बद्ध कथायें अन्य राम कथाओं में नहीं प्राप्त

सुमेरू सुवर्ण-पुष्प सा प्रतीत हो रहा था एवं जम्बूद्वीप के नौ खण्ड दिखाई पड़ रहे थे।

भारत खण्ड–

जम्बू द्वीप के नौ खण्डों में एक खण्ड का नाम भरत खण्ड (भारत वर्ष) है। इसे कर्म-भूमि कहा गया है। यहाँ देवों की अराधना कर के स्वर्ग लोक की प्राप्ति होती है एवं सौ यज्ञ करने वाला देवराज बनता है। इसमें भी हिमालय से विन्ध्य पर्वत के मध्य रहने वाले अतीव भाग्यशाली होते हैं। भरत-खण्ड के पुण्य-शाली क्षेत्रों में सागर के समीप स्थित जगन्नाथ का स्थान, विश्वनाथ की काशी, पितरों का तर्पण-स्थल गया, तीर्थराज प्रयाग, चित्रकूट, महेन्द्र, दर्दुर, ऋक्षवान् तथा सह्याद्रि आदि पर्वत, व्यङ्कटेश का स्थल, सेतुबन्ध रामेश्वर, द्वारका, मायापुरी (हरिद्वार), मथुरा, वृन्दावन एवं अयोध्या आदि परिगणित हैं।

कृष्णावतार की पूर्व-पीठिका

सत्योपाख्यान ग्रन्थ में जहाँ एक ओर राम कथा प्रधान रूप से चलती रहती है, वहीं कृष्णावतार की पूर्व-पीठिका भी तैयार होती चलती है। इसमें सर्वप्रथम रत्नकला(पाठभेद में रत्नालका नाम भी प्राप्त होता है।) एवं वीरसिंह की कथा (अ. २९,३०) है। वीरसिंह रघुवंशी थे। रत्नकला ने श्रीराम को शिशु रूप में गोद में लिये राजा दशरथ को देखा। उसके मन में शिशु राम को गोद में लेने की अदम्य लालसा हुई एवं वह रुग्ण हो गयी। उसको अस्वस्थ जानकर रानी कौशल्या अपने पुत्र के साथ उसे देखने गयीं। रत्नकला ने उन्हें गोद में लेकर उनको अपने गले से लगा लिया एवं मन ही मन उनके जैसे पुत्र की कामना करते हुये भगवान् विष्णु का स्मरण किया। इसके पश्चात् पति-पत्नी ने श्री राम की इच्छा से प्रेरित होकर वशिष्ठ ऋषि से इस तरह के पुत्र-प्राप्ति का उपाय पूछा। वशिष्ठ ऋषि ने ध्यान करके देखा कि बाल स्वरूप राम ही भविष्य में कृष्ण होंगे। उन्होंने उस दम्पति को तप करने को कहा। ध्यान में ही उन्हें यह ज्ञात हुआ कि द्वापर युग के अन्त में वीर सिंह नन्द एवं रत्नकला यशोदा के रूप में गोकुल में जन्म लेंगे एवं यही राम कृष्ण के रूप में उनके यहाँ उनके पुत्रत्व को प्राप्त करेंगे–

द्वापरान्ते युवां जन्म लभेतां गोकुले पुनः।
वीरसिंहस्तु नन्दो वै यशौदा च भवेत्त्वियम्।
रामोयं कृष्णरूपेण पुत्रत्वं च भविष्यति।।

–३०। ३१,३२

राम के कृष्णावतार की अगली सम्भावना (अ.५३)। विश्वामित्र के साथ वन जाते हुये श्री राम के मन में उठे विचार से प्राप्त होती है। वन के मार्ग में श्री राम गायों,

बछड़ों एवं उन्हें दुहते हुये गोपालों को देखते हैं। उनके मन में यह इच्छा उत्पन्न होती है कि मैं भी अगले अवतार में द्वापर युग में ऐसा करूँगा–

> गावश्च दुहतो वत्सान् लिहन्ती च ददर्श च।
> ताश्च दृष्ट्वा तदा रामो मनसा च विचारयत्।।
> अहमप्येवं करिष्यामि द्वापरे कृष्णजन्मनि।
> –५३। २८,२९

ग्रन्थकार की दृष्टि में राम एवं कृष्ण एक ही हैं। उनमें भेदबुद्धि अनुचित है–

> रामस्तु कृष्णरूपेण रामरूपेण माधवः।
> तयोः भेदं न कर्तव्यं कृत्वा पापमाप्नुयात्।। –३०। ६१

ग्रन्थ का वैशिष्ट्य

अन्य रामायणों एवं रामकथाओं से सत्योपाख्यान में वर्णित राम कथा किञ्चित् विशिष्ट है, यद्यपि राम कथा के प्रधान पात्र अन्य राम-कथा-परक ग्रन्थों के ही हैं। ग्रन्थ-वैशिष्ट्य इस प्रकार हैं–

१. सत्योपाख्यान में राम-कथा श्रीरामादि चारो भाइयों के विवाह तक ही है। विवाह के पश्चात् सभी भाई एवं उनकी पत्नियाँ अयोध्या में स्थित तीर्थों का भ्रमण करते हैं एवं उसी के साथ ग्रन्थ पूर्ण हो जाता है।

२. रामावतार की उद्भावना भी इस ग्रन्थ का वैशिष्ट्य है। श्रीराम को विष्णु का अवतार एवं लक्ष्मण को शेषनाग का अवतार सर्वत्र राम कथाओं में माना गया है किन्तु भरत एवं शत्रुघ्न को शंख एवं चक्र का अवतार यहीं माना गया है। इस प्रकार श्री राम यहाँ शंख, चक्र एवं शेष के साथ अवतरित वर्णित हैं।

३. मन्थरा के पूर्व जन्म का वृत्तान्त एवं पूर्व जन्म से विष्णु से वैर की कथा इसी ग्रन्थ में प्राप्त होती है।

४. दशरथ एवं कैकेयी के विवाह में नारद का एवं देवयोगिनी का योगदान इस ग्रन्थ का वैशिष्ट्य है।

५. द्वापर-युग में श्रीराम का कृष्ण के रूप में अवतार के बीज इसी राम कथा में प्राप्त होते हैं। इस सन्दर्भ में रत्नकला एवं वीरसिंह को यशोदा एवं नन्द के रूप में जन्म लेना एवं कृष्ण का उनके पुत्र के रूप में उनके यहाँ रहना रामावतार में ही सुनिश्चित् हो जाता है।

६. श्री राम एवं अयोध्या पुरी से सम्बद्ध कथायें अन्य राम कथाओं में नहीं प्राप्त

होती हैं।

७. सत्योपाख्यान में श्रीराम का शृंगार-रस से सम्बन्ध भी परिलक्षित होता है। अध्याय ४३ में युवा श्री राम को देखकर अयोध्या की नारियों का शृङ्गार-परक हाव-भाव इसका उदाहरण है.इस प्रकार की शैली में राम कथा भुशुण्ड रामायण में प्राप्त होती है। वहाँ राम-कथा पर कृष्ण-लीला का प्रभाव परिलक्षित होता है। पटना के विद्वान् पं. भवनाथ झा (सम्पा.अगस्त्य संहिता,महावीर मन्दिर प्रकाशन,पटना) के २६.११.२०१० को हुई वार्ता के अनुसार सत्योपाख्यान ग्रन्थ,के श्रीराम पर रसिक सम्प्रदाय का प्रभाव है।

८. सत्योपाख्यान में धनुर्भङ्ग के पश्चात् परशुराम आते तो हैं किन्तु उनका विवाद नहीं प्राप्त होता। वह श्री राम को प्रणाम कर चले जाते हैं।

इस प्रकार इस ग्रन्थ में अनेक वैशिष्ट्य प्राप्त होते हैं।

मातृका परिचय

अज्ञात कर्तृक इस ग्रन्थ की दो मातृकायें प्राप्त हुई हैं। यह ग्रन्थ दो भागों पूर्वार्ध एवं उत्तरार्ध में प्राप्त है। पूर्वार्ध में ४९ अध्याय एवं उत्तरार्ध में ५० वें अध्याय से ७९ अध्याय हैं। पूर्वार्ध में श्रीराम की बाल-लीला, काक भुशुण्ड की कथा, रत्नकला की कथा एवं निषाद राज गुह से मृगया की शिक्षा पाना उल्लिखित हैं तथा उत्तरार्ध में सीता-स्वयंवर, राम-सीता का विवाह एवं श्री राम का सीता अपने भाइयों तथा उनकी पत्नियों समेत तीर्थ-यात्रा वर्णन हैं।

क-मातृका–

संवत् १८९९ की जानकीजीवनसरन वर्मा द्वारा प्रतिलिपि की गई यह मातृका एक संन्यासी से व्यक्तिगत स्तर पर प्राप्त हुई थी। देवनागरी लिपि में प्राप्त यह मातृका पूर्ण नहीं है। इसमें ४० वें अध्याय में ११ से २३ श्लोक नहीं प्राप्त होते हैं।

पूर्वार्ध पुष्पिका–

पूर्वार्ध सम्पूर्णम्। शुभम्। श्रीजानकीवल्लभार्पणमस्तु। श्री रामजन्मनवमी दिने पूर्णं। संवत्-१८९९। श्रीगुरुस्वपठनार्थं निजलिपिकृतम् जानकीजीवनसरनवर्मनेति। श्री शुभं भवतु।

उत्तरार्ध पुष्पिका–

श्री श्री श्री श्री

ग मातृका–

राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, गंगानाथ झा परिसर, प्रयाग के हस्तलेख विभाग से प्राप्त यह मातृका देवनागरी लिपि में प्राप्त होती है। यह मातृका भी पूर्ण नहीं है। यह २२ वें अध्याय से प्राप्त होती है। इसका प्रतिलिपिकाल १८८७ तथा १८८१है। काल की दृष्टि से यह मातृका प्राचीन है।

पूर्वार्ध पुष्पिका–

इति श्री सत्योपाख्याने सूतशौनक संवादे एकोपंचाशत्तमोऽध्याय: संवत् १८८७। सत्योपाख्यानपूर्वार्द्ध समाप्त:।

उत्तरार्ध पुष्पिका–

शुभ भवतु संमत् १८८१ मिति कार्तिक मासे शुक्लपक्षे ३ चं।

दोनों ही मातृकाओं की लिपि स्पष्ट है किन्तु वर्तनी दोष दोनों में ही प्राप्त होते हैं।

काल–

इस ग्रन्थ हस्तलेख के काल के विषय में कुछ निश्चित् रूप कहना कठिन है। कामिल बुल्के के अनुसार इसका समय १५००-१६०० ई0 सम्भव है। (रामकथा, पृ. ६०१) हस्तलेख के मातृकाओं से प्रतिलिपि १९ वीं शताब्दी हुई है। इस ग्रन्थ के कर्ता के विषय में कोई सूचना नहीं प्राप्त है।

कृतवेदिता-निवेदन

सर्व-प्रथम मैं अपनी कृतवेदिता पुष्पाञ्जलि भगवान् शिव एवं पार्वती के चरणों में समर्पित करती हूँ, जिनकी कृपा से यह कार्य पूर्ण हो सका।

गंगानाथ झा परिसर के पूर्व-प्राचार्य प्रो. गोपराजु राम ने इस कार्य को करने की स्वीकृति प्रदान की। तदन्तर पूर्व-प्राचार्य प्रो. सुरेन्द्र झा ने इस कार्य को अग्रसर कराया एवं वर्तमान प्राचार्य डॉ. प्रकाश पाण्डेय के सहयोग से यह कार्य प्रकाशित हो रहा है, अत: मैं परिसर के तीनों प्राचार्यों को अपनी हार्दिक कृतज्ञता अर्पित करती हूँ। इस ग्रन्थ की कलेवर रूप में प्रस्तुति परिसर के वर्तमान प्राचार्य प्रो० सर्वनारायण झा, की कायिक वाचिक एवं मानसिक सहयोग एवं प्रेरणा से सम्भव हो सकी, अत: उनको मेरा शतश: नमन अर्पित है। मध्य काल में कार्यकारी प्राचार्या प्रो. शैलकुमारी मिश्र के प्रति मैं अपनी कृतज्ञता निवेदित करती हूँ, जिन्होंने समय-समय पर मेरे कार्य को प्रोत्साहित किया। हस्तलेख विभाग की विभागाध्यक्षा डॉ. वीना मिश्र के सहयोग से ग-मातृका तथा जिस सन्त से क-मातृका प्राप्त हुई, दोनों को मैं हृदय से धन्यवाद देती हूँ।

परिसर के ही मेरे मित्र डॉ. विश्वम्भर नाथ गिरि, रीडर, ने कार्य में काठिन्य आने पर अपना सत्परामर्श प्रदान किया, मैं उनकी हृदय से आभारी हूँ। मैं शुद्ध संशोधन एवं पृष्ठविन्यास के लिये श्री ब्रह्मानन्द मिश्र को तथा सुन्दर प्रकाशन हेतु मुद्रक महोदय को धन्यवाद देती हूँ, जिनके प्रयत्नों से मेरा यह कार्य मूर्त हो सका। अन्त में अपने सभी प्रत्यक्ष एवं परोक्ष सहयोगियो को धन्यवाद प्रदान करती हूँ तथा त्रुटियों के लिये सहृदय विद्वान पाठकों से क्षमा याचना करती हूँ।

विदुषां वशंवदा,

शैलजा पाण्डेय



सत्योपाख्यानम्

मङ्गलानि प्रजाभ्यस्तु नृपेभ्यस्तु सदैव हि।
साधुगोभूमिविप्रेभ्यः श्रीशो दिशतु मङ्गलम्।।

प्रथमोऽध्यायः

श्री नमो बल्लभाय नमः श्रीमते रामायानुजाय नमः

दशरथसुतरामं योगिध्येयांघ्रिद्वंद-
मजशिवसनकाद्यैः पूज्यमानं सदैव।
हृदि हृदि कृतवासं रामभद्राख्यदेवं
तमहमखिलसेव्यं सर्वकरणैर्नतोस्मि॥ १॥

सूतं सर्वपुराणज्ञं सर्वशास्त्रार्थकोविदम्।
नमस्कृत्याब्रुवन्सर्वे ऋषयः शौनकादयः॥२॥

ऋषयः ऊचुः

भो भो सूत महाबुद्धे सर्वशास्त्रविशारद।
श्रीरामस्य कथां पुण्यां कथयस्व प्रसादतः॥३॥

श्री सूत उवाच

विप्रवर्या श्रृणुध्वं हि श्रीरामस्य कथां शुभाम्।
व्यासेन कथितां पूर्वं तामहं कथयामि वः॥४॥

चित्रकूटं महापुण्यं पर्वतानां हि सुन्दरम्।
वाल्मीकिश्च महातेजा न्यवसद्धर्मतत्परः॥५॥

दर्शनार्थं मुनेस्तस्य मार्कण्डेयो महामुने।
आजगाम चिरायुर्हि चित्रकूटालयं मुनिः॥६॥

तमागतं मुनिं दृष्ट्वा वाल्मीकिश्च महातपाः।
उत्थाय पूजयामास भार्गवं भृगुवंशजः॥७॥

दिव्यासने निवेश्याथ उवाच मुनिसत्तमम्।
कृपां कृत्वा त्वया विप्र तीर्थीकृतं ममाश्रमम्॥८॥

किमर्थमागतोऽसि त्वं शीघ्रं कथय भार्गव।

श्री सूत उवाच

इत्येवं मुनिना पृष्टो मार्कण्डेयोऽथ बुद्धिमान्॥९॥

उवाच प्रणतो वाक्यं वाल्मीकिं च तपोधनम्।

मार्कण्डेय उवाच

प्राचेतस महाभाग श्रीरामस्य कथां शुभाम्॥१०॥

कथयस्व महाबुद्धे रामस्य परमात्मनः।

श्री वाल्मीकि उवाच

सर्वं जानासि रामस्य चरितं हि महामुने॥११॥

तथापि कथयिष्यामि तव प्रीत्या हि सुव्रत।
रामो नारायणः साक्षात् सर्वदेवैश्च प्रार्थितः॥१२॥

पृथ्वीभारावताराय जातो दशरथात् स्वयम्।
अङ्गणे रिंगमाणाश्च मातृभिः सहितोनघः॥१३॥

धूलिधूसरसर्वाङ्गः धातृभिः परिरक्षितः।
शिरोरुहैर्वृतमुखः पीतवेष्टनशोभितः॥१४॥

कञ्चुकेनावृतो रामः कुण्डलाभ्यां विराजितः।
अङ्गदे च महादिव्ये वलये रत्नभूषिते॥१५॥

नूपुरादीनि दिव्यानि सर्वाङ्गेषु विधारयन्।
चकार क्रीडां रामो हि ज्ञातीनां सुखमावहन्[१]॥१६॥

एकदा तु गृहं राज्ञो वसिष्ठो भगवान् ऋषिः।
विवेश भवनं दिव्यं नानारत्नोपशोभितम्॥१७॥

बिभ्रति गजाभारं महायोगेश्वरो मुनिः।
तमागतं मुनिं दृष्ट्वा चेटिकाश्च सहस्रशः।
कौशल्यां च समाजग्मुः सुमित्रां च तथापराः॥१८॥

कैकेयीं च तथा सर्वा ऊचुः वाक्यं ससम्भ्रमम्।
देव्या श्रृणुत भद्रं वः साम्प्रतं तु उपस्थितम्[२]॥१९॥

यस्माद् गृहान् समायातो गुरुः पद्मजसंभवः।
स्वं स्वं पुत्रं समादाय गम्यतां मुनिसन्निधौ॥२०॥

वन्दनीयो गुरुर्देव्यो यस्मादज्ञाननाशनः।
इति वाक्यं च ता श्रुत्वा सर्वा हर्षसमन्विताः॥२१॥

---

१. सुषमा वहन् – क
२. त्युपस्थितम् – क

कौशल्या तु करे रामं प्रगृह्य कलनूपुरम्।
मन्दं मन्दं च गच्छन्तमिन्द्रनीलमणिप्रभम्॥२२॥

कौशल्या पुत्रसहिता मुने पादौ ननाम च।
पूजां समर्पयेद्दिव्यां रामहस्तेन सुन्दरी॥२३॥

वशिष्ठोऽपि महातेजा राममूर्द्धिन करं दधत्।
चिरंजीव चिरंजीव चिरंजीवावदद्वशी॥२४॥

सिंहासने समासीनो राममङ्के न्यवेशयत्।
तस्मिन्काले सुमित्रा तु पुत्रावादाय सुप्रभा॥२५॥

ववन्दे च मुनेः पादौ पुत्राभ्यां च शुचिस्मिता।
मङ्गलं मङ्गलं पुत्रौ तयो मूर्द्धिन करं दधत्॥२६॥

उवाच शिष्य धर्मात्मा पार्श्वे बालौ निवेशयन्।
अन्तःपुरः स्त्रियः सर्वाः मुनिं वीक्ष्य मुदं ययुः॥२७॥

कैकेयिनाम्नी खलु केकयस्य
राज्ञस्तु पुत्री भरतस्य माता।
दास्या पुनर्मंथरया प्रयुक्ता
पुत्रेण हस्तांगुलिलम्बिता च॥२८॥

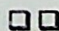
सखीभिः सार्द्धं व्यजनादिग्राहिभि-
र्जगाम मन्दं मुनिसंनिधानम्।
सा वादयंती चरणारविन्दं
वस्त्रेण देहं वसती सलज्जा॥२९॥

ववन्द मूर्द्धना मुनिमास्थितं सा
तथा स्वपुत्रं नमयत् करेण।
मुनिस्तु तस्योपरिहस्तमादधद्।
यशो लभस्वेत्यवदच्छुभवाणी॥३०॥

राजपत्नीश्च तां दृष्ट्वा मुनिर्वचनमब्रवीत्।

सदैव कुशलं देव्याः युष्मासु सुमतीषु च।
पुत्राः क्रीडन्ति क्षेमेन राज्ञा धर्मेण रक्षता॥३१॥

इति श्रीसत्योपाख्याने श्रीवाल्मीकिमार्कण्डेयसंवादे प्रथमोऽध्यायः।



द्वितीयोऽध्यायः

श्रीकौशल्योवाच

सर्वदा कुशलं नाथ त्वयि तिष्ठति रक्षके।
यथा सूर्य्ये दिवस्थे च न भयं तमसो भवेत्॥१॥

परं तु मम सन्देहो वर्तते हृदि सर्वदा।
कदाचिद् रामं पश्यामि स्वप्ने परमभास्वरम्॥२॥

गरुडोपरि राजन्तं शङ्खचक्रधरं सुतम्।

सुमित्रोवाच-

ममापि शृणु विप्रर्षे स्वप्ने पश्यामि लक्ष्मणम्॥३॥

सहस्रशिरसं नागं रजतस्येव विग्रहम्।

कैकेय्युवाच-

अहं पश्यामि भो विप्र भरतं शङ्खरूपिणम्॥५॥

अन्या सपत्न्य ऊचु-

अस्माभिर्दृश्यते रामो देवदेवो हरिः स्वयम्।
क्षितीशस्य तु पत्नीनां वाक्यं श्रुत्वा महामुनिः॥६॥

अन्तर्गतमना भूत्वा ध्यानस्तिमितलोचनः।
रामो नारायणः साक्षात् भूभारहरणाय च॥७॥

रावणादीनि रक्षांसि कोटिशो हनिष्यति।
एतास्त्वं न जानन्ति रामस्य परमात्मनः॥८॥

मयापि न च वक्तव्यं रामस्याक्लिष्टकर्मणः।
यथा एता न जानन्ति परं तत्त्वं महात्मनः॥९॥

विदिते परतत्त्वे च पुत्रभावं व्रजिष्यति।
पुत्रभावे गते नूनं पुत्रभावसुखेन हि॥१०॥

इति ध्यात्वा मुनिस्तूर्णं प्रहसन्नाह सुन्दरी।

श्री वशिष्ठ उवाच-

एते पुत्रा महात्मानो नारायणसमोगुणैः॥११॥
तस्मात् स्वप्ने हि दृश्यन्ते विष्णुपार्षदरूपिणः।

राजपत्न्यः ऊचुः-

वेतालभूतप्रेताश्च डाकिन्यः किल हे गुरो॥१२॥
मारिका राक्षसा ब्रह्मन् बाधन्ते न तथा कुरु।
अजिरे क्रीडमानाश्च दृष्टिदोषो न कस्यचित्॥१३॥
रक्षां च क्रियतां स्वामिन् सर्वोपद्रवघातिनी॥१४॥
इक्ष्वाकुवंशस्य गुरुस्त्वमेव त्वमेव पूज्यो रघुभिः सदैव।
तस्मात्त्वया पाल्यत एवं सर्वे तवैव भृत्या वयमेव सर्वे।
तासां विज्ञापितं श्रुत्वा मुनिश्च सुस्मिताननः॥१५॥

श्री वसिष्ठ उवाच-

समीचीनं वचो देव्यो युष्माभिः समुदाहृतम्।
बालकानां च रक्षार्थमागमिष्यामि नित्यशः॥१६॥
जगामाथ महातेजाः पूर्ववृत्तं विचारयन्।
एषामर्थे मया पूर्वं पौरोहित्यं च स्वीकृतम्॥१७॥
धन्या एता हि रामस्य मातरः सुकृतमूर्तयः।
धन्यो राजा दशरथो धन्यायोध्या महापुरी॥१८॥
धन्योहं गुरुरेतेषां तस्मान् मह्यं नमन्त्यमी।
इति ध्यायन् महातेजाः पूज्यमानो नृभिः पथि॥१९॥
विवेश भवनं दिव्यं स्वकुण्डोपरिराजितम्।
शिष्यैः परिवृतं रम्यं तथा सद्भिर्निषेवितम्॥२०॥
एवं वशिष्ठो नित्यं हि रामदर्शनलालसः।
चकार दर्शनं हृष्टो रक्षाव्याजेन नित्यदा॥२१॥

सूत उवाच-

इति श्रुत्वा मुने पादावभिवन्द्यमृकुण्डजः।
वाल्मीकिं समुवाचेदं गिरा गद्गदया मुनिः॥२२॥

मार्कण्डेय उवाच-

भगवंस्त्वत्प्रसादेन रामतत्त्वं श्रुतम्।
इदानीं गतसन्देहो जातोऽहं मुनिपुङ्गव॥२३॥

सूत उवाच-

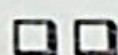
परिक्रम्य मुनिः प्रीत अयोध्यां विविशे मुदा।
रामचन्द्रं च दृष्ट्वा सः नत्वा स्वाश्रममीयवान्॥२४॥

पुष्पभद्रातटे रम्ये नानामुनिगणैर्वृतम्।
वसन्ति यत्र सत्त्वानि निर्वैराणि निसर्गतः॥२५॥

यत्राश्रमेऽभूत् किल कामदेवो,
नारीभिः सार्द्धं विकलप्रयासः।
मृदङ्गनादैर्युवतीकटाक्षै-
र्नक्षोभयामास मुनेश्च मानसः॥२६॥

श्रीरामचन्द्रस्य पदारविन्दं
लक्ष्मीः कराभ्यां परिशीलितं च।
ध्यायत् स्वचित्ते रमते सदैव
मुनिश्चिरायुर्वत हे द्विजाग्र्य॥२७॥

इति श्रीसत्योपाख्याने श्रीवाल्मीकिमार्कण्डेयसंवादो नाम द्वितीयोऽध्यायः



तृतीयोऽध्यायः

श्रीशौनक उवाच-

अन्यत् कथय रामस्य चरितं परमाद्भुतम्।
एकैकमक्षरं नृणां पापपर्वतदारणम्॥१॥

मानुषं जन्म संप्राप्य रामं न भजते हि यः।
वञ्चितः कर्मणा पाप इति जानीहि बुद्धिमान्॥२॥

श्रीसूत उवाच-

रामचन्द्रपदे द्वन्द्वे पद्मे मकरंद षट्पद।
चरितं शृणुत देवस्य कथ्यमानं मया महत्॥३॥

एकदा रामचन्द्रस्तु मातुरङ्के मनोहरः।
चकार क्रीडां बलवान् परमात्मा नराकृतिः॥४॥

तस्मिन् काले च रामस्य कौशल्यामाजगाम वै।
नाम्ना धन्येति विख्याता धात्री परमसुन्दरी॥५॥

बिभ्रती नासिकायां च मुक्तां च मणिसंयुता।
कर्णयोः कुण्डले दिव्ये ललाटे च महामणिः॥६॥

अलकान् विभ्रती रम्यान् द्विरेफालेलकारकान्।
दन्तैश्छविं च मुह्यती दाडिमस्य मनोहराम्॥७॥

नेत्राभ्यां शतपत्रस्य विभ्रन्ती भावमुत्तमम्।
कण्ठे हारं च विभ्राणास्तनयोर्मध्यलम्बितम्॥८॥

वसाना कञ्चुकीरक्तां स्वर्णबिन्दुविराजिताम्।
अङ्गदाभ्यां च राजन्ति वलयैश्च प्रकोष्ठगैः॥९॥

अंशुकोपरि राजन्ती वादयन्ती च मेखला।
पादयोः पादकटकैः हंसकादिविभूषिताः॥१०॥

शाट्या चाङ्गानि गूहन्ती सूक्ष्मया नीलवर्णया॥
एतस्मिन्नन्तरे रामो धात्रीं वीक्ष्य मुदायुतः॥११॥

मातुरङ्कात् समुत्थाय तस्याः क्रोडं जगाम च।
सा तु रामं समादाय निजाङ्के समवेशयत्॥१२॥

उवाचाथ च कौशल्यां पुरन्ध्री राममातरम्।

श्रीधन्योवाच-

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि वृत्तान्तं हृद्गतं महत्॥१३॥

साम्प्रतं वर्तते राजा कैकेयीभवने शुभे।
मौविदल्लैर्मया ज्ञात्वा तस्मादाज्ञां च देहि मे॥१४॥

अद्य रामं विभूष्यामि भूषणैः सुमनोहरैः।
नयामि भूपतेः पार्श्वं कैकेय्या सह तिष्ठतः॥१५॥

सूत उवाच-

इति वाक्यं तु सा श्रुत्वा जगाद शुभया गिरा।

श्रीकौशल्योवाच-

ईदृशी यदि ते श्रद्धा नय रामं मनोहरे॥१६॥

तदा शीघ्रं तु सा धात्री रामं संभूष्य भूषणैः।
कैकेय्या भवनं प्राप राममङ्के निवेश्य च॥१७॥

अन्याश्च शतशः सख्यस्तथा बाला अनेकशः।
रामस्य क्रीडकं ग्राह्य धात्रीमनुयथु शुभाः॥१८॥

कैकेय्या भवनं रम्यं दासदासीसमाकुलम्।
सारिकाशुकहंसैश्च कृत्रिमाकृत्रिमैर्युतम्॥१९॥

मृदङ्गनादैर्गीतैश्च नादितं विस्मयावहम्।
मणिदामवितानैश्च वज्रयष्टिभिरुच्छ्रितैः॥२०॥

छादितं प्राङ्गणं यत्र मणिकाचैश्च निर्मितम्।
लसन्ति स्वर्णभाण्डानि दिव्यरत्नमयानि च॥२१॥

प्रासादे परिनृत्यन्ति मृदङ्गध्वनिगर्जितैः।
विततपश्वस्य बर्हाणि मयूरास्तु मनोहराः॥२२॥

लज्जया तत्र पश्यन्ति राजानं कशिपौ स्थितम्।
साटीमध्यगतैर्नार्यैः लोचनैः कर्णविस्तृतैः॥२३॥

पर्यङ्कास्तत्र वर्तन्ते गजदन्तमयाः शुभाः।
तत्रासीनो दशरथो धर्मात्मा धर्म वापरः॥२४॥

चामरै रत्नदण्डैश्च वीज्यमानो नरेश्वरः।
कैकेयी च महाराज्ञी राज्ञो निकटवर्तिनी॥२५॥

हसती हासयन्ती च महाराजं च वीक्षती।
लालयानो हि भरतं यत्र तात हि सादरम्॥२६॥

सूत उवाच-

तस्मिन्नवसरे धात्री रामस्य रामसंयुता।
प्राप्ता समीपं राज्ञस्तु सखीभिः परिवारिता॥२७॥

राजा दशरथो राममपश्यद् धर्मसङ्गरः।
अतसीपुष्पसंकाशं पीतवेष्टनवेष्टितम्॥२८॥

उषः शुक्रसमं चारु दधन्तं नसि मौक्तिकम्।
स्वहस्ते वज्रयष्टिं च दधानं पीतकञ्चुकम्॥२९॥

रामं त्वशिक्षयद् धात्री नम्नो भव नरेश्वरम्।
तथैव हे पुत्र राज्ञीं तात तात च शीघ्रतः॥३०॥

धात्र्या वाक्यं तु संश्रुत्वा रामस्तु सुस्मिताननः।
प्रणनाम पितुः पद्भ्यां कैकेय्या पुनरेव हि॥३१॥

राजा दशरथः स्वाङ्के रामं प्रीत्या न्यवेशयत्।
ततान पितुरानन्दं रामो जनमनोहरः॥३२॥

पश्चाद्रामं तु सा राज्ञी निजाङ्के समकल्पयत्।
जिघ्रे शिरसि रामस्य प्रेम्णस्तु हि परागतिः॥३३॥

उवाच सुमुखी सुभ्रू सस्मितं वीक्षती नृपम्।

श्रीकैकेय्युवाच-

शृणु राजन्महाबाहो रामे मम रतिर्दृढा॥३४॥

ईदृशी भरतो नैव यथा रामे प्रवर्तते।

श्री राजोवाच-

सत्यं वदसि भो देवि रामे तव रतिर्ध्रुवा॥३५॥

इत्थं वदति भूपाले लक्ष्मणोप्याजगाम च।
कन्दुकं धारयन् हस्ते कुमारः क्रीडयन् सखीन्॥३६॥

शत्रुघ्नोपि महातेजा बालकैः सह चागतः।
विवेश भवनं प्रेम्णा लसल्लक्ष्मण पृष्ठतः॥३७॥

आजग्मतुस्तयो धात्र्यौ वालनारिभिरावृते।
राजा दशरथो मग्नः सुखसिंधौ महामनाः॥३८॥

पुत्रैश्च शुशुभे राजा प्रजापतिरिवापरः।
नरेन्द्रदारा स्पृहणी च शीलाः नृपोपकण्ठं त्रिशतानि जग्मुः।
पुनः शताद्धं द्विजचेटिकाभिर्विलोकितुं क्रीडनकं शिशूनाम्॥३९॥

रराज राजाजिरभूमिमध्ये सिंहासनस्थो निजसुन्दरीभिः।
यथा हि स्वर्गे भगवान् विडौजाः दिव्याप्सरोभिश्चपुलोमजायाः॥४०॥

इति श्रीसत्योपाख्याने सूतशौनकसंवादे राज्ञा राजपुत्रसहगमनो नाम तृतीयोऽध्यायः।



चतुर्थोऽध्यायः

शौनक उवाच-

कथ्यतां कथ्यतां तूर्णं रघूनां चरितं शुभम्।
मनो मे त्वरिते सूत कथापानाय सादरम्॥१॥

सूत उवाच-

अथ भूपो महाबाहुः शिक्षयामास कैकेयीम्।
भो देवि भवने सर्वाः सपत्न्यस्तव संगताः॥२॥

पूजयस्व महाभागे मालाचन्दनवीटकैः।
श्रुत्वा तु भूपतेर्वाक्यं सुस्मितं जग्रहे स्मिता॥३॥

संस्थिताभ्यः पुनर्देवी चन्दनं मलयोद्भवम्।
मालां पुष्पमयीं रम्यां ताम्बूलं क्रमुकैर्युतम्॥४॥

स्थलपद्मरसं दिव्यं ददौ राज्ञी प्रहर्षिता।
स्थितासु तासु सर्वासु राजा दशरथो वशी॥५॥

पुत्रान् सर्वान् समादाय जगाद निजयोषितः।

श्रीराजोवाच-

शृणुध्वं सकलाः देव्यो युष्माकं पुण्यतो बलात्॥६॥

जाताः कुमारकाः शुद्धाः मम वंशविवर्द्धनाः।
समीचीनासु नारीषु येषां पुत्राः न जज्ञिरे॥७॥

तेषां तु पितरः सर्वे औदासीन्येन संस्थिताः।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन पुत्रमुत्पादयेन्नरः॥८॥

मह्यं तु ब्राह्मणैर्दत्ताः कुमाराः कुलभूषणाः।
येषु तुष्टा न भूदेवास्तेषां जन्म गतं वृथाः॥९॥

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन साधुं विप्रांश्च तोषयेत्।
येषां पादोदकं पीत्वा धूतपापो भवेन्नरः॥१०॥

भवतीनां कुमारा वै लालनीया न संशयः।
श्रीसूत उवाच-
क्षितीशस्य तु तद्वाक्यं निशम्य परमास्त्रियः॥११॥

ऊचू राममनस्कास्ताः राजानं पृथिवीपतिम्।
श्रीराजपत्न्यः ऊचुः
त्वं तु राजन् धर्ममूर्ति नास्ति त्वत् सदृशो भुवि॥१२॥

अस्माकं प्राणतुल्याश्च सर्वेषां पुरवासिनाम्।
भूयादेषां विवाहो वै श्रीरङ्गस्य प्रसादतः॥१३॥

वध्वा सह तदा राजन् द्रक्ष्यामस्तवपुत्रकान्।
यदा रामं गजस्थं च सितछत्रेणशोभितम्॥१४॥

यान्तं राजपथेनैव प्रकीर्णाभ्यां च वीक्षितम्।
द्रक्षिष्यामो महाराज तदा जन्मभृतो वयम्॥१५॥
सूत उवाच-

मन्थरेति च कैकेय्या दासी मन्थरगामिनी।
मन्थरं कर्म तस्यास्तु जनमन्थरकारिणी॥१६॥

वाक्यं श्रुत्वा नरेशस्य पत्नीनामतिचुक्रुधे।
उवाच कैकेयीं मन्दा त्रिवक्रा क्रूरगामिनी॥१७॥
मन्थरोवाच-

अत्रागच्छ महाभागे मुग्धे सौन्दर्यगर्विते।
पूर्ववृत्तं न जानासि मत्ता क्रीडसि मन्दिरे॥१८॥

मन्थराया वचो श्रुत्वा कैकेयी सुस्मिताभवत्।
उवाच मधुरं राज्ञीः कौशल्याप्रमुखास्तदा॥१९॥
श्रीकैकेय्युवाच-

कुब्जाकारयते सुभ्रू अहं गच्छामि तां प्रति।
वीक्षते किल रक्ताभ्यां वक्राभ्यां वक्रगामिनी॥२०॥
सूत उवाच-

इत्युक्ताथ जगामाथ वादयन्तीं च मेखलाम्।
आज्ञां प्राप्य सपत्नीनां मन्थरा यत्र तिष्ठति॥२१॥

मन्थरा द्विज कैकेय्याः पाणिना पाणिमगृहीत्।
प्रासादं रुरुहे कुब्जा निःश्वसन्ती सगौर्भरात्॥२२॥

तत्रारूह्य निविष्टा च कम्बले परमाद्भुते।
मन्थरा बीटकान् कृत्वा खादयामास कैकेयीम्॥२३॥

पुनस्तु वीजयामास चामरेण सुशोभिना।
रत्नदण्डेन शुभ्रेण मन्दमन्दं तु मन्थरा॥२४॥

श्रीकैकेय्युवाच-

मन्थरे ब्रूहि शीघ्रं त्वं हृद्गतं कारणं हि मे।
यदर्थं मामिहानीय नृपपत्नीसमूहतः॥२५॥

सूत उवाच-

इति श्रुत्वा च कैकेय्याः वाक्यं परमशोभनम्।
जगाद तर्जनीं कृत्वा ओष्ठस्योपरि मन्थरा॥२६॥

मन्थरोवाच-

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि कथां च परमाद्भुताम्।
प्रवदन्ति स प्रेम्णो हि रामराज्यं भविष्यति॥२७॥

तदा वयं जन्मभृतो भविष्यामो न संशयः।
इत्यासां नृपदाराणां वचनेन स्मृतिरागता॥२८॥

विवाहस्य च सुश्रोणि तव राज्ञो घटस्तनी।

श्रीकैकेय्युवाच-

कीदृशं खलु मे वृत्तं विवाहस्य च मन्थरे।
राज्ञः प्रिया कथं जाता कथं चोद्वाहिताह्यहम्॥२९॥

इति श्री सत्योपाख्याने मन्थराकैकेयीसंवादो नाम
चतुर्थोऽध्यायः



पञ्चमोऽध्यायः

मन्थरोवाच-

एकदा ब्रह्मपुत्रस्तु नारदो मुनिसत्तमः।
वादयन् महतीं वीणामयोध्यां प्राविशन्मुनिः॥१॥

राजा दशरथस्तं हि पूजयामास भक्तितः।
सिंहासने महादिव्ये सन्निवेश्य यथाविधिः॥२॥

श्रीदशरथोवाच-

कस्माज्जनपदाद् विप्र प्राप्तोऽसि मम चालयम्।
पावयन् सकलान् लोकान् पादैरटसि सूर्यवत्॥३॥

पाताले स्वर्गलोके वा ब्रह्मलोके तथा क्षितौ।
किं चित्रं वर्तते विप्र सत्यं कथय मे प्रभो॥४॥

श्रीनारदोवाच-

ब्रह्मलोकादहं प्राप्त पृथिवीं शृणु भूपते।
सर्वे विलोकिता देशा नरनारीभिः पूरिताः॥५॥

प्रयागश्च मया दृष्टः पुरी काशी विलोकिता।
काञ्ची विलोकिता राजन् तथावन्ती विलोकिता॥६॥

आनर्ताश्च मया दृष्टास्तथा मधुपुरी शुभा।
एतेष्यन्येषु मे दृष्टा मया नार्यः सुमध्यमाः॥७॥

अथ दृष्टा मया राजन् कन्या केकयभूपतेः।
नैव देवी न गन्धर्व यथा सा किल वर्तते॥८॥

अहमश्वपते राजन् गृहं गत्वा विलोकिता।
तस्या हस्ते मया दृष्टा रेखा हस्तगता यथा॥९॥

तां दृष्ट्वा शीघ्रमुत्थाय प्राप्तोऽस्मि च तवान्तिकम्।
तस्या पाणिं च गृह्णीष्व यत्नेन खलु भूमिपः॥१०॥

तस्या पुत्रो यशस्वी च महाज्ञानी महातपा।
भविष्यति महाराज तव पुत्रो न संशयः॥११॥

श्रावयित्वा तु राजानं देवर्षिः परमद्युतिः।
ब्रह्मलोकं ययौ धीमान् नृपमामन्त्र्य सुन्दरी॥१२॥

राजा दशरथस्त्वं हि रूपेण प्रतिमां भुवि।
श्रुत्वा शुशोच लाभाय कथं प्राप्स्यामि ता स्त्रियम्॥१३॥

तत्रागता नरेन्द्रस्य समीपे देवयोगिनी।
तया पृष्टो महाराज किं त्वं ध्यायसि भूमिपः॥१४॥

अश्वाः गजाश्च मातङ्गास्तव सन्ति शुभाः शुभाः।
पत्तयस्ते तु सामन्ताः परसामन्तदारणाः॥१५॥

राजन् राज्यंस्तवस्फीतं प्रतापहतकण्टकम्।
पत्न्याः सप्तशतार्द्धानि वर्तन्ते रतिमूर्त्तये:॥१६॥

प्रेसयशो महाबाहो देवविस्मयकारकः।
एतत् सर्वं हिते राजन् किं त्वं शोचसि दीनवत्॥१७॥

श्रीराजोवाच-

इदानीं नारदो देवी स्वागतो मम सन्निधौ।
तेन रूपं हि कैकेय्या मह्यं सर्वं निवेदितम्॥१८॥

कथं प्राप्स्याम्यहं तां वा इति शोचामि पण्डिते।
यदि दूतो मया भद्रे प्रेषितव्यो नृपान्तिके॥१९॥

जना सर्वे प्रहास्यं करिष्यन्ति न संशयः।
कथं राजा रघूनां च विवाहे स्वयमुद्यतः॥२०॥

धर्मात्मा सत्यसन्धश्च वृद्धानां पर्युपासकः।
कामकारेण वर्तन्ते राघवो धर्मतत्परः॥२१॥

बोधितो नारदेनाहं विवाहार्थं तया सह।

सूत उवाच-

नरेन्द्रस्य च तद्वाक्यं निशम्य प्राह योगिनी॥२२॥

मोहिनी नरनारीणां रूपिणी जनहारिणी।

योगिन्युवाच-

प्रापयामि महाभाग कैकेयीं तव सन्निधौ॥२३॥

धैर्यं कुरु महीपाल दूतभावे मयि स्थिते।
मोहयिष्यामि गन्धर्वां देवीं वा किमु मानुषीम्॥२४॥

परन्तु श्रुणु काकुत्स्थ सतां धर्मो न ईदृशः।
छलते परदारान् यः परकन्यांश्च यो नरः॥२५॥

स घोरं नरकं यान्ति ताडितो यमकिङ्करैः।
तस्मात् तस्यास्त्वया सार्द्धं विवाहार्थं यताम्यहम्॥२६॥

संगरोवाच-

राज्ञा सभाजिता सापि ययौ शीघ्रं च योगिनी।
देशान् जनपदान् रम्यान् मनसो मोहकारकान्[1]॥२७॥

वनानि रमणीयानि सेवितानि मतङ्गजैः।
नदीश्च विविधाकारास्तरङ्गावर्तभीषणाः॥२८॥

सा हि स्वल्पेन कालेन प्राप्ता कैकयपत्तनम्।
दृष्ट्वा सा नगरं प्राप्ते सरः पङ्कजमण्डितम्॥२९॥

चतुरस्रं च सोपानैः शोभितं स्फटिकोपमैः।
चक्रवाकैस्समाकीर्णं हंससारसमण्डितम्॥३०॥

लक्ष्मणाभिः सदापूर्णं बरटाभिश्च शोभितम्।
निष्पङ्कं निर्मलं स्वच्छं साधूनामिव मानसम्॥३१॥

प्रफुल्लैः शतपत्रैश्च राजितं भ्रमरान्वितैः।
एवं विधं सरो दृष्ट्वा चकार मतिमीदृशीम्॥३२॥

अत्राहं कुटजं कृत्वा वसाम्यस्मिन् सरोवरे।
कायक्लेशं करिष्यामि ह्यात्मप्रारब्धकारणात्॥३३॥

अत्र सर्वजनो नित्यं स्नातुमायाति पत्तनात्।
अत्राप्यश्वपतेः कन्या निश्चयेनागमिष्यति॥३४॥

तया सार्द्धं च संवादो मम चात्र भविष्यति।
तया नीता ह्यहं रम्यमवरोधं च भूपते॥३५॥

द्रक्ष्ये केकयराजं च तदा कार्यं भविष्यति।
इति सा निश्चयं कृत्वा चोवास सरसस्तटे॥३६॥

---

१. मोहकारकारकान्-क

नागरैः पूज्यमाना च नारीभिश्च विशेषतः।
त्वमपि स्नातुमायाता त्वया पृष्टापि तापसी॥३७॥

त्वं च देवि न जानासि चतुरा शुभमात्मनः।
अथवा विस्मृतं भद्रे स्यात्मयाचरितं हि यत्॥३८॥

मया न विस्मृतं रामे कथा तव प्रिया मम।
त्वां ददर्श समीपस्थां पूर्णेन्दुसदृशाननाम्॥३९॥

सुनेत्रां सुष्ठुदशनां सुललाटां शुचिस्मिताम्।
स्वर्णसूत्रेण सुप्रोतो मुक्तां च नसि बिभ्रतीम्॥४०॥

वेणी कामकशाकारां मुक्तादामेन भूषिताम्।
कन्दर्पस्य यथार्पशं तादृशं भुजयोर्द्वयम्॥४१॥

कुचौ च निविडौ पीनौ वर्त्तुलौ श्रीफलोपमौ।
नाभीह्रदं च गम्भीरं जघनं मेखलायुतम्॥४२॥

ऊरूं रम्भौपमौ सुभ्रू चरणो कमठपृष्ठभौ।
एवं विधां हि कामस्य कान्ता रतिमिवापराम्॥४३॥

सुतामश्वपतेर्ज्ञात्वा लेभे सा परमां मुदाम्।
त्वामुवाच शुभाचारा लक्षणज्ञा विशारदा॥४४॥

योगिन्योवाच-

स्वर्गलोको मया दृष्टस्तथा स्वर्गभवास्त्रियः।
भूमेरधोमयाः लोकाः सर्वे दृष्टाः मनोहराः॥४५॥

ईदृशी न मया कन्या देवानां न विलोकिता।
गन्धर्वानां च नागानां रूपवतोऽप्सरसां तथा॥४६॥

अहो धामवयस्तेजो नृणां मोहकरं वपुः।
राजलक्षणसंयुक्ता राजपत्नी भविष्यति॥४७॥

मन्थरोवाच-

इत्युक्ता विररामाथ योगिनी जनमोहिनी।
तस्याः वाक्यं च संश्रुत्वा मन्दहास्यं त्वया कृतम्॥४८॥

त्वया नीता गृहं प्राप्ता मातुस्ते परमाद्भुतम्।
मानिता राजभवने राज्ञा मात्रा त्वया पुनः॥४९॥

प्रासादो परिवासस्तु दत्तस्तस्याः शुचिस्मिते।
एकदा त्वां जगादेति भाग्यं ते देवि विस्तृतम्॥५०॥

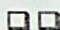
ईदृशस्ते पिता देवि जननीशीलरूपिणी।
गृहं च परमाश्चर्यं दासीदाससमाकुलम्॥५१॥

आल्यस्तव महादिव्याः कामस्य पृतना इव।
भ्राता ते बलीयान्वै पितृमातृयशस्करः॥५२॥

किं बहूक्तेन भो देवि नास्ति काचित् त्वया समा।
पृथिव्या सागरान्ताया राजा भर्त्ता भवेद् यदि॥५३॥

तर्हि रूपस्य साफल्यमन्यथा व्यर्थमेव हि।
विरराम प्रवीणा सा योगिनी जनमोहिनी॥५४॥

इति श्रीसत्योपाख्याने मन्थराकैकेयीसंवादे
पञ्चमोऽध्यायः।



षष्ठोऽध्यायः

मन्थरोवाच-

ईदृशं वचनं तस्याः श्रुत्वा त्वं विस्मयं गता।
पुनस्त्वया च सा पृष्टा तत् सर्वं कथयामि ते॥१॥

कैकेय्युवाच-

अटन्ति पृथिवीं मातः साधवो धर्मविग्रहाः।
सुशीला शान्तरूपाश्च परकार्यरता सदा॥२॥

हरिध्यानरताः सर्वे परोपकृतिनस्तथा।
प्रपन्ना पादमूले ते विष्णोः नारायणस्य हि॥३॥

त्वमप्येतादृशी भद्रे लोके चरसि सर्वदा।
तस्माद्योजय त्वं पत्या सर्वलक्षणशोभिना॥४॥

महावीरेण शुभ्रेण राजसिंहेन मानिना।
धर्मज्ञेन सुशीलेन प्रतापहतशत्रुणा॥५॥

सर्वलक्षणयुक्तेन किं बहूक्तेन योगिनी।

सूतोवाच-

निशम्य वाक्यं कैकेय्या उवाच शुभया गिरा।
स्ववाक्यवशगां ज्ञात्वा कैकेयीं रुचिराननाम्॥६॥

योगिन्युवाच-

विश्वासो यदि रम्भोरु ममोक्तौ च वरानने।
वदामि तुभ्यं राजानं देवासुरनरैर्नतम्॥७॥

विद्यते नगरी दिव्या देवासुरनरैर्नता।
अयोध्या नाम विख्याता विष्णोरत्र पुरी शुभा॥८॥

वसन्ति यस्यां देवाश्च किन्नराः सिद्धचारणाः।
ब्राह्मणाः क्षत्रियाः वैश्याः शूद्राश्च धर्मतत्पराः॥९॥

गृहस्थाः वानप्रस्थाश्च न्यासिनो ब्रह्मचारिणाः।
स्त्रियश्चरति रूपिण्यो नराश्च कामरूपिणः॥१०॥

सरयूतटिनी यत्र राजते जलजैर्युता।
हंसकारण्डवैर्युक्ता चक्रवाकैरलङ्कृता॥११॥

सोपानैर्विविधाकारैर्नानारत्नविचित्रतैः ।
प्रासादैः सर्वदेवानां शोभते मानसोद्भवा॥१२॥

यस्याः दर्शनमात्रेण पापहानिः परं भवेत्।
तस्याः पुर्यास्तु भूपालो नाम्ना दशरथो महान्॥१३॥

चक्रवर्ती महाबाहुः नृपाणां मुकुटो मणिः।
रक्षिता सर्वधर्माणां ज्ञानिनां पर्य्युपासकः॥१४॥

धर्मात्मा सत्यसन्धश्च राजराजश्च शत्रुहा।
महेन्द्र इव दुर्धषस्तेजसाग्निरिवापरः॥१५॥

गिरीश इव प्रासादे सहिष्णुः पितराविव।
बृहस्पतिसमो ज्ञाने सौन्दर्ये मन्मथोपमः॥१६॥

दोर्दण्डकृतनादेन धनुषा रिपुदर्पहा।
ईदृशो यदि ते भर्त्ता भवेत् श्यामे सुलोचने॥१७॥

कुचयोस्तव साफल्यं हे देवि कठिनस्तनि।

सूत उवाच-

कैकेयी वचनं श्रुत्वा योगिन्याः मनसः प्रियम्॥१८॥

अवदद् योगिनीं श्यामा मन्दसस्मितभाषिणी।

कैकेय्युवाच-

नारदस्तु महायोगी एकदा मम सन्निधौ॥१९॥

वव्रे गुणांस्तु भूपस्य राज्ञो दशरथस्य च।
तस्माद् दिनाद्धि मे चेतस्तस्मिन् भूपे च वर्तते॥२०॥

त्वन्मुखाच्च पुनः श्रुत्वा उत्कण्ठा महती मम।
केनोपायेन भूपस्तु कथं मम धवो भवेत्॥२१॥

उपायं ब्रूहि मात्तर्मे येन सः प्राप्यते मया।

योगिन्युवाच-

समीचीनमुपायं च ह्यौदासीन्येन मन्दिरे॥२२॥

तिष्ठस्व धैर्यसंयुक्ता तदा कार्यं भविष्यति।
सुता केकयराज्ञस्तु योगिन्या उपदेशतः॥२३॥

हृदि कृत्वा महाराजमौदासीन्ये ह्यवर्त्तत।
भोजनं नाकरोत् प्रेम्णा पिपासं न जले तथा॥२४॥

न ददर्श सखीः पार्श्वे ताम्बूलं न च खाद वै।
न देहं गूहयामास वस्त्रेण सा वरानना॥२५॥

मुहुर्मुमोच हिक्कां च न सुश्राव जनोदितम्।
अनागसं चुकोपाथ नर्त्तनं न ददर्श सा॥२६॥

तस्याः आल्यश्च तां दृष्ट्वा जग्मुः शीघ्रं च मातरम्।
आहुश्च वचनं प्रेम्णा कैकेय्याः जननीं प्रति॥२७॥

आल्यः ऊचुः -

पश्य पश्य महाभागे स्वसुतां विकृतिं गताम्।
भोजनग्रहणे चेतो देहस्य न हि वर्तते॥२८॥

यदा प्रभृति ते गेहं योगिनी दारमोहिनी।
आगता शाङ्करी माया मूर्त्ता किल नरेश्वरी॥३०॥

यद्दिनात् सन्निधौ तस्याः स्थितिः चक्रे तवात्मजा।
तद्दिनान्मोहमापन्ना न प्रसन्ना शुचिस्मिता॥३१॥

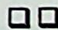
तस्या मुखाच्च भूपानां कथा सुश्राव चित्रधा।
कथाभिर्मोहयामास छलरूपा च योगिनी॥३२॥

श्री सूत उवाच-

सखीनां वचनं श्रुत्वा विस्मयं परमं गता।
युधाजितस्य सा माता महिषी केकयस्य तु॥३३॥

जगाम शीघ्रं कैकेय्याः समीपं वरवर्णिनी।
विलोक्य कैकेयीं म्लानां वचनं चेदमब्रवीत्॥३४॥

इति श्रीसत्योपाख्याने मंथराकैकेयीसंवादे षष्ठोऽध्यायः



सप्तमोऽध्यायः

श्रीसूतोवाच-

का दशा तव हे पुत्रि किं चिकीर्षसि शंस मे।
शरीरे तव का व्याधिस्तां यत्नैर्नाशयाम्यहम्॥१॥

श्रीकैकेय्युवाच-

ममेयं प्रकृतिर्मातर्न चिकीर्षास्तिमानसे।
किं करोमि न मे तृष्णा जायते सर्ववस्तुषु॥२॥

सूत उवाच-

युधाजितस्य सा माता योगिन्या अन्तिकं गता।
जगाद प्राञ्जलिं कृत्वा स्तुवती परया गिरा॥३॥

का दशा मम कन्याया जाता तव समीपतः।
श्यामायै न च वक्तव्यं राज्ञां च गुणविस्तरम्॥४॥

श्रवणेन मनो तासां तेष्वेव रमते स्फुटम्।
तथैव सुन्दरीणां हि वर्णनं कामुकस्य तु॥५॥

पतिव्रताश्च या नार्यः न श्रृण्वन्ति परान् गुणान्।
मनसो न हि विश्वासस्तस्मिन् गच्छति मानवे॥६॥

वशे कुर्वंदुतित्पस्तान् (?) कथाभिश्चवधूजनान्।
अथवा किं न जानासि लोकस्य चरितं त्विदाम्॥७॥

अथवा त्वं न जानासि तपस्यभिरता सदा।

योगिन्योवाच-

मया न ज्ञायते भद्रे लोकवार्ता शुभाशुभा॥८॥

मामपृच्छच्छुभाचारा तव कन्या मनोहरा।
के के देशास्त्वया दृष्टाः भूभुजः के महीतले॥९॥

इति पृष्टा ह्यहं भामे सुतरां रुचिराह्वया।
तदावोचमहं भद्रे कथा दशरथस्य या॥१०॥

अयोध्या वर्णिता राज्ञि तथैव सरयू नदी।
अनया पृष्टया भद्रे कथैव कथिता मया॥११॥

उच्चाटनं न जानामि मोहनं च विशेषतः।
अनायासेन मोहं सा प्राप्ता चन्द्राधिकानना॥१२॥

सूत उवाच-

योगिनीवचनं श्रुत्वा महिषी केकयस्य तु।
विवेश भवनं सुभ्रू विस्मयाविष्टमानसा॥१३॥

रात्रौ समागतौ राजा शयनार्थं ततो द्विजाः।
कैकयाधिपती राजा राज्ञीं वचनमब्रवीत्॥१४॥

वदनं ते ह्यतिम्लानं वर्तते केन हेतुना।
सत्यं कथय मे राज्ञि पादयोः शापिता मम॥१५॥

राज्ञोवाच-

विवाहं कुरु कैकेय्याः श्यामायास्त्वं च भूमिपः।
राज्ञा दशरथेनैव कौशलस्याधिपेन च॥१६॥

योगिन्या वर्णितं तस्यै चरितं तस्य भूपते।
तं निशम्य दिवानक्तं कन्याया रमते मनः॥१६॥

तस्मिंश्च रमते भूप तस्मा द्योज्या हि तेन सा।

राजोवाच-

तव वाक्यं करिष्यामि प्रातरेव न संशयः॥१७॥

कन्या शीघ्रं तु दातव्या वराय कुलशालिने।
तयोश्च कुर्वतो वार्तां व्यतीता रजनी द्विजः॥१९॥

कृत्वा स्नानं च भूपस्तु प्राविशन् महतीं सभाम्।
उपविष्टे महीपाले सभाजग्मुः सभासदः॥२०॥

मन्त्रिणश्च तथा सर्वे सभां प्राप्ता अनेकशः।
राजानं च नमस्कृत्य विविशुः स्वं स्वमासनम्॥२१॥

राज्ञः पुरोहितो धीमान् नाम्ना गर्गो महामतिः।
राज्ञः समीपं सः प्राप्य छत्रैः परिवृतो द्विजः॥२२॥

पूजयामास राजा तु द्विजं क्षत्रियपुङ्गवः।
पीठे निवेशयामास गर्गं रत्नविचित्रिते॥२३॥

क्षितिपालस्य ते सर्वे आदधु दृष्टिमानने।
प्रोवाच मन्त्रिणः सर्वान् मुख्यान् राजपरिगृहे॥२४॥

राजोवाच-

साकेतनगरे राजा नाम्ना दशरथो बली।
तस्मै देया मया कन्या कैकेयी नामतो जनाः॥२५॥

यदि रोचते मद्वाक्यं क्रीयतामवलम्बितम्।

सूत उवाच-

इति वाक्यं नरेशस्य श्रुत्वा सर्वजनोब्रवीत्॥२६॥

नादयन्त्या गिरा गेहं क्षितीशं धर्मतत्परम्।

जनसमूह उवाच-

समीचीनं समीचीनं वचनं ते नरेश्वर॥२७॥

कन्या तस्मै प्रदातव्या सूर्यवंशध्वजाय सा।
इति प्रब्रुवतां तेषां मन्त्री चैक उवाच वै॥२८॥

श्रूयते खलु वृद्धो हि राजा दशरथः कृती।
पुरन्ध्र्यः सन्ति बह्वश्च तस्य राज्ञो महीपतेः॥२९॥

कथं देया ह्यपुत्राय बहुपत्नियुताय च।

सूत उवाच-

तदा प्रोवाच गर्गस्तु विप्रो राजपुरोहितः।
श्रोतव्यं वचनं सर्वैरिति मे प्रेमतो जनाः॥३०॥

गर्ग उवाच-

कैलासे पर्वते श्रेष्ठे अलका नाम वै पुरी।
नन्दया गङ्गया रम्यावृता चालकनन्दया।
तस्यां वसति वै राजा कुबेरो धनपालकः॥३१॥

तेन यज्ञं कृतं पूर्वं श्रीहरेः प्रीतिकाम्यया।
तत्राजग्मुः सुरगणाः ब्रह्माद्याश्च दिवौकसः॥३२॥

तथा ऋषिगणाः सर्वे यज्ञे च धनदस्य च।
आजगाम शिवो यत्र पार्वत्या नन्दिना सह॥३३॥

पुत्राभ्यां सहितो देवो गणेशेन गुहेन च।
शिवं निवेशयामासुः सभामानय्यते जनाः॥३४॥

धनपालस्य यज्ञस्तु बभूव परमाद्भुतम्।
निर्विघ्नेन समाप्तस्तु यज्ञोयं धनदस्य च॥३५॥

नोपद्रवः कृतः सत्रे रावणस्य हि राक्षसैः।
इति सर्वे जना चैवं पप्रच्छु गिरिजापतिम्॥३६॥

जनाः ऊचुः-

गङ्गाधर महादेव प्रलये प्रलयङ्कर।
सर्वं जानासि देवेश भूतं भव्यं भवत् प्रभो॥३७॥

रावणो राक्षसैः सार्द्धं कदा नाशं व्रजिष्यति।
देवर्षिपितृभूतानां सर्वोपद्रवकारकः॥३८॥

जगदीश्वर उवाच-

शृणुध्वं सकला देवाः भविष्यचरितं महत्।
अयोध्यायां महापुर्यां राघवो वरीवर्ति हि॥३९॥

तस्य पत्नी सुमित्रा च कौशल्या भानुमन्तजा।
अपरा कैकेयी नाम्ना तथान्याश्च महात्मनः॥४०॥

तासु पुत्राः भविष्यन्ति चत्वारः परमाद्भुताः।
नाम्ना रामश्च शत्रुघ्नो लक्ष्मणो भरतस्तथा॥४१॥

सर्वलोकस्य कर्तारस्ते कोशलकुमारकाः।
उपास्या द्विजदेवानामस्माकं विश्वभावनाः॥४२॥

तेषां मध्ये च यो रामो भ्रातृणां ज्येष्ठ एव सः।
पितुराज्ञां पुरस्कृत्य वनं रामो गमिष्यति॥४३॥

पुत्रपौत्रादिकैः सार्द्धं रावणं स वधिष्यति।
स्वस्था भवन्तु भो देवाः मा चिन्तां क्रियतां हृदि॥४४॥

गर्ग उवाच-

इति वृत्तमहं यज्ञे ह्यश्रौषं त्र्यम्बकात् पुरा।
तस्मादिक्ष्वाकवे देया कन्येयं हे सभासदः॥४५॥

राजोवाच-

सम्यगुक्तं त्वया ब्रह्मन्निदं वृत्तं महामते।
कन्या तस्मै प्रदास्यामि नररत्नाय भो गुरो॥४६॥

गत्वायोध्यां प्रकर्तव्यो विवाहस्तु त्वयानघ।
कैकेय्या तस्य भूपस्य समयेन महामते॥४७॥

समयस्त्वीदृशो विप्र धार्यतां प्रवदामि ते।
कैकेय्यां मम पुत्र्यां तु राज्ञः पुत्रो भविष्यति॥४८॥

तस्मै राज्यं प्रदेहि त्वं समयेनानेन गृह्यताम्।
एवं कृत्वा त्वया विप्र देया कन्या नृपाय वै॥४९॥

गर्ग उवाच-

गमिष्यामि महाराज नगरं प्रति भूभुजम्।
विवाहं कारयिष्यामि पुत्र्यास्ते समयेन तु॥५०॥

सूत उवाच-

राज्ञाज्ञप्तस्तु स क्षिप्रः प्रतस्थे विमलां प्रति।
फलदानं त संगृह्य विप्रैः नागरिकैश्च सह॥५१॥

शुश्राव कैकेयी वृत्तमिति प्रोवाच योगिनीम्।

कैकेय्युवाच-

हे योगिनि महामाये गृहीष्व वचनं मम॥५२॥

गच्छायोध्यां पुरीं रम्यां राजानं ब्रूहि मद्दशाम्।
यथा गृह्णाति मां भूपो दासी तव भवाम्यहम्॥५३॥

गर्गो याति विवाहार्थं मम त्वं गच्छ चाग्रतः।
कैकेयीवचनेनैव विज्ञाप्य सकलाजनान्॥५४॥

योगिनीं विमलां प्राप्य गर्गादग्रे द्विजोत्तम।
चरितं वर्णयामास ह्यात्मना यदनुष्ठितम्॥५५॥

राजा मुमोद तत् श्रुत्वा ध्यायन् गर्गस्य वागमम्।
एवं काले प्रयाते च ह्ययोध्यां प्राप्य वै मुनिः॥५६॥

राजा तु निर्ययौ विप्रं गृहीतुमग्रतो द्विजैः।
प्रणम्य पादौ विप्रस्य पाद्यमर्घ्यं ददौ नृपः॥५७॥

श्रीराजादशरथ उवाच-

साम्प्रतं जन्म सफलं जातं मम त्वया द्विज।
दिष्ट्या मूर्ध्ना मया पादौ स्पृष्टौ ते दुरितक्षयौ॥५८॥

अनुकम्पा मे विप्राणां दासे दीने कृता त्वया।
ब्राह्मणा हरिभक्ताश्च भूतेषु सुहृदं सदा॥५९॥

भूव्यटन्ति महात्मानः पुनातो निखिलं जगत्।
ईक्ष्वाकूनामहं धन्यस्तवदर्शनकारकः॥६०॥

प्रवेशं कुरु हे विप्र रघूनां भवनेषु च।
अयोध्येयं पुरी धन्या यत्र प्राप्तो भवादृशः॥६१॥

वैष्णवा ब्राह्मणाश्चैव गेहे देशे च पत्तने।
यत्र यत्र न वै यान्ति व्याघ्रक्रोष्टुगृहाश्च ते॥६२॥

पुनीहि पादयोः धूल्या तस्माच्चेदं गृहं मम।
स्तुत्वा चैवं मुनिं गृह्य ब्राह्मणैः सह राजराट्॥६३॥

गृहं प्रवेशयामास विधिना विहितेन च।
गर्गस्तु मन्दिरं प्राप्य ददर्श महतीं श्रियम्॥६४॥

जहर्ष मतिमान् विप्रो दृष्ट्वा राज्ञो महोदयम्॥६५॥

इति श्रीसत्योपाख्याने सूतशौनकसंवादे श्री राजागर्गसमागमो नाम सप्तमोऽध्यायः।



अष्टमोऽध्यायः

सूत उवाच-

अथ दशरथो राजा ययाचे भोजनायतम्।
चतुर्विधं सुपक्वान्नं भुज्यतां ब्राह्मणैः सह॥१॥

गर्गोवाच-

तव संदर्शनादेव छिन्नो मे सर्वसंशयः।
यस्माद् ब्रवीषि धर्मं त्वमिक्ष्वाकूनां महारथः॥२॥

मनुः प्रभृतिः राजानः सूर्यवंशनरेश्वराः।
पूजिताश्चार्थिनो यैस्तु दानैर्मानैर्विशेषतः॥३॥

रघूनां हृदयं नैव प्रापुरन्याः किलास्त्रियः।
पृष्ठं न लेभिरे युद्धे रिपवः शस्त्रपाणयः॥४॥

वाणी न शक्यते स्तोतुं रघुवंशनरेश्वरः।
रघूनां यशसा व्याप्तं भूगोलं वर्तते नृप॥५॥

देवलोके च गायन्ति देवकन्यासहस्रशः।
यशस्तव महाराज पाताले नागकन्यकाः॥६॥

यशसा तव हे राजन् कर्णौ पूर्णौ ममानघ।
न त्रयोः सकलार्थाय सन्निधिस्ते जनाधिप॥७॥

आशया चागतो राजन् अहं दूरात्तवान्तिकम्।
पूर्णां कुरु ममाशां च वदान्यानां शिरोमणिः॥८॥

तदा भुञ्जे महाराज तवान्नं प्रीतमानसः।
निशम्य च मुनेर्वाक्यमब्रवीत् स नरोत्तमः॥९॥

ध्यायन् च योगिनीवाक्यं श्रीगर्गं कौशलाधिपः।

श्रीदशरथोवाच-

कथयस्व महाभाग वाञ्छितं आत्मनः शुभम्॥१०॥

तथैवाहं करिष्यमि यथाज्ञा द्विज जायते।
किं बहुक्तेन ते कार्यं प्राणैरर्थैश्च साधये॥११॥

गर्गोवाच-

प्रेषितोऽहं नरेन्द्रेण काश्मीरस्याधिपेन च।
तुभ्यं दास्यति कन्या स समयेन नराधिपः॥१२॥

समयं शृणु भो राजन्निति तस्य महीपतेः।
कैकेय्यां मम कन्यायां यस्तु पुत्रो भविष्यति॥१३॥

तस्मै राज्यं ददात्वेवं गृह्णातु मम कन्यका।
अनेन समयेनापि विवाहं कुरु भूमिप॥१४॥

अद्य प्रोक्तं त्वया चैव प्राणैरर्थैश्च साधयेत्।
इति प्रोक्तं त्वया, मह्यमिदानीं क्रियतां नृप॥१५॥

सूत उवाच-

राजा निशम्य तद्वाक्यं मनस्येतद् विचारयत्।
किमयं कथ्यते विप्रो मनसो भ्रमकारकम्॥१६॥

विवाहस्तु ममाभीष्टो पुत्रे राज्यसमर्पणम्।
यदि चेन्ममपुत्राश्च भविष्यन्ति ह्यपुत्रिणः॥१७॥

ते चापि स्वस्य वंशस्य मर्यादां च कुमारकाः।
न त्यक्षंति महात्मान आदाविक्ष्वाकुना कृतम्॥१८॥

हृदि निश्चित्य राजा च वशिष्ठादिभिरात्मवान्।
निश्चयं चात्मनः कृत्वा गर्गमाह कृताञ्जलिः॥१९॥

यथा वदसि भो विप्र तथैव करवाण्यहम्।

सूत उवाच-

गर्गस्तु भोजनं चक्रे अनेन समयेन च॥२०॥

राज्ञा दशरथेनापि जग्मे कैकयपत्तनम्।
अयोध्यां मन्त्रिषु न्यस्य विवाहार्थं महाद्युतिः॥२१॥

काश्मीरदेशपालेन पूजितः परमार्हणैः।
चकार ग्रहणं पाणेः कैकेय्याः राजपुङ्गवः॥२२॥

काश्मीरस्य पतिः प्रीतः पारिबर्हं ददौ मुदा।
चक्रीवतस्कगन्धर्वान् कम्बलान्यजिनानि (च)॥२३॥

गृह्य मन्थरया साकं कैकेय्यां नृप आत्मजाम्।
विवेश विमलां प्रीतो वृतः सैन्यैर्महाबलैः॥२४॥

रेमे राजा तया सार्द्धं संवत्सरगणान् बहून्।
पौलोम्या च यथा देवः अयोध्यायां तथा नृपः॥२५॥

चकार विविधां क्रीडां पत्न्येव गुह्यकेश्वरः।
ईदृशो नहि राजासीदन्ये ये सोमसूर्ययोः॥२६॥

मन्थरोवाच-

वर्णितं ते मया भद्रे विवाहं तु मनोहरम्।
अनेन समयेनापि स्मारितं ते सुलोचने॥२७॥

कि वदन्ति सपत्न्यस्तु विस्मृत्य समय तव।
यदि रामस्य राज्यं च यौवने च भविष्यति॥२८॥

तदा वयं निरुत्साहाश्चेटिकास्ते भवेमहि।

सूत उवाच-

निशम्य वाक्यं कुब्जायाः कैकेयी चास्मितानना॥२९॥

कर्णौ स्थितेन पद्मेन निघ्नन्ती प्राह मन्थराम्।

कैकेय्युवाच-

कर्मणा त्वं च जानामि दैत्यकन्यां च मन्थरे॥३०॥

ईदृशी यदि रामे च बुद्धिस्तव समागता।
जिह्वा च छेदनं चैव कर्त्तव्यं तव पापिनी॥३१॥

नेत्रयोः पातनं चैव नासिकाग्राः विशेषतः।
इदं पापसमूहं ते स्थगुरूपेण वर्तते॥३२॥

पृष्ठोपरि महापापे श्रीरामे क्रूरदर्शिनी।
पुनर्जघान पद्मेन मन्थरां चारुहासिनी॥३३॥

सूत उवाच-

घटिकान्तरमात्रेण राजा दशरथो द्विज।
उवाच शत्रुहन्तारं तात (आ-) कारय कैकेयीम्॥३४॥

सौधस्थितां च हे पुत्र गृहीत्व हस्तमानय।
पत्न्या सर्वा स्थिता यत्र किं करोति कैकेयी॥३५॥

सूत्र उवाच-

शत्रुघ्नः सखिभिः सार्द्धं प्रासादं करकन्दुकः।
आरुरोह महावीर्यो मातुराकारनाय वै॥३६॥

मातरं वीक्ष्य शत्रुघ्नः प्रोवाच कलनूपुरः।

शत्रुघ्नोवाच-

अम्बाम्बा गच्छ भो मात ह्यधो मन्थरया सह॥३७॥

राजाकारयते त्वां च गन्तव्यं तत्र वै त्वया।
इत्युक्त्वा हस्तमाकृष्योत्थापयामास कैकेयीम्॥३८॥

शत्रुघ्नो रिपुवीरघ्नो महावीरो महाबाली।
कैकेय्याः शाटिकान्तं च प्रकृष्य मन्थराब्रवीत्॥३९॥

पुनश्च श्रूयतां भद्रे मद्वाक्यं प्रेमतः प्रिये।
शत्रुघ्नस्य सखायस्तु मन्थरां वाक्यमब्रवीत्॥४०॥

इति श्रीसत्योपाख्याने सूतशौनकसंवादे

अष्टमोध्यायः।



नवमोऽध्यायः

बाल उवाच-

मुञ्च मुञ्च त्रिवक्त्रे त्वं भरतस्य च मातरम्।
मन्थरा चोत्थिता कोपाज्जनौ हस्तं निधाय च॥१॥

भर्त्सयामास सा बालानङ्गुलिभङ्गं च कुर्वती।
शीघ्रं तताड शत्रुघ्नो तावतस्याश्च कूबरे॥२॥

पपात मन्थरा भूमौ हाहाशब्दं च कुर्वती।
शत्रुघ्नोपि महावीर्यो जहास बालकैः सह॥३॥

हस्ताङ्गुली च कैकेय्याः गृहीत्वा पितुरन्तिके।
निनाय मातरं बालाः जहास मन्थरां प्रति॥४॥

मन्थरा चाययौ तत्र स्खलन्ती च पदे पदे।
राज्ञः पपात सा चाग्रे कराभ्यां निघ्नती स्तनौ॥५॥

शत्रुहा बालकैः सार्द्धं दुद्राव सदनाद् बहिः।
मन्थरां रुदतीं दृष्ट्वा भूपाग्रे निघ्नती शिरः॥६॥

सोपालम्भमिदं वाक्यं जगाद मन्थरा नृपम्।

मन्थरोवाच-

त्वं मां पश्य महाराज पतितां धरणीतले॥७॥

शत्रुघ्नेन कुमारेण पृष्ठदेशे च ताडिताम्।
वज्ररूपपतङ्गेन सुमित्रातनयेन माम्॥८॥

नाम्ना कुब्जेति विख्याता मन्दिरे तव भूमिप।
स्तनभारेण नम्नाहं न तु कुब्जं मयि स्थितम्॥९॥

इदानीं रूपतो जाता शत्रुघ्नेन च ताडिता।
कुब्जां कृत्वा त्वया राजन् पुत्रद्वारेण भूभुज॥१०॥

पुनरुत्थाय सा चण्डी सुमित्रां वाक्यमब्रवीत्।
अहो देवि कुमारेण कन्दुकेन च ताडिता॥११॥

शत्रुघ्नेन महाभागे प्रेरितेन त्वया ह्यहम्।
श्रीसुमित्रोवाच-
न मया प्रेरितश्चण्डीश शत्रुहा करकन्दुकः॥१२॥

बालकानां स्वभावो हि रोदने ताडने ध्रुवम्।
वर्तते मन्थरे मां किं सोपालम्भमिदं वचः॥१३॥

तावज्जगाद रामस्य धात्री परमसुन्दरी।
मुखं विलोक्य राज्ञस्तु सपत्नीनां तथैव च॥१४॥
धन्योवाच-

मन्थरे शृणु मद्वाक्यमर्भकस्य क्षमस्व तत्।
अपराधं महापापे बालानां क्रीडने सदा॥१५॥ १६॥

न वज्रपतनं जातं कूबरे तव पापिनि।
ताडने कन्दुकस्येव गदाभग्नेव रोदसि॥१६॥
सूत उवाच-

कुब्जा निशम्य वाक्यं तु धन्याधात्र्यमुखेरितम्।
विचार्य हृदये चार्थं तस्य वाक्यस्य मन्थरा॥१७॥

ऊचे रामस्य धात्रीं च तत्तुभ्यं वर्ण्यते द्विज।
मन्थरोवाच-
प्रतिसम्बोधनं मां च पापे पापकुभाषिणि॥१८॥

त्वं वदसि महाधूर्ते कटाक्षे मोहिनी नृपम्।
शत्रुघ्नकरमुक्तोऽयं कन्दुको वज्रसन्निभः॥१९॥

तेन पृष्ठिश्च मे भग्ना तस्यां जातं च कुब्जकम्।
त्वया धन्ये कृतं सर्वं राममानीय चात्र हि॥२०॥

न रामो ह्यत्र चायाति न चैताः पुत्रमातरः।
इत्येवं विललापाथ मन्थरा पापदर्शना॥२१॥

उवाच जनतां क्रूरं निघ्नती आत्मनः शिरः।
येषां क्रूरस्वभावश्च क्रूरकर्मणि ते स्थिताः॥२२॥

हसन्ति किल नारीणां ताडने कन्दुकादिभिः।
राजा दशरथस्तां तु जगाद मन्थरां तदा॥२३॥

श्रीराजा दशरथोवाच-

मा कुरु रोदनं भद्रे चिकित्सां कारयामि ते।
हरिद्रां तव पृष्ठे च लेपयामि न संशयः॥२४॥

मन्थरोवाच-

मां किं वञ्चयसे राजन् व्रणं कृत्वा च पृष्ठके।
लेपनं चैव क्षारस्य ह्यग्निदग्धे वचो यथा॥२५॥

कदापि ह्यस्य वाक्यस्य फलं प्राप्यसि भूपते।
इत्येवं वदतीं पापां मन्थरां पापदर्शनाम्॥२६॥

भर्त्सयामास कैकेयी शत्रुघ्नप्रियकारिणी।
अन्याभिर्भर्त्सिता चण्डी विवेश गृहकोणकम्॥२७॥

लज्जिता तत्र सा कुब्जा खिन्ना भूत्वावसच्चिरम्।
कैकेय्याः भवनाद्राजा पत्नीभिः किल वीक्षितः॥२८॥

प्रहसन् प्रययौ गेहं राममातुः सुभास्वरम्।
राजपत्न्यो ययुर्गेहं कैकेय्या चाभिनन्दिताः॥२९॥

शौनकोवाच-

श्री रामे चापि शत्रुघ्ने भरते लक्ष्मणे यथा।
सर्वेषामधिका प्रीतिर्जनानां पुरवासिनाम्॥३०॥

येषां चेतो न वै रामे लग्नं ते पशवः स्मृताः।
ब्रह्माद्या सकलाः देवाः सनकाद्यास्तपोधनाः॥३१॥

शेषाद्याः पार्षदाः सर्वे कमलाद्याः विभूतयः।
इन्द्राद्याः देवताः सर्वे मन्वाद्याः ज्ञानिनो नराः॥३२॥

सर्वे राममुपासन्ते योगिनो योगतत्पराः।
पुंसां मोहनरूपे च नारीणां मनोहारके॥३३॥

रामभद्रे कथं पापा दुष्टा द्रोहं चकार सा।
अभिप्रायं तु कुब्जायाः वद सूत महामते॥३४॥

कारणेन विना सा हि कथं राज्यविघातिनी।

पूर्वजन्मनि केयं च नाम्ना चाभूत् मन्थरा।
इति सर्वं महाबुद्धे कथयस्व महामते॥३५॥

इति श्रीसत्योपाख्याने सूतशौनकसंवादे नवमोऽध्यायः।



दशमोऽध्यायः

श्रीसूत उवाच-

श्रृणुध्वमृषयः सर्वे कथां पौराणिकीं शुभाम्।
रामराज्ये यथा विघ्नं चकार वत मन्थरा॥१॥

अयोध्यावासिनः सर्वे विस्मयं लेभिरे तदा।
तस्मिन् काले महातेजा लोमशो मुनिसत्तमः॥२॥

आजगाम मुनिर्द्वारो वासुदेवपरायणः।
तं प्रणम्य मुनिं सर्वे पप्रच्छुः पुरवासिनः॥३॥

इदमेव महाभागाः श्रीमद्‌भिः पृच्छतेऽधुना।

लोमशोवाच-

कथयिष्यामि मो लोकाः मन्थराचरितं महत्॥४॥

यच्छुत्वा भिद्यते ग्रन्थिरुत्पन्ना हृदयेषु वः।
दैत्यानां प्रवरो राजा प्रह्लादस्य सुतो बली॥५॥

नाम्ना विरोचनो दैत्यो ब्रह्मण्यः सत्यसङ्गरः।
तस्येयं मन्थरा कन्या पूर्वजन्मनि नागराः॥६॥

तत्रापि मन्थरा नाम दैत्यकन्या यदा ह्यभूत्।
विरोचनस्तु धर्मात्मा ब्रह्मण्यो धर्मवत्सलः॥७॥

राज्यं जहार देवानां तेन देवाः विलज्जिताः।
हतश्रियो निरानन्दा आचार्यशरणं गताः॥८॥

बृहस्पतिं सुरैः पूज्यमब्रुवनात्मनो हितम्।

देवा उवाच (ऊचुः)-

वदोपाय महाबुद्धे येन लक्ष्यामहे दिवम्॥९॥

विरोचनेन सर्वं नो राज्यं लब्धमकण्ठकम्।
त्वया न ज्ञायते स्वामिन् अस्माकं कथनेन किम्॥१०॥

सूत उवाच-

प्राहोपायं महाबुद्धिर्देवान् प्रति बृहस्पतिः।
यूयं तु ब्राह्मणा भूत्वा प्रयान्तु दैत्यमन्दिरम्॥११॥

कुर्वन्तु याचनां देवाः सौम्यवाक्येन मोहयन्।
दैत्यं परमधर्मज्ञं तिष्ठन्तं सत्यधर्मयोः॥१२॥

यदि दाने प्रतिज्ञां च कुरुते दैत्यसत्तमः।
तस्माद्याचत चायुंषि यूयं हि स्वार्थतत्पराः॥१३॥

प्रदास्यति महातेजाः ज्ञात्वा देहं च चञ्चलम्।
निर्दिष्टा गुरुणा देवा दैत्यराज्यं समाययुः॥१४॥

कृत्वा ब्राह्मणवेषांश्च तिलकादिभिरन्विताः।
विरोचनस्तु धर्मात्मा ज्ञात्वा देवान् समागतान्॥१५॥

ब्रह्मरूपधरान् शत्रून् पूजयामास धर्मवित्।
अद्य गृहं समायाता ब्राह्मणाः क्षितिदेवताः॥१६॥

वाञ्छितं ब्रूत धर्मज्ञ किमर्थं मे गृहागताः।

देवाः उवाच (ऊचुः)-

परागाय यथा भृङ्गाः पुष्पाणां विद्रवन्ति च॥१७॥

कलितं च यथा वृक्षं पथिकाश्च पतत्रिणः।
दानिनं ह्यर्थिनः सर्वे युवतीमिव कामुकाः॥१८॥

तथैव त्वां वयं सर्वे विद्धि याञ्चार्थिनो नृप।

विरोचनोवाच-

याचध्वममरा कामं किं ददाम्यहमात्मनः॥१९॥

भूतयः परकार्याय नृणां सन्ति युगे युगे।
द्रुमानां च फलानीव रत्नानीव महोदधेः॥२०॥

जलानीव च मेघानां मलये चन्दनं यथा।
तथैव मम सर्वं च देहेन सह ब्राह्मणाः॥२१॥

कीर्तिस्तु पृथिव्यां मे श्रीमतां च प्रसादतः।

लोमश उवाच-

वाक्यं निशम्य राज्ञस्तु ह्यमरा ब्रह्मरूपिणः॥२२॥

दैत्यं परमधर्मज्ञं कपटाच्च ययाचिरे।

देवाः ऊचुः-

आयुर्देहि महाराज ब्राह्मणेभ्यो हि याचितम्॥२३॥

वचनं तु समाकर्ण्य देवानां कामरूपिणाम्।
जहासोच्चैर्महादैत्यः प्रहसन् वाक्यमब्रवीत्॥२४॥

गृह्यतां काममेतेन आयुषा मे धनेन किम्।
आश्रित्य मानुषं देहं नोपकाराय कल्पते॥२५॥

न कृता विप्रसेवा च तेन किं नरजन्मना।
देहं मुमोच धर्मात्मा सर्वेषां पश्यतां सुधीः॥२६॥

बभूव परमं कष्टं दैत्यानां दुःखदं महत्।
हाहाशब्दं च लोकेषु कर्म दैत्यस्य श्रृण्वताम्॥२७॥

देहे दैत्यस्य वृष्टिश्च पुष्पाणां स्वर्गिभिः कृतः।
इन्द्रादयो लोकपालाः विरञ्चिभवसंयुताः॥२८॥

प्रशंसन्ति महत्कर्म दैत्येनाचरितं हि यत्।
आदितेयाश्च ते सर्वे संक्रन्दनपुरःसराः॥२९॥

त्रिदिवं भेजिरे सर्वे संपरेते विरोचने।
परमानन्दमापन्नास्त्रिदिवेशाः महाबलाः॥३०॥

दैत्यानां च महोशोको मृते राजन्यभूत् किल।
समेताः संघशः प्रोचुः सभायामेकदा स्थिताः॥३१॥

अहो देवा महाधूर्ता अस्माकं हनने रताः।
छलेनास्माकं पालस्य हृताः प्राणाः महीपतेः॥३२॥

किं कुर्मो हि वयं कस्य शरणं वै व्रजामहे।

लोमशोवाच-

एतस्मिन्नन्तरे लोकाः मन्थरा दैत्यरक्षका॥३३॥

सुता विरोचनस्यासीत् पण्डितासुरकर्मसु।
उवाच दैत्यान् सदसि प्रगल्भा दैत्यरक्षणे॥३३॥

मन्थरोवाच-

अहं रक्षां करिष्यामि युष्माकं चात्मविद्यया।
चरन्तु निर्भयाः लोके हननार्थं दिवौकसाम्॥३४॥

प्रोक्तं मंथरया वाक्यं निशम्य दनुजात्मजाः।
तुष्टवुर्मुदितास्तां तु वाक्यैः सन्दर्भशोभनैः॥३५॥

उद्यमं परमं चक्रुश्चोदिता दैत्यकन्यया।
मयांथ शम्बरो बाणो बलिः त्रिपुरवासिनः॥३६॥

पौलोमाः कालकेयाश्च प्रह्लादाद्याः महाबलाः।
वाहनानि प्रयुञ्जतो दंशिता दुष्टचेतसः॥३७॥

गजानारुरुहुः सर्वे रथानन्ये च काश्यपाः।
अश्वैः केचिच्च निर्याताः शूकरैर्गवयैर्मृगैः॥३८॥

सिंहैरन्यैः खरैरन्येवस्तैः पक्षिभिर्निर्ययुः।
आनकान् वादयन्तश्च शंखानन्ये च शत्रवः॥३९॥

अग्रे गताः महावीर्याः सेनाया ध्वजधारिणः।
दैत्यानां च समुद्योगं वीक्ष्य शङ्कितमानसः॥४०॥

देवदूतो महाबुद्धिः नाम्ना शौनकश्चाशुगः।
कथयामास चेन्द्राय साहाय्यं मन्थराकृतम्॥४१॥

देवराजो महातेजा देवानाज्ञापयत् तदा।
वध्यतां दैत्यसङ्घानां बलं सर्वे हि देवताः॥४२॥

देवराजेन चाज्ञप्ता देवाः सर्वे च निर्गताः।
गन्धर्वा ये च गायन्ति देवानामग्रतो मुनेः॥४३॥

केतुभिः शोभमानाश्च कम्पमानैश्च वायुभिः।
गजराजं समारूह्य वज्रपाणिं सुरारिहा॥४४॥

उदन्वानिव देवानां दैत्यानां बलमाबभौ।
पृथिव्यां चाभवद् युद्धं जनानां भयकारकम्॥४५॥

द्वन्द्वयुद्धं महाभीमं देवदानवयोर्महत्।
देवैः पराजिताः दैत्याः स्मरन्तो मन्थरागिरम्॥४६॥

निर्ययुः शरणं तस्याश्चात्मत्राणाय भीरवः।

मन्थरा च महापापा देवानां नाशहेतवः।
निर्जगाम गृहात्तूर्णमाकाशं चात्मविद्यया॥४७॥

श्रीलोमशोवाच-

तत्र स्थिता शुनासीरान् गणयामास तत्क्षणम्।
आदित्यांश्च महेन्द्रादीनश्विनौ मरुतस्तथा॥४८॥

विश्वेदेवावसूंश्चैव रुद्रान् वीरान् विनायकान्।
संख्यां कृत्वा च सर्वेषां हस्ते पाशान् समादधे॥४९॥

पाशैर्बबन्ध देवानां विमानानि वाहनान्।
पातयामास स भूमौ च गजराजं महाबलम्॥५०॥

आखण्डलोपि वै शीघ्रं गजपीठाच्च वेपतः।
पलायतो गजं त्यक्त्वा देवान् सर्वांश्च गोत्रभित्॥५१॥

ग्राहं वै वरुणस्यैव वस्तं चाग्ने तथैव च।
वायो मृगं तथा शीघ्रं देव्याः सिंहं महाबलम्॥५२॥

आदित्यानां तथा चाश्वान् वायुवेगसमान् जवे।
मूषकं च गणेशस्य नीलकण्ठस्य नन्दिनम्॥५३॥

कुमारस्य मंयूरं च तथा चान्यान् बबन्ध सा।
महिषं यमराजस्य शिविकां धनदस्य च॥५४॥

स्यन्दनं सोमराजस्य बबन्ध मन्थरा भृशम्।
बध्वा सर्वान् महाचण्डी पाशं जग्राह पाणिना॥५५॥

गृहीत्वा कर्षणं चक्रे देवानां सत्त्वशालिनाम्।
लज्जिताश्चाभवन् देवा वीक्षतश्च परस्परम्॥५६॥

गन्धर्वाश्च तदा सर्वे जगदुर्निज्जरान्प्रति।

गन्धर्वा ऊचुः-

क्व गतो मघवा देवा हित्वा चेभवल्लभम्॥५७॥

अहल्यासङ्गकर्ता च देवराजो न दृश्यते।
क्व चास्ति गुरुपत्न्याश्च गामी चन्द्रो निशाकरः॥५८॥

क्व चास्ति रुद्रो जगतः प्रलये निरतः सदा।
स्त्रीस्वरूपस्य यो विष्णोरधावत् पृष्ठतः पुरा॥५९॥

क्व चास्ति धनदो राजा रणे काणो हि मन्दधीः।
पार्वत्या मुखपद्मेन पिङ्गत्वं प्राप चक्षुषि॥६०॥

कुत्र चास्ति सुराचार्यो भ्रातुः पत्न्यांश्च भोगवान्।
भोग एव रता सर्वे न च संरक्षणे सुराः॥६१॥

अस्माकं पीड्यमानानां बले स्वत्प्रारणाजिरे।
विनिन्दतस्तदा देवान् गन्धर्वा रणपीडिताः॥६२॥

विश्वावसुस्तु गन्धर्वान् स्वान् गणान् अतर्जयत्।

विश्वावसुरुवाच-

कुगीतं नैव गायन्तु सदा देवैश्च पालिताः॥६३॥

गुणाः तेषां परित्यज्य यूयं वै ह्यगुणे रताः।
यथा काले वने भुक्तं त्यक्त्वा सर्वफलं विषम्॥६४॥

नारायणस्य चाङ्गानि देवाद्येते महाबलाः।
तान् निन्दन्ति महापापास्ते वै नरकगमिनः॥६५॥

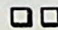
निन्दन्ति देवान् खलु पापमूढाः
साधूंश्च विप्रान् हरिवैष्णवांश्च।
तीर्थानि सिन्धुश्च व्रतान् ममांश्च
ते वै गमिष्यन्ति यमालयं वै॥६६॥

माननीयं वचो ह्येषां कर्म चैषां क्वचित् क्वचित्।
तस्माद्यशो हि गायन्तु सुराणां प्रधने बुधाः॥६७॥

एते क्षणाच्च जेष्यन्ति दैत्यान् विष्णोः विभूतयः।
सदा लाभो जयस्तेषां येषां विष्णुः प्रसीदति॥६८॥

निर्भत्सिताश्च ये सर्वे गन्धर्वा स्वेन स्वामिना।
लज्जिताश्चाभवन सर्वे जगुर्देवान् महास्तवैः॥६९॥

इति श्रीसत्योपाख्याने सूतशौनकसंवादे मन्थरातारि एकादशोऽध्यायः।



द्वादशोऽध्यायः

लोमशोवाच-

तदा देवा महात्मानः स्वं स्वं गीतं निशम्य वै।
मन्थराहनने यत्नं चक्रुस्ते रणमण्डले॥१॥

देवाः ऊचुः-

हे महेन्द्र महाबाहो मन्थराहनने यतः।
अजातोकान्यथा भूमौ बध्वा कर्षति मानव॥२॥

तथास्माकमियं पापा कुरुते च रणाजिरे।
एतां जहि महाधूर्तां तां वधे न हि दोषभाक्॥३॥

सूत उवाच-

देवैरुक्तः न मधवा वधे चास्याः मनोदधे।
स्त्रियाश्च देवराजोहं कथं करोमि वै वधम्॥४॥

सागसासु च योषित्सु प्रहरन्ति न मानवाः।
न पुनर्मद्विधाः पापं कुर्वते च हि ईदृशम्॥५॥

वाक्यं निशम्य ते देवाः बलारातेर्मुखोद्गतम्।
ऊचुः परस्परं लेखाः इन्द्रवाक्येन विस्मिताः॥६॥

इन्द्रेण कृतासन्धानाहं हन्मीति मन्थराम्।
तस्माच्च मनसा विष्णोः शरणं वधसङ्कटे॥७॥

यामो निश्चित्य चादित्याः पादपद्मं हरेर्हृदि।
धारयामासुरव्यग्रा मन्थराहननोद्यता॥८॥

नारदोऽपि महायोगी वैकुण्ठे हरिमीश्वरम्।
निवेदयति देवानां सङ्कटं मन्थराकृतम्॥९॥

तच्छ्रुत्वा भगवान् शीघ्रं बबन्धासिं महाबलः।
नन्दकं नाम चक्रं तु सुदर्शनमितीरितम्॥१०॥

पाञ्चजन्यं महाशङ्खं गदां कौमोदकीं तथा।
स्कन्धे दधार शार्ङ्गं च कटौ तूणीरं श्रियःपतिः॥११॥

नभोनिभं महाचर्म हस्तेनैकेन पङ्कजम्।
पीताम्बरं समावेश्य गरुडोपरि चारुहत्॥१२॥

जगाम पार्षदैः सार्द्धं समरे देवदैत्ययोः।
चामरैः वीज्यमानश्च श्वेतछत्रेण राजितः॥१३॥

पार्षदैः सेव्यमानश्च तार्क्ष्येन स्तोत्रवाजिना।
नारायणो हि विश्वात्मा देवानां रक्षकः सदा॥१४॥

आजगाम महासंख्ये देवानां रक्षणाय च।
तमायान्तं समीक्ष्याशु सुराः परमहर्षिताः॥१५॥

उत्थिता समरे शीघ्रं प्राणं तन्वा इवागतम्।
पिबन्तः इव चक्षुर्भ्यां लिहन्त इव जिह्वया॥१६॥

जिघ्रन्त इव नासाभ्यां श्लिष्यन्ति इव बाहुभिः।
प्रणेमुः सकलाः लेखाः शिरोभिश्चरणौ हरेः॥१७॥

तुष्टुवु प्रणताः विष्णुं फुल्लपङ्कजलोचनम्।
कोटिविद्युन्निभं वस्त्रं दधन्तं घनविग्रहम्॥१८॥

दधानं कौस्तुभं कण्ठे लक्ष्म्या बिभ्रमदर्पणम्।
वासुदेवं जगन्नाथं जगतां कारणं परम्॥१९॥

भुजैश्च विटपाकारैः सर्वाभरणभूषितैः।
तिष्ठन्तं परया लक्ष्म्या कल्पवृक्षमिवापरम्॥२०॥

देवारियुवतीगण्डतिलकश्रीविलोपभिः ।
आयुधैः मूर्तिमद्भिश्च कूजद्भिश्च महास्वनम्॥२१॥

त्यक्त्वानन्तविरोधेन कतिष्ठेनारुणस्य च।
मुकुलीकृतहस्तेन विना तेन ह्युपस्थितम्॥२२॥

अनुग्रहं च कुर्वन्तं विशदैर्लोचनैः सरान्।
नमस्कृत्य महादेवमूचुर्देवाः सवासवाः॥२३॥

देवाः ऊचुः-

तुभ्यं नमो जगत् साक्षिन् नमो विश्वाग्रते विभो।
विश्वं बिभर्षि चित् शक्त्या कल्पान्ते विश्वहारिणे॥२४॥

उत्पत्तावजरूपोसि प्रलये शम्भुविग्रहः।
पालने त्वं महाविष्णुः सत्त्वाद्यैश्च त्रिधाकृतिः॥२५॥

तिलादीना च संयोगाद् विभाति स्फटिको यथा।
यथा ह्येकं जलं दिव्यं रसेषु बहुधेयते॥२६॥

तथैव त्वं महाबाहो जितो भक्तैश्च गीयते।
अव्यक्तं त्वां च वेदाश्च वदन्ति व्यक्तकारकम्॥२८॥

देहे स्थितं न जानन्ती ह्यकामं तूपकारिणम्।
दयालुं त्वां हि भो देव नाथं वेद विमूढधीः॥२९॥

पुराणं जरया मुक्तं सर्वज्ञं न विदुर्जनाः।
सर्वप्रभुरनीशस्त्वं सर्वयोनिस्त्वमात्मभूः॥३०॥

त्वमेकः सर्वभूतानां शरीरे व्याप्य तिष्ठति।
चतुर्भुजाश्चतुर्वर्गचतुर्वेदाः चतुर्युगाः॥३१॥

चातुवर्ण्यं च त्वत्तोभूत् तव नाभौ चतुर्मुखः।
सप्तैश्च सामैरुपगीयसे त्वं जलेषु सुप्तो खलु सप्तकेषु।
सप्तार्चितुंडो बत सप्तलौकैर्विराजमानो हृदि सप्तसप्तो॥३२॥

मनसा निगृहीतेन योगिनस्त्वामुपासते।
आगमैर्बहुधा मार्गाः कृता पुरुषसिद्धये॥३३॥

स्रोतांसीव च जाह्नव्याः सिंधौ तानि पतन्ति च।
त्वत् समर्पितवित्ताश्च त्वद् भक्तास्त्वदुपासकाः॥३४॥

गतिस्तेषां महाबाहो भुक्तिमुक्तिप्रदा भवेत्।
यथा सर्वेषु भूतेषु ह्याकाशो व्याप्य तिष्ठति॥३५॥

तथा सर्वेषु भूतेषु भिन्नाभिन्नेन राजसे।
पुनासि किल नाम्ना त्वं पापादपि यमात् प्रभो॥३६॥

किं पुनः स्मरणेनापि दर्शनस्पर्शवन्दनैः।
समुद्रादिव रत्नानि तेजांसीव विभावसोः॥३७॥

तथा त्वत्तो ह्यपराणि चरित्राणि लसन्ति च।
प्राप्तं ते चास्मि सर्वं च न चाप्राप्यं हि किञ्चन॥३८॥

अनुग्रहाय भक्तानां विभर्षि जन्मकर्मणी।
महिम्नस्तव चान्तं च श्रुतयो वै न लेभिरे॥३९॥

एवं प्रसादयामासु सुराः नारायणं हरिम्।
यथार्थकथनं तस्य न स्तुतिः परमात्मनः॥४०॥

तस्मै निवेदयन् वृत्तं हरये प्रभवे निजम्।
निरोधं देव अस्माकं सङ्गरे मन्थरादधेः॥४१॥

अस्माकं तारणे शक्तो भगवान् वै रणसागरात्।

लोमशोवाच-

निशम्य वाक्यं देवानां भगवानम्बुजेक्षणः॥४२॥

उवाच तान्नतान् देवान् मग्नान् व्यसनसागरे।

श्रीभगवान् उवाच-

दूरे गच्छतु भो कष्टं मयि तिष्ठति नायके॥४३॥

किं करिष्यति दैत्याश्च किं करिष्यति मन्थरा।
इदानीं विद्रविष्यन्ति मयि यत्ने कृते सति॥४४॥

युष्माभिश्च कृतस्तोत्रं ये पठिष्यन्ति मानवाः।
तेषां कामवरान् दास्ये नित्यदा चास्यपाठतः॥४५॥

सर्वतीर्थावगाहस्य यत्फलं ज्ञायते क्षितौ।
तत्फलं जायते शीघ्रं स्तोत्रराजस्य पाठतः॥४६॥

किं बहूक्तेन भो देवाः सर्वपापक्षयं करम्।
स्तोत्रं हि देवदेवस्य श्रृण्वन् यान्ति परां गतिम्॥४६॥

इति श्रीसत्योपाख्याने सूतशौनकसंवादे
द्वादशोऽध्यायः।

त्रयोदशोऽध्यायः

श्रीभगवान् उवाच-

यथोच्यते मया देवास्तथैव पाकशासनः।
करोतु शीघ्रं सङ्ग्रामे मन्थरादेहनाशने॥१॥

स्त्रियस्तु वा पुरुषो वापि षण्डो वापि नराधमः।
न तेषां हनने पापं जायते नरेतरे॥२॥

तस्मात् प्रयाहि भो वज्रिन् मन्थराहनने युधि।

लोमश उवाच-

आज्ञप्तो हरिणा चेन्द्रो ह्यागमन्मन्थरां प्रति॥३॥

दैत्यैः सह महादेव युयुधू रणमण्डले।
तदा च मन्थरा पापा युद्धे दृष्ट्वा शचीपतिम्॥४॥

चकार बहुधोपायं पुरन्दरनिवारणे।

इन्द्र उवाच-

कुत्र यास्यसि पापे त्वं वैरं कृत्वा महासह॥५॥

सहस्रारेण वज्रेण तताडेन्द्रो हि मस्तके।
मन्थरायाश्च क्रोधेन वशीभूतो हि वृत्रहा॥६॥

वज्रपातेन तस्याश्च मस्तकं चूर्णितं बहू।
पपात मूर्छिता भूमौ करं मूर्ध्नि च बिभ्रती॥७॥

हाहेति रुदति वोच्चैः पुनर्हाहेति कुर्वति।
ननाद सुमहानादं लुण्ठति धरणीतले॥८॥

दिशश्च नादिताः सर्वाः पक्षिपश्चापतन्बहु।
वृक्षाश्च कम्पिरे सर्वे जनास्त्रासमुपागमत्॥९॥

दानवाश्चापि तां दृष्ट्वा पतितामिन्द्रताडिताम्।
विद्रवन्ति रणं त्यक्त्वा सर्वे प्राणपरीप्सया॥१०॥

पतितान्पतमानांश्च पश्यन्ति समरकातराः।
पतितांश्च विलंघंतः पश्यन्तो नहि पृष्ठतः॥११॥

पराजयो हि सञ्जातो दैत्यानां विष्णुसन्निधौ।
जयो बभूव देवानां समरे विष्णुसन्निधौ॥१२॥

सन्देहोऽत्र न कर्तव्यः समो विष्णुश्च सर्वदा।
येषां तु यादृशी बुद्धिः फलदाता तथैव सः॥१३॥

दानवानां च शत्रुश्च शत्रुभावे कृते सति।
देवतानां तथा मित्रं मित्रभावे कृते सति॥१४॥

न वै विसमता तस्य कल्पवृक्षोपमो हरिः।
शुनासीरस्तदा देवो मूर्च्छयित्वा च मन्थरा॥१५॥

आजगाम हरेः पार्श्वं देवराजः शचीपतिः।
जग्रहे च हरेर्द्वन्द्वं पादपद्मं पुरन्दरः॥१६॥

तव प्रतापाद्देवेश पारं प्राप्तो रणोदधेः।
गच्छ देव निजं स्थानं मयाज्ञप्तो रणाजिरात्॥१७॥

एवं त्वया सदा कार्यं देवानां रणरक्षणे।

श्रीभगवानुवाच-

एवं भवतु भो देवा वचनं नानृतं क्वचित्॥१८॥

युष्माकं रक्षणं नित्यं करिष्येहं रणाजिरे।

लोमश उवाच-

आश्वास्य भगवान् विष्णुर्जगाम च निजालयम्॥१९॥

ययुर्देवा निजं स्थानं वादयन्तश्च दुन्दुभीन्।
मुदा परमया युक्ता बुभुजुः स्वर्गजं सुखम्॥२०॥

अथ दैत्य समस्वस्था गतान् देवान् विलोक्य च।
आगता समरे शीघ्रं मन्थरां प्रविलोकितम्॥२०॥

दृष्टान् समागतान् दैत्यान् मन्थरा चाब्रवीदिदम्।

मन्थरोवाच-

पश्यन्तु दैत्यामूर्द्धानं पाकशासनताडितम्॥२१॥

स्त्रियं मातुं रणे हित्वा यूयं धूर्ताः पलायिताः।
गृहं नयंत मां शीघ्रं दोलामारोप्य यत्नतः॥२२॥

विदीर्णं मे शिरो नूनं ग्रीवा भग्ना विशेषतः।
भग्ना कटिश्च मे वज्रात् पृष्ठे जातो हि कूबरः॥२३॥

लोमश उवाच-

बहुधा रुदती ह्येवं दैत्यानां शृण्वतां तदा।
असुरास्तु भुजैस्तां च दोलामारोपयन् शनैः॥२४॥

वाहाश्च शिविकां चोहुर्गृहं प्रति रणाजिरात्।
सा तु तैर्भयसंविग्नैर्वेश्ममध्येऽवतारिता॥२५॥
उच्चैः सा रुरुदे तीव्रं स्त्रिभिस्तु परिवारिता॥२६॥

इति श्रीसत्योपाख्याने सूतशौनकसंवादे
त्रयोदशोऽध्यायः।

चतुर्दशोऽध्यायः

श्रीलोमश उवाच-

दैत्यपत्निश्च सा दृष्टा मन्थरा वाक्यमब्रवीत्।
हस्ताभ्यां ताडती वक्षः क्रोशन्ती च सुरद्विषः॥१॥

मन्थरोवाच-

पश्यन्तु मे शरीरं हि वज्रघातेन भग्नितम्।
युष्माकं स्वामिनामर्थे याताहं चेदृशी रणे॥२॥

स्त्रियः उवाच (ऊचुः)-

अत्यर्थं जल्पसे मन्दे अग्रेऽस्माकं न लज्जसे।
अबला स्त्रियो हि नित्यं बलं तासां न कुत्रचित्॥३॥

श्रुतं भोगविलासाश्च कामयुक्तनरेषु च।
आत्मनः पौरुषं चण्डि प्रथितुं जगतीतले।
गता त्वं रणमध्ये च देवदानवसङ्कुले॥४॥

अपरा ऊचुः-

आल्यः शृणुत अस्माकं वाक्यं चण्ड्याश्च हृद्गतम्।
इयं याता हि समरे मुखं दर्शयितुं सुरान्।
यथा गृह्णन्ति मां देवा मोहिता मम रूपतः॥५॥

अपरा ऊचुः-

स्तनौ दर्शयितुं याता देवेभ्यः रणमण्डले।
गण्डशैलप्रतीकाशौ भुजवुत्थाय शीघ्रतः॥६॥

अपरा ऊचुः-

नूनं हि विस्मृतश्चेन्द्रः कर्णौ ह्यस्याः न कृन्तितौ।
नासिकायाः न छेदश्च कृतस्तेन महात्मना॥७॥

अपरा ऊचुः-

क्वचिदेव न कर्तव्यं योषिद्भिः रणमण्डले।
पराजये तु हास्यं स्याद् विजये न हि शोभते॥८॥

अपरा ऊचुः

पुनर्गच्छ पुनर्गच्छ देवानां विजयेच्छया।
इदानीं गम्यतां मन्दे गत्वा जेष्यसि वै सुरान्॥९॥

लोमश उवाच-

इत्यैव जहसुस्तां च दैत्यपत्नी गृहाङ्गणे।
मन्थरा रुरुदे तीव्रं कराभ्यां निघ्नन्तीं शिरः॥१०॥

प्राह वाक्यं महापापा भर्त्सयन्त्यसुरास्त्रियः।

मन्थरोवाच-

किं ब्रवीम्यात्मनः पापं यन्मया चरितं हि तत्॥११॥

उपकारे हि जाताहं दुःखिता परिभर्त्सिता।
पुरुहूतोपि पापात्मा यः स्त्रियं निघ्नवान् रणे॥१२॥

विडौजसो न दोषोस्ति दोषोऽयं चक्रपाणिनः।
जनार्द्दनोपदिष्टेन वज्रेणेन्द्रताडिता॥१३॥

कामाचारो हि विष्णुश्च धर्मवक्ता न धर्मभाक्।
प्रहरन्ति न योषित्सु महात्मानो नरा क्वचित्॥१४॥

एवं वदन्ति पापात्मा भृगुपत्न्याश्च जिघ्निवान्।
मया श्रुतं पुराणेषु ताडकां यमयातनाम्॥१५॥

पूतनां च दयासिन्धुः दाशरथिर्नन्दनन्दनम्।
नयिष्यन्ति महाबाहुर्विष्णुर्मायाविनाम्बरः॥१६॥

परस्त्रीषु न गन्तव्यमिति वेदेषु चाब्रवीत्।
स्वयं जातो हि वृन्दायाः पत्युस्तस्या वधाय च॥१७॥

दयां कुरुत भो लोकाश्चेतनाश्चेतनेषु च।
प्रलयं कुरुते चास्य लोकस्याहि युगक्षये॥१८॥

कर्म यत् क्रियते तेन तन्निरर्थकमेव हि।
जिह्वां वृषभपृष्ठेन ह्यजाकण्ठेस्तनशास्तनौ॥१९॥

कूबरं चोष्ट्रपृष्ठे च चकार नहि सार्थकम्।
ईदृशं कर्ममेतस्य भक्तानामपि कथ्यते॥२०॥

प्रह्लादेन कृतं कर्म पुरा सत्ययुगेस्त्रियः।
दैत्येन्द्रं च महाबाहुं नाम्ना हिरण्यकशिपुम् ॥२१॥

जघान सिंहरूपेण विष्णु प्रह्लादहेतुना।
ध्रुवस्य श्रूयतां कर्म संसारे ह्यतिदारुणे॥२२॥

तपसा च हरिं तोष्य घातयामास भ्रातरम्।
किं बहुक्तेन भो लोका हताहं विष्णुना ध्रुवम्॥२३॥

यदि जीवामि देहेन ह्यनेन चातिदारुणाम्।
विष्णुं क्लिश्यामि भो दैत्याः पुनर्न कुरुते यथा॥२४॥

मृताहमन्यदेहेन क्लेशयिष्यामि वै हरिम्।

एवमेव करिष्यामि भग्नपिण्डेन किं मम।
कूबरं मम पृष्ठे च तेनाहं व्यथिता भृशम्॥२५॥

कूबरेण न शोभास्ति युवत्याः पुरुषस्य वा।
लोमश उवाच-
एवं चिन्तयती पापा कुब्जे बुद्धिं निवेश्य सा॥२६॥

मृतोत्पन्ना च काश्मीरे कस्यचित् किङ्करिष्य वै।
कैकेय्या सह प्रीतिश्च दृढा याता तया सह॥२७॥

तया स्नेहं परिज्ञाय राज्ञा दत्ता च भूभृते।
राज्ञा दशरथेनापि गृहीता कैकयीप्रिया॥२८॥

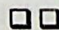
बहुकाले गते लोकाः पूर्वं वैरं न विस्मृता।
विघ्नं चकार रामस्य राज्ये च परमात्मनः॥२९॥

रामो नारायणः साक्षात् परमात्मा नराकृतिः।
भूभारहरणार्थाय सर्वदेवैश्च प्रार्थितः॥३०॥

रावणस्य वधार्थाय सीतया सह यात्यसौ।
वनानि दण्डकादीनि च्चित्रकूटादिपर्वतान्॥३१॥

एतेषां पावनार्थाया प्रयातो दक्षिणां दिशिम्।
शोकं कुरुत मा लोका रामसङ्कल्पमीदृशम्॥३२॥

श्री सत्योपाख्याने सूतशौनकसंवादे चतुर्दशोऽध्यायः



पञ्चदशोऽध्यायः

श्री अयोध्यावासिन ऊचुः-

मन्थरा चेदृशी पापा ह्ययोध्यां कथमाप सा।
केन पुण्येन भो स्वामिन् संशयं नुद चोक्तिभिः॥१॥

श्रीलोमश उवाच-

हेतुर्मनो हि सर्वेषां नराणां मुक्तिबन्धने।
पुरा मरणकाले च मन्थरा वज्रताडिता॥२॥

सस्मारं मनसा विष्णुं क्रोधात् परमसुन्दरम्।
तेन पुण्यप्रभावेन लब्धायोध्या तया शुभा॥३॥

नरो हि मनसा यद्यत् ध्यायन् सन्त्यजते तनुम्।
तत्तदाप्नोति वै लोके मनसा ध्यातमेव च॥४॥

मन्थरया च श्रुतं वेदे साकेते विष्टरश्रवा।
देवानां कार्यसिद्ध्यर्थं महाविष्णुर्निवत्स्यति॥५॥

नामरूपेण दिव्येन जनतामोहनेन च।
तत्राहं च निवत्स्यामि विघ्नार्थं तस्य वै हरेः॥६॥

एवं चिन्तयती दुष्टा तत्याज स्वकलेवरम्।
स्मरणस्य प्रभावेन प्राप्तायोध्यां च मन्थरा॥७॥

अयोध्या च महापुण्या विष्णोश्च नगरी शुभा।
अत्र वासाद्धि सर्वेषां विष्णुलोको भवेत् नृणाम्॥८॥

मन्थरा तु हरेर्लोक गमिष्यति न संशयः।
यस्या मनो हि रामे च द्वेषाद्वसति सर्वदा॥९॥

तस्या मुक्तौ न सन्देहो या रामवदनाम्बुजम्।
पिबती नेत्रपुटकैर्द्वेषादपि च मन्थरा॥१०॥

द्वेषात् कामात् भयाल्लोभाद्रामे चित्तं यथा वसेत्।
तथैव करणीयं हि नराणां मुक्तिमिच्छताम्॥११॥

रामो चित्तं च येषां मुक्तिस्तेषां न संशयः।
व्रत दानतपोयज्ञदीक्षासंस्कारसंयमाः॥१२॥

एतैर्न तुष्यते रामो यथा भक्त्या जनस्य च।
दानादिकं कृतं सर्वं रामे चित्तं न चास्थितम्॥१३॥

स्वर्गवासस्तु तैः पुण्यैः पुण्यान्ते च पतत्यधः।
यदि भाग्याद्धि[1] साधूनां सङ्गतिर्जायते क्षितौ॥१४॥

तदा रामस्य भक्तौ च नराणां जायते मनः।
विना भक्तिं न मुक्तिश्च भुजमुत्थाय चोच्यते[2]॥१५॥

यूयं धन्या महाभागा येषां प्रीतिस्तु राघवे।
वैकुण्ठे भवतां वासः संशयो नात्र विद्यते॥१६॥

अयोध्यावासिनः सर्वे जगन्नाथस्य मूर्तयः।
त्र्यम्बकेन पुराप्युक्तं[3] पार्वत्यैस्तवमेकदा[4]॥१७॥

अयोध्यायाश्च[5] माहात्म्यं च वक्तुं शक्तो न चाब्जजः।
इतरेषां च का शक्तिर्विश्वासाद्रहितात्मनाम्[6]॥१८॥

यत्र नारायण साक्षाच्चतुर्द्धा व्यस्य स्वां तनुम्।
सदैव रमते यत्र तस्याः किं वर्ण्यते गुणाः॥१९॥

इति संक्षेपतश्चोक्तं यद् वृत्तं मन्थराभवम्।

श्रीसूत उवाच-

एवमुक्ता ययौ विप्रो रामदर्शनलालसः॥२०॥

लोमशस्य च वाक्येन निःसन्देहास्तदाभवन्।
साकेतवासिनः सर्वे क्षितौ धन्याश्च शौनकाः॥२१॥

इति श्रीसत्योपाख्याने सूतशौनकसंवादे पञ्चदशोऽध्यायः



---

१. भाग्नाद्धि -क

२. विना भक्त्या न मुक्तिश्च नराणां मंडगोलके॥१५॥
लोके भवतु ह्याश्चर्यं जलाज्जन्मधृतसय च।
सिक्तायाश्च तैलं तु यत्ने यातु कथचन॥१६॥ -ग मातृकाया प्राप्यते।

३. पुराह्युक्तं - ग

४. पार्वत्यै पति नैकदा - ग

५. अयोध्याया - क

६. इहितात्मनाम् -

षोडशोऽध्यायः

श्रीशौनक उवाच

श्रीपादपद्मं रघुनायकस्य फुल्लं नराणां हृदि भक्तिभाजाम्।
तत्रापि चित्तं रमते तवैव भृङ्गो हि भूत्वा रसिकेन्द्र सूत॥१॥

राजेन्द्रपुत्रस्य वदस्व लीलाम् संजीवनीं भक्तजनस्य[१] नूनम्।
यस्याः[२] श्रुतौ सर्वमिदं हि याति[३] स्विष्टा[४]दिपूर्तस्य फलं हि लोके॥२॥

श्रीसूत उवाच

शृण्वन्तु रामस्य कथां च दिव्यां व्यासप्रसादात् कथयामि तुभ्यम्।
व्यासेन प्राप्तां द्विजद्वापरादौ श्रीशक्तिपुत्रान् तृतये[५] युगे च॥३॥

पराशरः शक्तिसुतो हि विप्र वाल्मीकितः पुण्यकथां पपाठ।
तमवे तुभ्यं कथयामिवग्र[६] विमुक्तयेहं भवपाशबन्धात्॥४॥

भूम्याः पतिः पङ्क्तिरथो ह्युदारो रामस्य तातो भुवि धर्म गोप्ता।
रामं समादाय स्वकीयक्रोड[७]स्थितं सभायां निजमन्दिरस्य॥५॥

तस्यां स्थिताः कुण्डलधारिणश्चकेयूरमुक्ता[८]भिरलङ्कृताश्च।
उष्णीषयुक्तैर्मुकुटै सरत्नकैः बिभ्राजमाना सदसि प्रथौजसः[९]॥६॥

---

१. संजीवनीभक्तिं नरस्य - क
२. यस्य - क
३. जातम् - ग
४. मिष्टा - ग
५. तृतीये - ग
६. वर्य्य - ग
७. क्रोडे - ग
८. केयूरमुद्रा - ग
९. प्रय्यौजसः - क

प्राच्या उदीच्या द्विजदाक्षिणात्याः सर्वे स्थिताः भूपतिसन्निधौ च।
सर्वाः प्रजाः सर्वरतं च भूपं रामस्य तातं नयनैर्पपुश्च॥७॥

स्वर्णस्य दण्डानि[१] करेषु येषां विचित्ररत्नैर्दृढनिर्मितानि[२]।
ते वै स्थिता द्वारि महाविभूतेः राज्ञो हि वाक्ये निरता सदा वै॥८॥

गृहीष्व भो नाथ महेन्द्रतुल्य नतिं नराणां प्रणतामभीक्ष्णम्।
वदन्ति चैवं द्विजद्वारकाश्च स्वयं विनीताः[३] वरकुण्डलैश्च॥९॥

छत्रेण राजा परिराज्यमानस्तुल्येन चन्द्रस्य हि मण्डलेन।
मुक्तामणिना[४] ग्रथितेन दाम्ना चक्षूंषि विप्रा हरता जनानाम्॥१०॥

प्रकीर्णकाभ्यां च विराजमानो हंसश्रियाभ्यां[५] शिरसि शिवाभ्याम्।
बभ्रम्यमानं शिरस्तयोश्च[६] राज्ञो हि छत्रं शुभवायुना वै[७]॥११॥

गन्धर्वमुख्याः प्रजगुस्तदानीं नट्यस्तदग्रे[८] ननृतुर्महीपतेः।
श्रीरामचन्द्रं द्विजबालरूपं वाक्यैः प्रियैर्लालयतः[९] स्वपुत्रम्॥१२॥

श्यामं शुचौ मेघनिभं क्षमाभं दूर्वाप्रभं नीलमणिं च रामम्।
सुवर्णसूत्रै रचितां च पट्टिकां मूर्ध्या[१०] दधानं मणिचित्रिताम्[११]॥१३॥

चन्द्रो यथा राजति चाष्टमीषु तथा हि रामस्य ललाटफलकम्।[१२]
तस्मिन् दधानं शरभोद्भवस्य विशेषकं साधुजनस्य मोहनम्॥१४॥

भ्रुवौ च श्यामौ धनुषाकृती च संसूचितभूर्य्यनुग्रहं वै। भक्तेषु।
तत्रैव च कालवासस्तेनैव लोकः प्रलयं समेति॥१५॥

---

१. स्वर्णदण्डानि - क
२. दृढनिर्मिता च -क
३. विनीतां - ग
४. मुक्तामणीनां - ग
५. श्रीयाभ्यां - क
६. परितस्तयोश्च - ग
७. च - ग
८. नट्यस्तदाग्ने - क
९. प्रियैल्लायतः - क
१०. मूर्ध्ना - ग
११. मणिचित्रितं - ग
१२. ललाटकूलकं - क

नेत्रद्वयं ह्यंजनरंजितं च विलोकयन्तं पितरं च तेन।
चापल्ययुक्तेन मनोहरेण खञ्जनस्य मीनस्य च चञ्चलस्य॥१६॥

नासां शुकस्येव समुन्नतां च तथैव रम्ये पितुरङ्कदेशे।
गण्डौ च रम्यौ शुभकुण्डलाभ्यां परिवृताभ्यामलकैः सुनीलैः॥१७॥

नीडो हि वेदस्य[1] सुपर्णमूर्त्तेस्तत्रैव लीनस्य[2] तमेव वक्ति।
कर्णौ च दिव्यौ रघुनन्दनस्य दन्तास्यबीजानि तु दाडिमस्य॥१८॥

ओष्ठद्वयं दाडिमपुष्पभासं हास्यं नरोन्मादकरं दधानम्।
ओष्ठादधस्ताच्चिबुकं च सुन्दरं तस्यैव गर्ते नृपदृष्टिः मग्ना॥१९॥

ततो ह्यधस्ताद् रघुनायकस्य कण्ठं त्रिरेखं जलजस्य नाम्ना।
स्तनद्वयं नीलमणेश्चभित्तं तथैव रामस्य निबोध वक्षः॥२०॥

विशोभमानं नखरैर्हरैश्च जाम्बूनदस्वर्णपरिष्कृतैश्च।
इलेन्द्रपत्रस्य च नाभिकुण्डं तथैव जातं विधिलोकपद्मम्॥२१॥

नितम्बबिम्बं रघुनायकस्य सूत्रेण बद्धं मणिचित्रितेन।
उरू च श्यामौ पृथुलौ च पीनौ बिभ्रन्तमेव शिशुरूपरामम्॥२२॥

जानू च जङ्घे प्रपदे च दिव्ये पादाङ्गुलीभिर्नखचन्द्रिकाश्च।
चिह्नानि सर्वाणि पदारविन्दे प्रदर्शयन्तं निजसेवकेभ्यः॥२३॥

पदं च धेन्वाः कुलिशं च बिन्दुं तथा ध्वजं ह्यमृतकुण्डकं च।
वस्त्राङ्कुशं जम्बुफलं च मत्स्यं धनुर्महेन्द्रस्य तथा त्रिकोणं॥२४॥

वज्रं च पद्मं च तथा यवं च षट्कोणकं चाप मनुष्यमेके।[3]
शङ्खं च चक्रं च तथाष्टकोणं मूर्द्धे[4] च रेखां घटस्वस्तिकं च॥२५॥

हिमांशुमूर्तेश्च तथैव चार्द्धमेतानि चिह्नानि पदे दधन्तम्।
इत्थं नरेशः शिशुरूपरामं पीतेन गुप्तं शुभकञ्चुकेन॥२६॥

संलालयानो युवतीभिरिष्टस्तथा नरैः साध्विति[5] वाच्यमानः।[6]
व्रतेषु श्रेष्ठा किल वा[7] तिथीनां रुद्रेण व्याप्ति[8]र्भुवनेषु तस्याः॥२७॥

---

१. देवस्य - ग
२. लीलस्य - ग
३. मेकं - ग
४. मूर्द्धां - ग
५. साब्धिति - क
६. वाच्यमाने - ग
७. या - ग
८. व्यक्ति - क

तस्यां तिथौ कल्पमहीरुहस्य छायां निविष्टो लालयन् स्वपुत्रम्।
देवा महेन्द्रप्रमुखाश्च सर्वे स्वर्गस्य द्वारे बत मज्जनाय॥२८॥
चतुर्युगेषु हरिवासरेषु स्नानं हि पुण्यं द्विज वै सरव्याः[१]॥२९॥

इति श्रीसत्योपाख्याने सूतशौनकसंवादे षोडशोऽध्यायः।



१. द्विजवैसघाः - ग

सप्तदशोऽध्यायः

श्रीसूत उवाच-

इन्द्रादयो लोकपाला ऋषयः पितरस्तथा।
समाजग्मु अयोध्यायां मज्जनाय महामुने॥१॥

इन्द्रो रथं समारुह्य सहस्राश्वं पताकिनम्।
नानावस्तूसमाकीर्णं नानाचित्रोपशोभितम्॥२॥
कृत्रिमैः पक्षिवृन्दैश्च नानामृगसमन्वितम्॥३॥

रचितं विविधोपायैः स्वर्णकीलदृढीकृतम्।
ईदृशं रथमास्थाय जगाम मघवा प्रभुः॥४॥

शिवोपि स्वगणैः सार्द्धमारुह्य नन्दिनं वृषम्।
पार्वत्या सह चासीनः कपर्दी सर्पभूषणः॥५॥

जटायां[१] स्वर्णवर्णायां दधानो हरिपादजाम्।
गणैश्च विविधाकारैर्विकटैर्भैरवैः वृतः॥६॥

वामनैः पिङ्गलैः श्वेतैः विविधैश्च गणैर्वृतः।
ललाटे चार्द्धचन्द्रेण शोभमानो हि भस्मना[२]॥७॥

गजचर्मपरीधानः शूलहस्तो दिगम्बरः।
चचाल सोपि निर्नेक्तुं[३] सरव्यां[४] हरिवासरे॥८॥

ब्रह्मा हंससमारुह्य वेदवक्ता चतुर्मुखः।
पादे[५] रक्तं मुखे रक्तं कैलासमिवरत्नकैः[६]॥९॥

---

१. सट्टायां - ग
२. भस्मनः - क
३. निर्भक्तु - ग
४. सरध्वां -ग
५. पादौ -ग
६. रक्तकैः - ग

शुक्लं शुक्लघटाकारं राजहंसं महाप्रभम्।
तमास्थाय महादेवः परमेष्ठी कमलासनः॥१०॥

गणेशः पर्वताकारो[१] मूषकं गजसन्निभम्।
समास्थाय जगामाथ सरव्यां हरिवासरे॥११॥

तुन्दिलश्चैकदन्तश्च दीर्घकर्णो गजाननः।
विष्णुप्रियो[२] गणाधीशो हस्ते परशुधारकः॥१२॥

आखुपृष्ठे समासीनो गजपृष्ठे यथा हरिः।
गन्धर्वाश्चतदा सर्वे अप्सरोभिश्च शोभिताः॥१३॥

विमाने चास्थिताः सर्वे किंकिणी जालमालिनी।
पताकिनी महादिव्ये सर्वाश्चर्यसमन्विते॥१४॥

सहस्राणं शतं विप्र विमानानि प्रतस्थिरे।
देवानां ध्वजनीचाथ प्रयाता नगरं प्रति॥१५॥

साकेताख्यं महादिव्यं सर्वदेवनमस्कृतम्।
ऐरावतो[३] बभूवाग्रे ध्वजिन्यो[४] नमुचिद्विषः[५]॥१६॥

केतनानि सुरक्तानि दीर्घदण्डानि चाग्रतः।
प्रयातानि ह्ययोध्यायाः मार्गमुद्दिश्य वेगतः॥१७॥

गायतां वाद्यतां चापि गन्धर्वानां प्रहर्षतः।
मृदङ्गानां प्रणादेन तथा गीतेन चाम्बरे[६]॥१८॥

श्रुतं दशगुणं पूर्वं तथा ज्ञातं नरैर्नभः।
वायुमार्गेण ते सर्वे प्रस्थिताश्च सहस्रशः॥१९॥

स्वनवन्ति विमानानि किङ्किणीभिश्च नाकिनाम्।
अभिलाषेन देवानां विमानानि प्रयान्ति वै॥२०॥

वायुना ध्रियमाणानि तपःसत्यनिवासिनाम्।
जनलोकान् महर्लोकं[७] ध्रुवलोकं समागमन्॥२१॥

---

१. पर्वताकारं - क
२. विष्णुभक्तो - ग
३. ऐरापति - ग
४. ध्वजिन्याः - ग
५. समुचद्विषः -ग
६. चाम्बरं - ग
७. महार्लोकं - ग

ध्रुवलोकान् महर्षीणां सप्तानां पुनरापतन्।
स्वर्गलोकं तथा पश्यन् भुवर्लोकं[1] तथापतन्॥२२॥

चन्द्रमण्डलमावर्य[2] सूर्यलोकं तथागमन्[3]।
आकाशगङ्गासम्पर्कादामोदैः कल्पशाखिनाम्॥२३॥

युक्तेन वायुना सर्वे सूर्यतापं न ते विदुः।
क्वचिद् गच्छन्ति वेगेन केतनैर्वायुनेरितैः॥२४॥

क्वचिद् गच्छन्ति मेघेषु विमानानि च मन्दतः।
अश्वा गजा रथा सर्वे मेघेषु चकाशिरे[4]॥२५॥

वासवस्य मतङ्गस्तु समूहेषु पयोमुचाम्।[5]
रराज गगने पूर्णः शरदीव[6] निशाकरः॥२६॥

वेगाच्च[7] वाहनानां च मेघा अपि ह्यधोभवन्।
स्यन्दनानां च चक्रेषु गजदन्तेषु तेऽभ्रमन्॥२७॥

पर्वता इव दृश्यन्ते गगने पक्षकैः सह[8]।
पुनरुत्पत्यते[9] सर्वे ददृशु[10]र्मेदिनीतनम्॥२८॥

द्वीपांश्च सागरांश्चैव पर्वतांश्च वनानि च।
सप्तभिः सागरैश्चैव शोभितं धरणीतलम्[11]॥२९॥

भूदेव्याः सर्वगात्राणि वृत्तानि वलयैरिवः।
मध्ये पृथिव्या मेरुं च कनकं[12] कुसुमं यथा॥३०॥

---

१. भुवर्ल्लोकं -क
२. चन्द्रमण्डलभावार्य्य - ग
३. च ते गामन् - ग
४. प्रकाशिरे - ग
५. पयोमुचान् - ग
६. सरदिन्दीव -ग
७. वेगं च - क
८. स्वकैः - ग
९. पुनरुत्प्लुत्यते - ग
१०. दृदृशु - क
११. धारणीतलें - क
१२. कनकस्य - ग

योजनानां सहस्राणि चतुरशीतिरुच्चकैः[१]।
जम्बूद्वीपस्य खण्डानि तेऽपश्यन्नवसंख्यया॥३१॥

तत्रापि च जनान् भद्रान्[२] प्रणेमुः करकुड्मलैः।
श्रीसूत उवाच-
तेषां प्रणमितं[३] दृष्ट्वा[४] पौलोमी पतिमब्रवीत्[५]॥३२॥

हास्यं प्रकुर्वती पद्मं नर्त्तयन्ती करेण सा।
सा प्रोवाच[६]
ब्रूहि मह्यं त्रिलोकेश प्रणमन्ति दिवौकसः[७]॥३३॥

कस्मै देवाय तीर्थाय देशाय वा[८] सुरेश्वर।
इन्द्रोवाच
शृणु देवि प्रवक्ष्यामि कारणं नमनस्य च॥३४॥

इदं भरतखण्डं च कर्मभूमिरियं शुभा।
अत्र देवान् समाराध्य प्रयान्ति त्रिदशालयम्॥३५॥

क्रतूनां च शतं कृत्वा प्राप्तोहं देवराजताम्।
पुण्यानि बहुशः कृत्वा त्वमप्यत्रैव मानदे॥३६॥

प्रयाता देवराजानं पत्नीत्वं च मनोरमे।
धन्या अत्र जनाः सर्वे हिमवद्विंध्यमध्यगाः॥३७॥

शुभकर्मकराश्चात्र धरण्याञ्च[९] वरानने।
सम्प्रयान्ति[१०] परं स्थानं दिव्यं सुकृतिनां पदम्॥३८॥

---

१. मुच्चकैः - ग
२. चाञ्जनाभं च - ग
३. प्रणामं- ग
४. तदृष्ट्वा - ग
५. पौलोमी प्रतिमब्रवीत् - ग
६. सच्युवाच - ग
७. दिवौकसाः -ग
८. च - क
९. धरण्याश्च - ग
१०. प्रयान्ति ते - ग

इदं पश्य प्रिये स्थानं जगन्नाथस्य सागरे।
मुक्तये किल विश्वस्य ब्रह्मणा स्थापितं पुरा॥३९॥

इदं क्षेत्रं महापुण्यं खण्डे भरतसंज्ञके[१]।
इयं काशी महापुण्या विश्वनाथकृतालया॥४०॥

यत्र गङ्गा महापुण्या हरिपादसमुद्भवा।
[२]गयाक्षेत्रं महापुण्यं पितृणां तर्पणं यतः॥४१॥

तत्त्वं पश्य महाभागे तीर्थराजं पुनः शुभम्।
यत्र गङ्गा च कालिन्द्या सरस्वत्या च सङ्गता॥४२॥

पश्य त्वं चित्रकूटं च शृङ्गैरुल्लिखतीव खम्।
महेन्द्रं दर्दुरं चास्याः नितम्बाविव तौ[३]क्षितेः॥४३॥

ऋक्षवन्तं च सह्यं च भूदेव्याश्च कुचाविव।
तं विलोकय भो भद्रे व्यङ्कटेशं नमस्कुरु॥४४॥

रामेश्वरं सेतुबन्धं तीर्थान्यन्यानि यानि च।
द्वारकां स्वर्गरूपां[४] च श्रीकृष्णो यत्र तिष्ठति॥४५॥

मायापुरीं च मथुरां वनं वृन्दावनं शुभम्।
यमुनापुलिनं भद्रे यत्र कृष्णो हि वत्स्यति॥४६॥

पश्यायोध्यां पुनः कान्ते प्रणामं कुरु मूर्द्धना।
यस्यां जातो हरिः साक्षात् परमात्मा नराकृतिः॥४७॥

सूत उवाच

पौलोमी च हरेर्वाक्यं हृदि कृत्वा ननाम ताम्॥४८॥

पौलोम्या नमनं दृष्ट्वा गन्धर्व्योप्सरसस्तथा।
प्रणेमुः प्राञ्जलिं कृत्वायोध्यायै च पुनः पुनः॥४९॥

इति श्रीसत्योपाख्याने सूतशौनकसंवादे सप्तदशोऽध्यायः।

---

१. पितृणां तर्पणं यतः - ग
२. वाक्यमिदं ग -हस्तलेखे नास्ति
३. तलौ - ग
४. स्वर्णरूपं च -ग

अष्टादशोऽध्यायः

सूत उवाच-

शचीं प्रणमतीं दृष्ट्वा सावित्री पतिमब्रवीत्।
पत्युः करं करेणैव पीडयन्ती पतिप्रिया॥१॥

सावित्री उवाच-

कस्मै नमन्ति भो स्वामिन् ऋभुक्षाप्रमुखाः स्त्रियः।
कस्मिंदेशे वयं प्राप्ता प्रभावं वद चास्य भो॥२॥

सूत उवाच-

तस्याः वाक्यं निशम्याथ प्रत्युवाच प्रजापतिः।
प्रत्युत्थाय प्रणम्यादौ दण्डवन्नगरं प्रति॥३॥

ब्रह्म उवाच-

अयोध्येयं महापुण्यां विष्णोराद्या पुरी शुभा।
अस्यां जातो हरि साक्षात् परमात्मा नराकृतिः॥४॥

धन्यो दशरथो राजा यस्य पुत्रः स्वयं हरिः।
योऽस्याः[१] पुर्यास्तु भूपाल इक्ष्वाकूनां[२] प्रवरः सुधी॥५॥

यत्र यामो[३] वयं सर्वे वस्तुसुकृत[४]कोटिभिः।
यत्रेयं सरयू दिव्या नदीनामुत्तमा नदी॥६॥

यस्याः दर्शनमात्रेण पापराशिर्विनश्यति।
ब्रह्मद्रवमिदं भद्रे नास्त्यस्या उपमा क्वचिद्॥७॥

यस्य पादतलाज्जाता गङ्गा भागीरथी क्षितौ।
स्नानार्थाय[५] यस्याश्च[६] गच्छतो वै जनस्य च॥८॥

---

१. यस्याः - क

२. इक्ष्वाकुः -क

३. यत्रासास्मो - ग

४. वस्तुषु कृट - क

५. अस्नानार्थं - ग

६. गतो यंश्च - क

पदे पदेऽश्वमेधस्य न फलं दुर्लभं भवेत्।
महिम्नः क्वापि गङ्गायाः पारः शास्त्रेण दृश्यते॥९॥

सरय्वाः महिमानं को वेत्ति लोके[1] च पण्डितः।
यत्र नारायणो नाम्ना रामस्नास्यति[2] सर्वदा॥१०॥

ब्रह्मद्रवे[3] पुनश्चात्र रामः क्रीडां करिष्यति।
कैरस्याः लभ्यते पारो शास्त्रज्ञैस्स्थूलदृष्टिभिः॥११॥

यमुनायाः सरय्वाश्च प्रभावो नहि वर्णितः।
ऋषिभिस्तु पुराणेषु बहुधा न हि दर्शितः॥१२॥

यत्र रामश्च कृष्णश्च[4] क्रीडां दिव्यां करिष्यतः।
भागीरथ्याः महिम्नस्तु यदि पारो न लभ्यते॥१३॥

तर्हि गन्तुमहिम्नोन्तकः समर्थो[5] नरस्तयोः।
हिमवद्विन्ध्ययोर्मध्ये भूवैकुण्ठोऽपि दृश्यते॥१४॥

नाम्नायोध्येति विख्याता ह्यजेया सकलैरपि।
पश्य पश्य महाभागे पुरीं शृङ्गैरिवाम्बरम्[6]॥१५॥

आश्लिषन्तीं विमानानि भुजैः स्वर्गगतोच्छ्रितैः।
प्रासादस्थाः नरानार्यो[7]चाधोभागेषु वार्षिकान्॥१६॥

मेघान् पश्यन्ति वर्षायां कौतुकेन स्पृशन्ति च।
स्वर्णवस्त्रैदीर्घदण्डैः केतनैर्वायुलोलितैः॥१७॥

नरैर्न ज्ञायते सूर्यादातपश्च गृहे गृहे।
अस्याः शृङ्गेषु मेघाश्च स्थित्वा स्थित्वा[8] प्रयान्ति वै॥१८॥

महता जलभारेण सेचनाथ जलागमे।
प्रासादस्था युवत्यो वै[9] वदनैश्चन्द्रसन्निभैः॥१९॥

---

१. ले - ग
२. तं नमस्यति - ग
३. ब्रह्मद्रवं - ग
४. कृष्णश्च रामश्च - ग
५. समर्थं - ग
६. रिवाम्बरे - ग
७. वरानार्य्यश्चा - ग
८. स्थित्वा - ग
९. युवत्यश्च - ग

रात्रौ दिवा च[1] लक्ष्यन्ते चन्द्रा इव सहस्रशः।
शिखाभिरिव दीपानां धूमितं[2] पश्य चाम्बरम्॥२०॥

शातकुम्भस्य रेणुर्वै प्रपदा ताडितोपि सन्।
मूर्द्धसु[3] न पतत्येव नराणां मार्गगामिनाम्॥२१॥

पथि बाला क्रीडयन्ति[4] स्वर्णधूल्या सहस्रशः।
अश्ववारैर्गजारोहै रक्षिता स्यन्दनैस्तथा॥२२॥

गजाश्चात्र सरय्वां वै चानीता यन्तृभिर्बहुः।
कुशेशयैश्च क्रीडन्ती गजीभिः कलभैः सह॥२३॥

अपः पिबन्ति वासित्या[5] वितृषोपि पुनः पुनः।
पुरस्त्रीजनविभ्रष्टनवकुङ्कुमपिञ्जराः[6] ॥२४॥

स्वर्णशालापुरी चेयं सरय्वां छायया निशम्।
वसतीव[7] विमानाग्रैः पिशंगी कुर्वती दिशः॥२५॥

वसन्ति चात्र[8] राजानो रघूणामाज्ञया सदा।
सदाभ्यासेन रचिता शिल्पिनां प्रवरेण च॥२६॥

दृश्यते नरलोकेषु स्वर्गमूर्तिरिवापरा।
अयोध्यायाः सरय्वाश्च मध्ये सोपानजा द्युतिः॥२७॥

यथा कण्ठे युवत्यश्च मालास्वर्णस्य भासुरा।[9]
क्षितीशानां सहस्त्रैश्च पूजितेयं वरानने॥२८॥

विदधेया विमानेन शिल्पिना प्रवरेण च।
प्रेम्णेव सरयू यत्र मुक्तादामभुजोर्मिभिः॥२९॥

---

१. दिव्याश्च - क
२. धूलितं - ग
३. मूर्द्धेसु - क
४. प्रक्रीडन्ति - ग
५. शिष्यादि - ग
६. पुरस्त्रीस्तनविभ्रष्टनवकुंभपिंजराः - ग
७. वसती च -ग
८. चा -क
९. भास्वरा -ग?

बध्नाति सर्वतः पुर्याः पद्मिन्याः कुसुमैः सह।
पश्येमां सरयूं दिव्यां विरजां विरजोद्भवाम्॥३०॥
इक्ष्वाकूणां च सर्वेषां धात्रीं परममङ्गलाम्॥३१॥

शैवालकेशां सरसीरुहाक्षीं पद्मानना पद्मपलाशवस्त्राम्।
दीर्घोर्मिहस्तां कुमुदद्विजां च हंसस्तनीं विद्धि च केन[1]हासाम्।३२

पुलिनाङ्के पयोदुग्धैर्पोषयन्ती नरान् सदा।
एवं जानीह भो कान्ते धात्रीं श्रीसरयूनदीम्॥३३॥

इति श्रीसत्योपाख्याने सूतशौनकसंवादे अष्टादशोऽध्यायः।



१. फेण - ग

एकोनविंशोऽध्यायः

श्रीब्रह्मोवाच-

अन्नानां निचयान्[1] पश्यन् नद्यास्तीरे सहस्रशः।
क्रियन्ते पर्वताकाराः क्रयविक्रयकारिभिः॥१॥

तान्यात्रिकाश्च[2] बहवो नानादेशनिवासिनः।
क्रयं कृत्वा[3] च वस्तूनां पोतेषु स्थापयन्ति च॥२॥

विक्रीय निजवस्तूनां द्विगुणेन महामनाः।
पणवीथ्यां मणीनां च पूगं पश्य सहस्रशः॥३॥

गारुत्मतस्य[4] शतशस्तथा व्रात[5]सहस्रशः।
मुक्तानां गजमुक्तानां मणीनां चन्द्रसूर्ययोः॥४॥

भूतयः सन्ति या ह्यत्र दिग्भुजां न गृहेषु ता।
अत्र दुन्दुभिनादाश्च भेरीनादा अहर्निशम्॥५॥

सुस्वरा अपि श्रूयन्ते जनैश्च निजभाग्यतः।
राज्ञो दशरथस्यापि जयशब्दप्रकुर्वती॥६॥

सरयूजल[6]कल्लोलैर्लक्षणेति कृता मया।
मेघाः वर्षन्ति वर्षायां मंदिरे नगरे तथा॥७॥

उच्चाटालं हि[7] रोहन्ति नरा नार्योऽर्भकैः सह।
तस्मिन्नदेशेपि वृष्टिश्च पुनरन्यं प्रयान्ति वै॥८॥

तत्रस्थाः वर[8]जीमूतान् सदा पश्यन्ति कौतुकान्।

---

१. निचयं -ग
२. सांयात्रिकाश्च - ग
३. क्रियं क्रत्वा -क
४. गरुन्मतस्य - ग
५. बाल - ग
६. सरयूनिज -ग
७. प्र - ग
८. वत - ग

श्रीसूत उवाच[1]-

एतस्मिन्नन्तरे सर्वाः पूर्वचितिमुखाः स्त्रियः॥९॥

तिलोत्तमा मंजुघोषा रम्भाद्या उर्वशीमुखाः।
गन्धर्वाप्सरशो यक्षाः विद्याधराः रतिमन्मथौ॥१०॥

विवर्णवदनाः भूत्वा धातारं च विजिज्ञयुः।

सर्वाः ऊचुः[१] -

देव देव महादेव परमात्मान्नमोस्तु ते॥११॥

अयोध्यां पश्य भो देव चात्रस्था युवतीः शुभाः।
सुकेशी श्यामनेत्राश्च श्यामाः श्यामेन वर्जिताः॥१२॥

नागवल्लीदलैः पूर्णं शोभितं मुखपङ्कजम्।
नासायां मौक्तिकं वासः[२] स्वर्णसूत्रेण राजते॥१३॥

कञ्चुक्या च कुचौ पीनौ छादितौ बहुरत्नया।
तथा निर्गत्य किञ्चिच्च राजतौ वर्त्तुलौ पुनः॥१४॥

राजन्ति ललनाः सर्वाः अट्टेऽट्टे विद्युतोपमाः।
युवकाश्चात्र कामाभाः मणिकुण्डलधारिणः[३]॥१५॥

निष्कग्रीवावलयिनो हारिणोङ्गदिनो[४] नराः।
किं बहूक्तेन भो देव मदना इव भूरिशः॥१६॥

नैतादृश्यै युवत्यैश्च[५] स्वर्गलोके कथंचन।
यादृशो युवतीयूथाः दृश्यन्ते यत्र भूरिशः॥१७॥

स्वर्गलोके च[६] भूलोकाद् विशेषो नहि विद्यते।[७]
भौमाय ते तु सर्वेषां स्वर्गो भूमौ प्रदृश्यते॥१८॥[८]

---

१. सूत उवाच - क
२. चासां -ग
३. श्लोकोऽयं कमातृकायां नास्ति
४. हारिणोङ्गदितो -ग
५. नैतादृश्यो युवत्यश्च - ग
६. स्वर्गलोकाच्च -ग
७. मामायतं तु स्वर्गायत स्वर्गो भूमौ प्रदृश्यते। इयं पङ्क्तिः ग - मातृकायामग्रे प्राप्यते
८. क - मातृकायामेवास्ति।

बहुभिर्जपयज्ञैश्च क्लेशेनापि द्विजातथः।
अत्रैव विविधा भोगाः सुखानि च बहूनि हि॥१८॥

भुञ्जन्ते नरनार्यश्च तेषां स्वर्गेन किं फलम्।
सूत उवाच-
इति श्रुत्वा गिरस्तेषां ब्रह्माकमलसम्भवः॥१९॥

उवाच प्रहसन्वाण्या मेघनादगभीरया।
ब्रह्मा उवाच-
मनुं स्वायंभुवं यूयं[१] चान्तिके मम[२] पृच्छथः॥२०॥

स वै छिनन्ति युष्माकं सन्देहं वचनैः प्रियैः।
सूत उवाच-
एतस्मिन्नन्तरे तत्र मनुः स्वायंभुव स्वराट्॥२१॥

आजगाम विमानेन चान्तिके पितुरात्मनः।
तं च सङ्गम्य[३] पप्रच्छुः सन्देहं मानसोद्भवम्॥२२॥
सूत उवाच[४]

भद्रं ते किं कृतं राजन् प्रजाश्च सृजता त्वया।
अस्मत्तश्चाधिका[५] कृत्वा मुमोद सुकृती भवान्॥२३॥

यूयं च यदि स्वर्गस्य मर्यादां न करिष्यथ।
स्वर्गार्थे[६] च पुनः राजन् न कोऽपि प्रयतिष्यति॥२४॥

देवाः श्रेष्ठाः मनुष्याः वा स्वर्गो वा भूतलोऽपि वा।
अयोध्यायां यथा राजन् दृश्यते पुरुषाः स्त्रियाः॥२५॥

न तथा क्वापि वर्तन्ते स्वर्गे भूमिधरः[७] प्रभो।
सूत उवाच-
वाक्यं निशम्य तेषां तु जगाद च मनुस्स्वयम्॥२६॥

---

१. पूर्वं -ग
२. प्राप्य -ग
३. तं संगम्य - ग
४. सर्वाः ऊचुः - ग
५. अस्मत्तोऽधिकाः - ग
६. स्वर्गार्थं - ग
७. भूमे धरः - क

भारत्या[1] प्रीणयन्नेव देवानां युवतीस्तदा।
मनुरुवाच-
स्वर्गार्थं क्रियते कर्म जनैश्च स्वर्गगामिभिः॥२७॥

भूतले भूतलश्चैव स्वर्गे स्वर्गस्तथैव च।[2]
जन्ममृत्युजराव्याधि भूतले वर्तते सदा॥२८॥

मलमूत्रशरीराणि नराणां नाशवन्ति च।
पञ्चविंशति वर्षस्थाः नराः नार्यश्च षोडशे॥२९॥

तेषां देहेन दुर्गंधो न छायामलिनाम्बरम्।
न निमेषस्तु[3] नेत्रेषु स्वर्गस्था सुखिनो जनाः॥३०॥

शोको न क्रियतां देवा यूयं श्रेष्ठाः न संशयः।
[4]प्रहसन् प्राह देवर्षी राज्ञो वाक्यं निशम्य च॥३१॥

तस्मिन् काले महाहर्षो देवान् प्रत्यमितद्युतिः।
श्री नारदोवाच-
राज्ञो चोक्तं यथातथ्यं तत्तथैव न संशयः॥३२॥

परन्तु स्वर्गतः श्रेष्ठायोध्येयं सुरदुर्लभा।
माहात्म्यत इयं[5] श्रेष्ठा स्वर्गादपि वरानना॥३३॥

स्वर्गवासात् पुनर्जन्ममरणं विद्यते नृणाम्।
स्वर्गच्युताश्च[6] भूलोकं पतन्ति सुकृतक्षयात्॥३४॥

अत्र मृताश्च वैकुण्ठमूर्द्धा[7] गच्छन्ति मानवाः।
कृमिकीटपतङ्गाश्च म्लेच्छाः सङ्कीर्णजातयः॥३५॥

---

१. भरत्या - ग
२. भूलोको भूतलश्चैव स्वर्गो वर्गस्तथैव च। -ग
३. निमेषश्च - ग
४. प्रहसन् प्राह ----न संशयः॥३२॥ -इति पाठः ग- मातृकायां नास्ति।
५. माहात्म्यं तदयं - क
६. स्वर्गाच्च्युताश्च -ग
७. मूर्द्ध - ग

कौमोदकी करा:[1] सर्वे प्रयान्ति गरुडासना:।
लोकं शान्तानकं[2] नाम दिव्यभोगसमन्वितम्॥३६॥

यद् गत्वा न पतन्त्यस्मिंल्लोके मृत्युमुखे नरा:।
माहात्म्यादधिकं स्वर्गात् साकेतं नगरे[3] शुभम्॥३७॥

अयोध्याया: समं[4] किञ्चिन्न स्वर्गं भूतलं[5] तथा।
योषित: खलु चात्रस्था: विधाता विदधे बहु:॥३८॥

आत्मनो दोषनाशाय रचिता:[6] भूतले स्त्रिय:।
यदाहल्यां[7] विधाता च निर्ममे परमाद्भुताम्॥३९॥

तदा[8] लोकैश्च विज्ञातं घुणाक्षरमिदं विधे:।
तद्दोषमार्जनायैव निर्ममे चात्र योषित:॥४०॥

कुर्वन्तु संशयं देव्यो सौन्दर्ये न कदाचन।
अत्र नार्य श्रियो मूर्त्यो नराश्च हरिविग्रहा:॥४१॥

श्री सूत उवाच

नारदस्य ऋषेर्वाक्यं निशम्याप्सरसस्तदा।
मतिं चक्रुश्च साकेते वसितुं स्वर्गनिस्पृहा:॥४२॥

इति श्रीसत्योपाख्याने सूतशौनकसंवादे एकोनविंशोध्याय:।



---

१. गदा: -ग
२. शान्तनवम् -ग
३. नगरं - ग
४. अयोध्यासमं - ग
५. स्वर्गे भूतले - ग
६. पूरिता - ग
७. यदाहिल्या - क
८. यदा - ग

विंशोऽध्यायः

स्फाटिकानां च सौधानि चन्द्ररश्मियुतानि[१] च।
रात्रौ रात्रौ विलोक्यन्ते जनैरारुह्य सर्वतः॥१॥

अट्टेषु चन्द्रकान्तेभ्यः जलधारा पतत्यधः।
निशायां रश्मिसंयोगाद्द्विजराजस्य नित्यदा[२]॥२॥

लज्जायात्र गृहिण्यश्च[३] रात्रौ दीपान् समाप्य च।
लज्जन्तेत्र पुनः सर्वा मणिभिः कुण्डननिर्मितैः[४]॥३॥

इतस्ततो जना ये[५] वै स्फाटिकानां च भित्तिषु।
तेषां तादृशबिम्बेन सजीवा इव वै गृहाः॥४॥

यत्र स्वर्णमयाः स्तम्भाः सौधेयासौ[६] निरूपिताः।
कपोलान्यत्र पश्यन्ति युवत्यः कामपाण्डुरान्॥५॥

पाकशालाक्षितिस्तत्र नीलरत्नैश्च कुट्टिमाः[७]।
न कुर्वन्ति भ्रमात् तस्यां नव वध्वश्च गोमयम्॥६॥

प्रान्तेषु पटलानां च नृत्यन्ति शिखिनो मुहुः।
वितत्यस्वस्य बर्हाणि मृदङ्गानां स्वनेन च॥७॥

विलोक्य कालमेघानां[८] धूमानामगरुस्य च।
गगनोड्डीयमानानां पक्षिणां रत्नजाङ्गणे॥८॥

---

१. चक्ररश्मिप्रतानि च - ग
२. नित्यशः - ग
३. लज्जयात्र गृहाण्यश्च - क
४. कुड्यनिर्मितैः - ग
५. जना यौ - क
६. सौशौचे - ग
७. कुण्डिमा - क
८. कालमेघाभं - ग

प्रतिबिम्बस्य तेषां तु ग्रहणाय यतस्ततः।
हिंस्रो धावति पापात्मा मार्जारः किलमारकः॥९॥

कामिनश्चात्र शतशो वलभीषु: वधूजनैः[1]।
भ्राजन्ते परमानन्दं महापौरुषिका[2] इव॥१०॥

युवतीनां मुखान्यत्र प्रमादाय नृणां मधु।
बिभ्रन्ति सततं कान्तिं नेत्राणां पुटके तथा॥११॥

लोकवार्ता यथा लोका प्रवदन्ति गृहे स्वके।
प्रपठन्ति तथा रम्यं पञ्जरस्थाश्च सारिकाः॥१२॥

पतिना सह यज्जातं नवोढायाः रतादिकम्।
तद्दिवा वक्तुकामस्य कीरस्य मुखपङ्कजे॥१३॥

वधू दधाति सकलं विद्रुमस्य पुनः पुनः।
अत्र वस्त्राणि रम्याणि क्षौमकौशेयकानि च ॥१४॥

कुचादीनि प्रदृश्यन्ते तत्राङ्गानि यर्थाथतः।
राजमार्ग महादीर्घं तत्र गच्छन्ति भूरिशः ॥१५॥

अश्वाः गजाः रथाः सर्वे असङ्कीर्णं प्रयान्ति च।
वृक्षाश्चात्र महादीर्घाः कल्पवृक्षोपमाः सदा ॥१६॥

प्रयच्छन्ति नराणां च सर्वान् कामांश्च वाञ्छितान्।
इन्द्राच्छ्रेष्ठो हि राजर्षिः साकेते वसते सदा ॥१७॥

तेनेयं च पुरी चाद्या स्वर्गाच्छ्रेष्ठा च राजते।

सूत उवाच-

देवानां च विमानानि प्राप्तानि नगरोपरि ॥१८॥
पुनः प्रोवाच वै स्रष्टा वीक्ष्यमानो वनानि च ॥१९॥

श्रीब्रह्मोवाच-

पश्यध्वं देवताः सर्वे वनं चाशोकसंज्ञकम्।
शान्तानिकवनं[3] चात्र मन्दारवनमेव च ॥२०॥

वनं च पारिजातानां चन्दनानां तथैव च ।
चम्पकानां वनं दिव्यं यत्र यान्ति न षट्पदः॥२१॥

---

१. वल्लभी युवती जनैः - क
२ महापौरुषकाः - क
३. सन्तानकवनम् - ग

वनं रमणकं देवा रमणं यत्र वै हरेः।
वनं प्रमोदकं चापि प्रमोदं यत्र भूरिशः॥२२॥

आम्राणां च वनं दिव्यं तथैव पनसैः कृतम्।
कदम्बानां वनं दीर्घं केशरैरुपशोभितम्॥२३॥

तमालानां वनं दिव्यं वल्लिभिः परिवेष्टितम्।
वनान्येतानि रम्याणि संख्यातानि च द्वादशः॥२४॥

तथा चोपवनान्येन पुष्पाणां क्रमशः सुराः।
यत्र यान्ति युवानश्च रमणीभिः रमितुं[1] सदा॥२५॥

आखेटकाः राजानो वनेषु परितो बलैः।
वृताः[2] क्रीडन्ति ते नित्यं मनन्त इव नन्दने॥२६॥

इत्येवं च[3] वदन् ब्रह्मा देवान् प्रति महातपाः।
सरव्याः भूमिभागांश्च [4]तथा यानान्यवातरन्॥२७॥

देवानां ब्रह्मरुद्राणां विमानानि समन्ततः।
ब्रह्माद्याः सकलाः देवाः विमानेभ्यः अवातरन्[5]॥२८॥

अप्सु नद्यास्तथा चक्रुः स्नानं चैव विधानतः।
युवत्यः किल देवानां निर्णेजुर्निजविग्रहम्॥२९॥

स्नात्वा सम्यक् बहिश्चाद्भ्यो गत्वा वासांसि पर्यधुः।
दत्वा दानानि विप्रेभ्यो नानारत्नमयानि च॥३०॥

एकदश्यां पुण्यतिथौ सन्ध्या भेजु[6]स्तथा शुभाम्।
इत्येवं तीर्थयात्रा तु कृता देवैर्महर्षिभिः॥३१॥

इति श्री सत्योपाख्याने सूतशौनकसंवादे विंशोऽध्यायः।



---

१. रमते –ग

२. वृतः

३. वि

४. ग – मातृकायां नास्ति।

५. अवतारयन् –ग

६. जेपु – ग

एकविंशोऽध्यायः

सूत उवाच-

तस्मिन् काले वसिष्ठस्तु नोदितश्च नृपाज्ञया।
आजगाम विधे पार्श्वं विधिपुत्रो विधानतः॥१॥

समागत्य विधेः पार्श्वं ववन्दे प्रणतः पदौ।
ब्रह्मा शीघ्रं समुत्थाय परिष्वज्य च[1] बाहुभिः॥२॥

उपकण्ठे तमावेश्य पर्यपृच्छदनामयम्।
राज्ञो दशरथस्यापि तथा रामस्य भूरिशः॥३॥

सूत उवाच-

पृच्छन्तं[2] पितरं चैव वसिष्ठो भगवान् ऋषिः।
उवाच श्लक्ष्णया वाचा पितरं भूपनोदितः॥४॥

श्रीवसिष्ठ उवाच-

येषां कुशलकामोसि भव्यं तेषां तु विद्यते।
आगमिष्यति राजा तु पुत्रैस्त्वामभिवन्दितुम्॥५॥

विधातापि मुनेर्वाक्यं श्रुत्वा विस्मितमानसः।
प्रहसन् प्राह धर्मात्मा वसिष्ठं कमलासनः॥६॥

श्रीब्रह्मोवाच-

अहमप्यागमिष्यामि गृहं राज्ञो महात्मनः।
देवैस्सह मुने याहि राज्ञो[3] (ब्रूहि) ममाज्ञया॥७॥

यस्य पुत्रो रमानाथो रामचन्द्रोऽथ भ्रातृभिः।
वर्ततेऽथ गृहं[4] तस्य दर्शनार्थं व्रजाम्यहम्॥८॥

रामो नारायणः साक्षात् ममोपास्यः सदाद्विजः।
भवान् ज्ञाता मुने सर्वं मम रामस्य भूरिशः॥९॥

---

१. त - ग
२. पृच्छन्ति - क
३. ब्रूहि ब्रूहि - ग
४. गृहे - ग

रामस्य नाभिपद्मेन जातोहं प्रलयार्णवे।
मम देहाद् भवन्तोपि जाता दक्षादयः सुताः॥१०॥
एवं न ज्ञायते पुत्र त्वया किं मम चोच्यते।
नराकारस्य रामस्य वयं त्वं च सहायकाः॥११॥
ऐते देवास्तथा सर्वे ऋषयश्च तपोधनाः।
संगोपनीयमस्माभिः रामतत्त्वं च साम्प्रतम्॥१२॥
यथासुखं भवेद् भूरि पित्रोश्चैव तथा नृणम्।

सूत उवाच-

एवं विश्राव्य वै ब्रह्मा रघूणां देशिकं[1] मुनिम्॥१३॥
अहमप्यागमिष्यामि चेति वाक्यं पुनः पुनः।
वसिष्ठं प्रेषयित्वा तु यानं चारुरुहे निजम्॥१४॥
वसिष्ठोऽपि महातेजा आजगाम नृपान्तिकम्।
आगत्य कथयामास वेधा चायाति भो ध्रुवम्॥१५॥
तव बालस्य दृक्षार्थं[2] सर्वे देवाः सवासवाः।
दीर्घं भाग्यं विजानीया ह्यात्मनः पुत्रसम्भवात्॥१६॥
एतस्मिन्नन्तरे दूता ब्रह्मादीनां समागताः।
वर्धयित्वा तु राजानं प्रोचुः प्राञ्जलयो नृपम्॥१७॥

देवदूत उवाच[3]-

आगताः शतशो देवाः श्रीमतां शुभतोरणाम्।
आज्ञाप्यतां[4] महाराज सभायां प्रविशन्तु ते॥१८॥

श्री राजा दशरथोवाच-

इदं गृहं तु देवानां चेदं राज्यं पुरं[5] मम।
स्वगृहे को विचारोऽस्ति चाज्ञां कस्य प्रतीच्छथ॥१९॥

श्री सूत उवाच-

इत्युक्त्वा च स्वयं राजा प्रचचाल वरासनात्।
रामं स्वाङ्के घनश्याममिन्द्रनीलसमप्रभम्॥२०॥

---

१. दर्शकम् - क
२. रक्षार्थम् - ग
३. देवा ऊचुः - ग
४. आज्ञापिता - क
५. परम् - क

क्लृप्तां[1] बलिं समादाय देवानां नयतुं ययौ।
एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मा प्रविवेश नृपालयम्॥२१॥

देवैः सह महाबाहुः प्रहसन् कमलासनः।
प्रणनाम महाराजो ब्रह्माणं च चतुर्मुखम्॥२२॥

पादयोः पातयामास रामचन्द्रं च वेधसः।
सिंहासने समावेश्य विधिं राजा महामनाः॥२३॥

तदेन्द्रोऽपि गणेशोऽपि महादेवादयः सुराः।
राज्ञा सम्पूजिताः सर्वे विविशुश्च यथासुखम्॥२४॥

अप्सरसश्च रम्भाद्याः पूर्वचित्यादयस्तथा।
समाजग्मुश्च गन्धर्वाः नानावेशधराः सभाम्॥२५॥

राजानं वर्द्धयित्वा तु स्थाने स्थाने यथाविधि।
हसन्[2] प्राह महाराजः ब्रह्माणं सर्वदेवताः॥२६॥

अद्य मे सफलं जन्म अद्य मे सफलं गृहम्।
अद्य मे [3]सफलान्यासन् सुप्रभातानि वै मम॥२७॥

साधूनां च सुराणां च दर्शनं दुर्लभं नृणाम्।
कृतार्थोऽहं कृतार्थोऽहं यूयं दर्शनमागताः॥२८॥

युष्माकं दर्शनं रम्यं[4] नृणां भवति भाग्यतः।
तीर्थस्थानमिषेणेव मद्‌गृहेषु समागताः॥२९॥

किं पुनर्महिमा शक्यो वर्णितुं स्वमुखात्ततः।

सूत उवाच-

ब्रह्मा राज्ञोदितं वाक्यं श्रुत्वा साधु निरूपितम्।
अब्रवीच्च स्मितं[5] कृत्वा राजानं हंसवाहनः॥३०॥

इति श्रीसत्योपाख्याने सूतशौनकसंवादे एकविंशोऽध्यायः।



---

१. कृत्वा - क
२. प्रहसन् - ग
३. सफला स्वामिन् सुप्रभाता निशा मम। - ग
४. यज्ञे - ग
५. अब्रीवीत् सस्मितं-ग

द्वाविंशोऽध्यायः

श्रीविधि उवाच-

सत्यमुक्तं[1] महाराज तव भाग्यान्न चाधिकम्।
भूलोके देवलोके च पाताले च नरेश्वरः।।१।।

भाग्यं हि विद्यते राजन् नरस्य हि कथंचन।
यस्य पुत्राः महात्मानः श्रीरामभरतादयः।।२।।

जाताः पुण्याच्च लोकानां सर्वथा परिरक्षकाः।
युगे युगे च गावो हि ब्राह्मणाः साधवस्तथा।।३।।

पृथिवी च महाराज ह्यनेन परिरक्षिताः।
येऽस्मिन्[2] प्रीतिं करिष्यन्ति ते सुभाग्याः[3] न संशयः।।४।।

चरितं चास्य लोकस्य[4] पापपर्वतदारणम्।
यावल्लोका चरिष्यन्ति[5] यावत्तिष्ठति मेदिनी।।५।।

तावद्रामकथा लोके प्रचरिष्यति पापहा।
किं बहुक्तेन भो राजन्[6] नारायणसमोर्भकः।।६।।

सूत उवाच-

द्रुहिणस्य मुखोद्गीतं समाकर्ण्य नराधिपः।
प्रहर्षं परमं लेभे श्रुत्वा पुत्रं गुणान्वितम्।।७।।

एतस्मिन्नन्तरे तत्र सभायां नारदो मुनिः।
आजगाम विधेः पुत्रो दर्शनार्थं स तुंबुरुः।।८।।

---

१. सत्यं चोक्तं-ग
२. यो-ग
३. चामोघाः-ग
४. लोकेऽस्मिन्-ग
५. धरिष्यन्ति-ग
६. तावत्तिष्ठति-ग

जनकाङ्कगतं रामं ददर्श विनयान्वितः।
दृष्ट्वा दृष्ट्वा पुनः दृष्ट्वा मुमोह च पुनः पुनः।।९।।

श्यामसुन्दररामस्य रूपाब्धौ मज्जतोऽभवत्[१]।
बहिर्निर्गत्य धैर्येण रामस्य परमात्मनः।।१०।।

तेन स्तोत्रं समारब्धं ब्रह्मादीनां च सन्निधौ।

श्रीनारद उवाच-

वन्दे सुराणां शरणं[२] च सुरेशं श्यामसुन्दरम्।।११।।

योगीश्वरं योगबीजं योगिनां च परं गुरुम्।
ज्ञानानन्दं ज्ञानरूपं ज्ञानगम्यं सनातनम्।।१२।।

तपसां फलदातारं सर्वसम्पत्तिदं शिवम्।
तपोबीजं तपोरूपं तपोधर्मं तपोवरम्।।१३।।

वरेण्यं वरदाभीष्टं[३] भक्तानुग्रहकारकम्।
वेदा न शक्ताः यं[४] स्तोतुं किमहं स्तौमि तं प्रभुम्।।१४।।

कारणं भुक्तिमुक्तीनां नरकार्णवतारणम्।
आशुतोषं प्रसन्नास्यं करुणामयसागरम्।।१५।।

ब्रह्मज्योतिस्वरूपं[५] च दुष्टदानवनाशनम्।
अपरिच्छिन्नशक्तिं च कायवाङ्मनसः परम्।।१६।।

ततो[६] गुणपरं रामं रजसः तमसः परम्।
ब्राह्मणानामुपास्यं च योगिनां हृदयङ्गमम्।।१७।।

कोटिकन्दर्पलावण्यं द्विभुजं रघुनन्दनम्।
ज्योतीरूपमरूपं च रमानाथं जगद्गुरुम्[७]।।१८।।

ब्रह्मज्योतिः प्रभुं रामं वासुदेवं जनार्द्दनम्।
वैकुण्ठं माधवं विष्णुं दैत्यारि मधुसूदनम्।।१९।।

---

१. ब्रूडितोऽभवत्-ग
२. सारं-ग
३. वरदमीड्यं-ग
४. शक्त्ययं-क
५. ब्रह्मज्योतिः स्वरूपं-ग
६. तमो-ग
७. जगद्धितं-ग

नमो हंसाय शुद्धाय शुचीनां शुचये नमः।
विष्वक्सेनाय महते रामायमिततेजसे।।२०।।

मत्स्यकूर्मवराहानां रूपिणे परमात्मने।
रामचन्द्राय हरये नमस्ते सिंहरूपिणे।।२१।।

नमो वामनरूपाय जामदग्न्याय ब्रह्मणे।
नमस्ते रामचन्द्राय श्रीकृष्णाय नमो नमः।।२२।।

नमस्ते बुद्धरूपाय नमस्ते कल्किरूपिणे।
श्रीसूत उवाच-
स्तोत्ररत्नमिदं कृत्वा विरराम महामुनिः।।२३।।

रघूनां[1] प्रवरो राजा मुनिं प्रोवाच लज्जितः।
वाक्यं च श्रूयतां मध्यं तव भक्तस्य मे विभो।।२४।।
श्री राजा दशरथ उवाच-

मम पुत्रस्य व्याजेन कृतं स्तोत्रं हरेरिदम्।
एवमेव च कर्तव्यं सकलैः[2] प्राणिभिः सदा।।२५।।

इदानीं मम पुत्रस्य मन्त्ररक्षां च क्रियताम्।
सूत उवाच-
नारदोपि महायोगी विरक्तानां शिरोमणिः।।२६।।

पस्पर्श बालं पाणिभ्यां रक्षाव्याजेन मस्तके।
कण्ठं वक्षस्थलं चैव ह्यङ्घ्री[3] स्पृष्ट्वा जगाम सः।।२७।।

ब्रह्मादयस्तु ते देवाः प्रशंसुर्मनसा मुनिम्।
अहो मुनि महाबुद्धि रामस्य चरणौ शुभौ।।२८।।

स्पृष्ट्वा शीघ्रं प्रयातो हि रसिकानां शिरोमणिः।
इदं स्तोत्रं महापुण्यं नारदेन समीरितम्।।२९।।

स्तोत्ररत्नमिदं ज्ञेयं रामचन्द्रस्य शौनकः।
यो नित्यं पठते विद्वान् यो वा धारयते सुधी।।३०।।

---

१. ग-मातृकायां 'रघूनां....विभो' नास्ति।

२. सफलैः-ग

३. बाहूंघ्री-ग

न तस्य पुनरावृत्तिः कल्पकोटिशतैरपि।
नियमाद्यः पठेत् स्तोत्रं प्रातरुत्थाय बुद्धिमान्।।३१।।

प्राप्नोति सकलानर्थान् बालरामप्रसादतः।
स्तोत्ररत्नमिदं दिव्यं[1] मासमात्रं शृणोति यः।।३२।।

ध्रुवं वित्तं भवेत्तस्य रामचन्द्रप्रसादतः।
महामूर्खश्च दुर्मेधा[2] मासं भक्त्या शृणोति यः।।३३।।

बुद्धिं विद्यां च लभते गुरूपदेशमात्रतः।
अपुत्रो लभते पुत्रं वर्षमेकं शृणोति यः।।३४।।

इह लोके सुखं भुक्त्वा कृत्वा कीर्तिं सुदुर्लभाम्।
नानाप्रकारधर्मं[3] च यात्यन्ते च हरेर्गृहम्।।३५।

यः शृणोति त्रिसन्ध्यं च नित्यं स्तोत्रं सुमङ्गलम्।
किं बहुक्तेन भो विप्र नास्त्यस्मादधिकं परम्।।३६।।

इति श्रीसत्योपाख्याने सूतशौनकसंवादे द्वाविंशतोऽध्यायः।।२२।।

---

१. पुण्यं-ग

२. दुर्मेधो-

३. नानाप्रकारधर्मे-क

त्रयविंशोऽध्यायः

श्रीसूतोवाच-

गतेथ नारदे राजा ब्रह्मादीन् वाक्यमब्रवीत्।
प्राञ्जलिप्रयतो भूत्वा धर्मिणां प्रवरो नृपः।।१।।

श्रीदशरथ उवाच-

एकादश्यां च भो देवाः फलाहारो गृहे मम।
भवद्भिः क्रियतामत्र विहितोऽयं ममाञ्जलिः।।२।।

येषां गृहे न भुञ्जन्ते देवा वा ऋषयो द्विजाः।
तेषां गृहं भवेच्छून्यं फेरुराजगृहोपमम्।।३।।

ब्रह्मोवाच-

अद्य चैकादशी राजन् फलाहारो न शस्यते।
एकादश्यां फलाहारो मध्यमः प्रोच्यते बुधैः।।४।।

भोजनं च महानिंद्यमन्नानां च नराधिप।
तस्मादद्य न भोक्तव्यं भोक्तव्यं भोजनद्वयम्।।५।।

रात्रौ जागरणं चैव दिवा च हरिकीर्तनम्।
तृप्ताश्चास्मो[1] वयं सर्वे तव दर्शनतो नृप।।६।।

इत्येवं ब्रुवतः सर्वान् पुनः प्रोवाच भूमिपः।
रक्षां च क्रियतां स्वामिन् बालकस्य ममाद्य वै।।७।।

चिरंजीवि भवेद्येन तथा वै क्रियतां शुभम्।
गिरामाकर्ण्य[2] भूपस्य वात्सल्यगुणभूषिताम्।।८।।

तथा भवतु वाक्यं ते प्रत्यूचुश्च सुरेश्वराः।
अथ ब्रह्मा सभायां गणेशं च गणाधिपम्।।९।।

---

१. तृप्तिश्च स्मो-क

२. गीर-ग

अब्रवीत् प्रहसन् वाक्यमेकदन्तगजाननम्।

श्रीब्रह्मोवाच-

एकदन्त महावीर्य नमस्ते परशुपाणये।।१०।।

सिध्यन्ति सर्वकार्याणि त्वत् प्रसादाद् गणाधिपः।
शिवपुत्राय भव्याय मतङ्गास्याय ते नमः।।११।।

नमस्ते[1] पार्वतीपुत्र विष्णुप्रियाय ते नमः।
गणानां पतये तुभ्यं नमस्ते चैकदन्तिने।।१२।।

विघ्नार्णवनिमग्नानां तारणाय नमो नमः।
ये ये भजन्ति त्वां देव तेषां विघ्नो न विद्यते।।१३।।

सर्वमङ्गलकार्येषु भवान् पूज्यो जनैः सदा।
मङ्गलं तु सदा तेषां त्वत्पादे च धृतात्मनाम्।।१४।।

बहुधैवं च विज्ञाप्य पुनः प्रोवाच पद्मजः।
रक्षां च क्रियतामस्य[2] साम्प्रतं बालकस्य वै।।१५।।

आज्ञाप्यैवं विधातापि विरराम गजाननम्।
गजाननोपि रामं हि पश्यन् प्रेम्णा मुहुर्मुहुः।।१६।।

जहास मनसा देवो वाक्यं श्रुत्वा विधेरिदम्।
बुद्ध्या विचारयामास विधिवाक्यं महामतिः।।१७।।

रक्षां च क्रियतामस्य बालकस्य हि साम्प्रतम्।
विधिना चैव प्रोक्तोऽहमिति वाक्येन साम्प्रतम्।।१८।।

अयमर्थो हि[3] वाक्यस्य मनसैवं विचार्यते।
अकारो वासुदेव स्यात् षष्ठी ह्यस्य भवेद् ध्रुवम्।।१९।।

बालः केश इति प्रोक्तः कशब्देन प्रजापतिः।
बाले बाले ककारस्तु जायते तस्य नित्यदा।।२०।।

इति बालकशब्देन परब्रह्म विधीयते[4]।
बालकस्यास्य चार्थोऽयं मया ज्ञातः सुनिश्चितम्।।२१।।

---

१. नमः पार्वतीपुत्राय विष्णुभक्ताय ते नमः।-ग

२. क्रीयनामस्य-क

३. अयमर्थोत्थ-क

४. परब्रह्मभिधीयते-ग

परं त्वर्थो न वक्तव्यो मनसैव स्मराम्यहम्।
कर्णौ प्रचालयन् दीर्घौ पक्षाविव च पक्षिराट्।।२२।।

शुण्डं प्रसारयामास रामस्योपरि वेगतः।
भ्रामयामासु परितो रक्षार्थं रामनामिनः।।२३।।

ततो रामो महातेजा बालरूपी तु कौतुकी।
चकार रोदनं[१] किञ्चिद् दृष्टिसङ्कोचनादिकम्[२]।।२४।।

रोदनार्थं गणेशस्तु पाया[३]दिव भयं नहि।
गजतुण्डोऽपि संकुच्य संजहार निजं करम्।।२५।।

धातापि पुनरुत्थाय रक्षार्थं बालकस्य च।
चतुर्भिर्वदनैस्तत्र तात तातेत्युवाच ह।।२६।।

ब्रह्मणो मुखपङ्क्तिं च संजहास [४]रघूत्तमः।
पाणिनां कुशदीर्घेण चक्रे रक्षां पितामहः।।२७।।

रक्षां कृत्वा निजस्थाने विवेश कमलासनः।
कपर्दी पुनरुत्थाय पञ्चभिर्वदनैः ब्रुवन्।।२८।।

अनेन बालरूपेण रक्षितो निजसेववैः।
सदा मे हृदये तिष्ठ यत्र कालभयं [५]नहि।।२९।।

तदा रामो न किञ्चिच्च हास्यं चक्रे च[६] बालकः।
महादेवे निजस्थाने आसीने शिखिवाहने[७]।।३०।।

षड्भिर्वा वदनैर्वाक्यं विब्रुवन् रघुनन्दनम्।
अहो राम महाबाहो किं रोदसि गजाननात्।।३१।।

षड्भिर्वदनैर्युक्तं मां पश्यस्व बालक।
मत्तः किं न बिभेषि त्वं त्रियुगं वदनं मम।।३२।।

---

१. वदने-ग
२. किञ्चि दोष्ठसङ्कोचनादिकम्-ग
३. गणेशातु माया-क
४. न-ग
५. काले भयं-क
६. हि-ग
७. शिखिवाहनः-ग

अर्द्धासनगता देवी शिवस्य गिरिजा सती।
अब्रवीत्परया वाचा कार्तिकेयं निजात्मजम्।।३३।।

श्री देव्युवाच-

दशाननादयं बालो न विभेष्यति शत्रुहा।
त्वत्तः षडाननात्पुत्र कथं बिभ्यति बालकः।।३४।।

वचा देव्याः निशम्यैवं जहसुस्ते सभादयः।
रामोपि किलकिलां कृत्वा पितुरङ्के जहास ह।।३५।।

नृपादयस्तु जहसुः पश्यन्तः कौतुकं त्विदम्।
राजा सभाजिताः सर्वे देवगन्धर्वकिन्नराः।।३६।।

रामरक्षां पठित्वा तु गन्तुं चक्रुर्मतिं निजाम्।
देवाः ब्रह्मादयः सर्वे स्वं स्वं वाहमवस्थिताः।।३७।।

जग्मुः सर्वे स्वकं स्थानं रामे निक्षिप्य मानसम्।
इतः परं च वक्ष्येहं यज्जातं नृपतेर्गृहे।।३८।।

श्रीसत्योपाख्याने सूतशौनकसंवादे त्रिविंशोध्यायः।।२३।



चतुर्विंशतिः अध्यायः

सूत उवाच-

राजा दशरथो हृष्टः प्रेषयामास बालकम्।
अन्तःपुरे महादीर्घे यत्र कौशल्यादयः स्त्रियः।।१।।

कौशल्यापि निजोत्सङ्गे[1] रामं श्यामं निवेश्य च।
प्रस्नुतौ पाययामास स्तनौ प्रेमभरप्लुतौ।।२।।

तस्मिन्नवसरे सर्वाः राजदाराः समाजगुः।
कौशल्यामब्रुवन् शीघ्रं मन्त्ररक्षा विधीयताम्[2]।।३।।

रामस्य भयभीतस्य गणनाथस्य शुण्डतः।

सूत उवाच-

कौशल्याद्यास्तदा सर्वाः पेठुः रक्षां हि तादृशीम्।।४।।

श्रीकौशल्योवाच-

पादौ रक्षतु ते विष्णुः शङ्खचक्रगदाधरः।
प्रजापतिस्तु ते मेढ्यं गुदं निर्ऋति एव च।।५।।

नाभिं पातु समानं च[3] तथापाने[4] सदागतिः।
अजचन्द्रौ मनोबुद्धी पातु चित्तं हरिः स्वयम्।।६।।

अहङ्कारं महादेवः शूलहस्तो दिगम्बरः।
वरुणो रक्षतु ते जिह्वां या दशनपङ्क्तिरप्पतिः[5]।।७।।

मुखं पातु सदा वह्निर्नासां च वड्वासुतौ।
नेत्रे रक्षतु मार्तण्डस्तथा कर्णौ दिशस्त्व।।८।।

---

१. निजाङ्के-ग

२. च क्रीयताम्-ग

३. समानस्तु-ग

४. पातु-ग

५. यादसंपतिरप्पति-क, यादसां पतिरप्यति-ग

बाहू रक्षतु वृत्रघ्नो देवराज शचिपतिः।
सर्वाङ्गेषु महाविष्णुः वातो रोमाणि सर्वदा।।९।।

अग्रे रक्षतु चक्रं त्वां पश्चात् कौमोदकी गदा।
डाकिनी भूतप्रेतेभ्यो नन्दकोऽवतु सर्वदा।।१०।।

सर्वापद्भयो नृसिंहस्तु भ्रमण्यातु[१] त्रिविक्रमः।
कालाद्रक्षतु कोदण्डः व्याधिभ्यस्तु शिलीमुखम्[२]।।११।।

शयानं पातु श्रीरङ्गः जागरूकं श्रियः पतिः।
गरुडो रक्षतु सर्पेभ्यः[३] शेषो रक्षतु क्रोधतः।।१२।।

धन्वन्तरिः कुपथ्यात्तु लक्ष्मी रक्षतु भोजनात्।
नन्दादयो द्वारपालाः[४] पातु त्वाञ्च सदैव हि।।१३।।

डाकिनीभूतप्रेतेभ्यो देवी त्वामभिरक्षतु।
पृथिवी पर्वताः नद्यो वनानि सिन्धवः कुशाः।।१४।।

मशकाः दंशकाः रोगाः क्षुपागोमहिषादयः।
दिनानि रात्रियो यामाः घटिका संवत्सरस्तथा।।१५।।

अश्वाः गजाः नराः सर्वे द्विपदाः बहुपदाश्च ये।
अजडाश्च जडाश्चैव पक्षिणः कुक्कुरास्तथा।।१६।।

गन्धर्वाप्सरसो यक्षाः पितरो मातृकादयः।
सिद्धाः वैतालिकाः रक्षो देवर्षयः प्रजापतिः।।१७।।

सर्वेप्येते तथा त्वन्ये त्वां रक्षन्तु सदैव हि।
पेठुरेवं[५] सपत्न्यास्ताः कौशल्याद्याः पुनः पुनः।।१८।।

रामरक्षां च विधिवत् पश्चाद्दानं ददुर्बहु।
आजगाम वशिष्ठस्तु चाहूतो राममातृभिः।।१९।।

विधिवद्रक्षणं चक्रे रामस्य परमात्मनः।
गवां सहस्रं कौशल्या रामहस्तेन दापयत्।।२०।।

ब्राह्मणेभ्यो महद्दानं[६] लक्ष्मणाम्बा तथाकरोत्।
वशिष्ठे विपुलां गृह्य दक्षिणां प्रययौ गृहम्।।२१।।

---

१. क्रमेण-ग २. शिलीमुखाः-ग
३. सर्वेभ्यो-ग ४. हरेः पालाः-ग ५. पेतुरेव-ग
६. ददौ दानं द्विजातिभ्यो' इति पाठः ग-मातृकायां ब्राह्मणेभ्यो महद्दानं, स्थाने प्राप्यते।

ब्राह्मणेभ्यो महाभागा रामस्याभ्युदयाय च।
सहस्त्रैकं सुवर्णस्य रामक्षेमाय कैकयी।।२२।।

एवं हि रक्षणे जाते रामः स्तन्यं पयौ मुदा।
चक्रे किलकिलाशब्दं मातुः प्रेम्णो पितुस्तथा।।२३।।

जनन्यो रामचन्द्रस्य दास्यो दासाश्च हर्षितः।
नटानां नर्त्तकीनां च समाजो बहुशोप्यभूत्।।२४।।

ददौ दानं च सर्वेभ्यो हर्षितो नृपसत्तमः।
रक्षास्तोत्रं च रामस्य मातृभिः पठितं तु यत्।।२५।।

अनेन रक्षामन्त्रेण बालान् रक्षन्तु पण्डिताः।
सूत उवाच-
रामस्य रक्षाव्याजेन बालानां रक्षणाय च।।२६।।

निबबन्ध च वाल्मीकि रामः जनन्युदाहृतम्।
बालकान् भयभीतांश्च रोगादिभिरूपद्रुतान्।।२७।।

डाकिनीभूतप्रेतैश्च कुदृष्ट्या च विलोकितान्।
बुधा रक्षत्वनेनैव रामरक्षाकरेण च।।२८।।

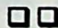
अल्पायुर्नभवेत्तस्य नाकालमरणं भवेत्।
हस्तौ पादौ च प्रक्षाल्य रामरक्षां पठेत्तु यः।।२९।।

दानस्याभयसंज्ञस्य स पुण्यं लभते ध्रुवम्।
सर्वान् कामानवाप्नोति चात्मार्थं पठेत्तु यः।।३०।।

इमं हि चरितं पुण्यं बालरामस्य[1] भाषितम्।
शृणुते श्रावयते वापि[2] स पुमान् लभते गतिम्।।३१।।

इमं हि चरितं पुण्यममेङ्गलनिवारणम्।
धान्यं यशस्यमायुष्यं शीघ्रं कलिमलापहम्।।३२।।

इति श्री सत्योपाख्याने सूतशौनकसंवादे चतुर्विंशोध्यायः।



---

१. बाला-ग

२. श्राववापि-क

पञ्चविंशतिः अध्यायः

श्रीशौनक उवाच-

षट्श्रीयुक्त महाबुद्धे लोमहर्षण बुद्धिमन्[१]।
रामस्य चरितं पुण्यं मां त्वं श्रावय तत्त्वतः।।१।।

रामेण शिशुरूपेण कथं दशरथाजिरे।
क्रीडा कृता पुनर्दिव्या भ्रातृभिस्सहितेन च।।२।।

कर्णपूरं सतां सत्यं[२] रामचरित्रमुत्तमम्।
तस्मात् कथय मह्यं त्वं कथने निपुणो ह्यसि।।३।।

श्रीसूत उवाच-

कथयामि महापुण्यां शिशुरामस्य सुन्दराम्।
कथामनुपमामिष्टां[३] वेदसारां सुगोपिताम्।।४।।

मार्कण्डेयो मुनिः पूर्वं चित्रकूटे गिरौ पुरा।
अपृच्छद् वाल्मीकिं च य त्वया पृच्छ्यतेऽधुना।।५।।

श्रीरामो बालरूपो च भ्रातृभिः सह सुन्दरः।
जानुभ्यां सह पाणिभ्यां प्राङ्गणे विचचार ह।।६।।

क्वचिच्च वेगतो याति क्वचिद्याति शनैः शनैः।
क्वचिच्च भरतो रिंगन् शीघ्रतो जानुपाणिभिः।।७।।

क्वचिच्च लक्ष्मणो याति शत्रुघ्नेन स्वबन्धुना।
बालाः क्रीडन्ति ते सर्वे मातृभिः रक्षिताः सदा।।८।।

एहि चैहि मदीयाङ्कं श्रीरामकरुणानिधे।
एवं पश्यन्ति भाग्येन मातरो निजबालकान्।।९।।

---

१. बुद्दिमान्-क

२. नित्यं-ग

३. कथाममृततोमिष्टां-ग

बालकास्तु यथान्यायं क्रीडन्ति बालकाः यथा।
तथा क्रीडन्ति रामाद्याः बुद्ध्या प्राकृतया गृहे।।१०।।

पादयोः नूपुरारावं श्रृणुवन्तिः शनैः शनैः[१]।
कुत्रापि जायते[२] शब्द इति संदिग्धमानसाः[३]।।११।

कदाचित् किंकिणीरावं कटौ श्रुत्वा पलायते।
स्थित्वा स्थित्वा पुनः स्थित्वा मातुरङ्कं पलायते।।१२।।

पुनरुत्तीर्य चैवाङ्कात्[४] रामः क्रीडति बालवत्।
तथा ते भ्रातरः सर्वे रामस्येच्छानुसारतः।।१३।।

क्रीडन्ति सततं[५] बालाः जनानां सुखकारकाः।
आदर्शे क्वचिदात्मानं पश्यन्तश्चात्मनोमुखम्।।१४।।

बालकं च द्वितीयं हि मत्वा स्पृशति पाणिना।
अलब्ध्वा तस्य चाङ्गानि रोदनं कुरुते पुनः।।१५।।

क्वचिच्च वदनं रम्यं स्तम्भेषु प्रतिबिम्बितम्।
शुभगै रत्नयुक्तेषु[६] चालकै[७]रावृतं मुखम्।।१६।।

द्वितीयं बालकं गत्वा हास्यं च कुरुते प्रभुः।
शत्रुघ्नो जानुपाणिभ्यां रिङ्गन् भूमौ निजं मुखम्।।१७।।

द्वितीयं बालकं मत्वा काञ्चनभूमौ[८] विलोक्य च[९]।
तस्याननेन संयुज्य चोच्चैः कूजति तत्र ह।।१८।।

मातुरङ्के[१०] समायाति प्रहसल्लक्ष्मणानुजः।
लक्ष्मणोऽपि निजं बिम्बं दृष्ट्वा हुंकुरुते मुहुः।।१९।।

---

१. श्रृण्वन्याति शनैः-ग
२. क्वचिच्च त्रायते-ग
३. सन्दिग्धमानसः-ग
४. चाङ्कात्तु-ग
५. शतशं-ग
६. रक्तयुक्तेषु-ग
७. बालकैः-ग
८. काचभूमौ-क
९. निजं मुखम्-ग
१०. मातुरङ्क-ग

भरतोऽपि निजं बिम्बं रत्नपृष्ठ्यां हि भाषितम्।
हास्यं च कुरुते मन्दं मन्दं मन्दं पुनः पुनः।।२०।।

जलपात्रे[1] च रामेण चन्द्रबिम्बं विलोकितम्[2]।
ग्रहणे तस्य हस्तं तु जले तु कुरुते प्रभुः।।२१।।

न याति च यदा हस्ते[3] मातरं याचते[4] तु तम्।
चषकं स्वल्पकं माता रौप्यस्य रत्नसंयुतम्।।२२।।

तीरे निधाय रामस्य परोक्षेण सकौतुका।
रामाय ब्रुवती क्षिप्रं गृह्यतां चन्द्रमण्डलम्।।२३।।

इमाश्च तारिकाः[5] पुत्र रत्नरूपाः न संशयः।
सर्वं गृहाण भो राम भ्रातृभिः क्रीडनं[6] कुरु।।२४।।

एवं[7] क्रीडन्ति बालाश्चावताराश्च हरेः खलुः।
पञ्जरस्थं शुकं दृष्ट्वा कुरुते तत्र तर्जनी।।२५।।

सारिका तत्र पठति कर्णं दत्त्वा शृणोति सः।
बाजपालाः करे बाजं रामचन्द्रस्य सन्मुखे।।२६।।

श्येनपालोपि रामाय श्येनं दर्शयते निजम्।
विलोक्य हसते रामस्तत्तत्पक्षिगणं मुहुः।।२७।।

कदाचित् पद्भ्यामुत्थाय पुनः पतति भूतले।
पुनरुत्थाय पादौ च क्षिपते च शनैः शनैः।।२८।।
एवं भरतशत्रुघ्नो लक्ष्मणोऽपि महामुने।।२९।

इति श्रीसत्योपाख्याने सूतशौनकसंवादे पञ्चविंशतिः अध्यायः॥२५॥



---

१. जलपात्रं-क
२. विलोक्य तम्-क
३. न याति यदा हस्ते च-ग
४. चरते-ग
५. तारकाः-ग
६. क्रीडने-क
७. 'एवं....तर्जनी (२५)' पर्यन्तं पाठः ग-मातृकायां नास्ति।

षड्विंशतिः अध्यायः

सूत उवाच-

काको नाम्ना भुशुण्डस्तु कदाचिदाजगाम ह।
स्वस्थानाच्च हरेर्भक्तो[1] रामदर्शनलालसः।।१।।

रामं शष्कुलिहस्तं च[2] खादन्तं च पुनः पुनः।
तं दृष्ट्वा बालकं काक इति संदिग्धमानसः।।२।।

कथमेष परं ब्रह्म[3] वेदेन परिगीयते।
यदा विश्वम्भरो रामः शक्तिं मे दर्शयिष्यति।।३।।

इति निश्चित्य मनसा रामहस्ताच्च शष्कुलीम्।
आकृष्य[4] नभसोड्डीनो रामो मे किं करिष्यति।।४।।

सर्वात्मा रामचन्द्रोऽपि तस्य विज्ञाय मानसम्।
जहसे चैकरूपेण तद्द्वितीयेन दुद्रुवे।।५।।

यत्र यत्र भुशुण्डोपि तत्र तत्र रघूद्वहः।
सप्तभूविवरान् काकः गतो रामान्वयाद्द्रुतम्[5]।।६।।

पृष्ठभागे निरीक्षन् सन्धावमानो रघूत्तमम्।
योजनानां सहस्राणि त्रिंशत् परिमितानि च।।७।।

अधोभागे च पातालाच्छेषनागश्च विद्यते।
तस्य चाङ्के हि क्रीडन्तं शिशुरूपं रघूत्तमम्।।८।।

तदा काको विलोक्याग्रे पृष्ठभागे पुनः शिशुम्।
अग्रे पश्चाद् गतिर्नास्ति मया किं क्रियतेऽधुना।।९।।

---

१. हर्रेभवतो-क
२. रामं च शब्कुलीहस्त-ग
३. परब्रह्म-ग
४. प्रकृष्य-ग
५. राममयाद्द्रुतम्-ग

बालाद्दक्षिणतः शीघ्रं पलायते[१] निजरक्षया।
विचार्येवं भुशुंडोपि चोड्डीनो सोपसव्यतः[२]।।१०।।

भूलोकं च पुनः प्राप तत्र माघवतीं[३] पुरीम्।
शक्रेण वीज्यमानं च निजसिंहासने पुरः।।११।।

पश्चादग्रे च रामं हि वीक्ष्य काकोऽतिविस्मितः।
उड्डीनो वामतस्तस्मादिन्द्रस्य[४] पुटभेदनात्[५]।।१२।।

नगरं वीतहोत्रस्य स जगामातिवेगतः।
ददृशे तत्र रामं च वह्निना परिसेवितम्।।१३।।

रामं निशम्य काकोऽपि शमनस्य गृहं गतः।
अन्तको रामचन्द्रस्य पुरतो भाति दण्डधृक्।।१४।।

एवं वीक्ष्य तदा काको जगाम निर्ऋतेः क्षयम्।
सेव्यमानं[६] तदा तेन निरीक्ष्य[७] रामबालकम्।।१५।।

तत्रापि न स्थितिं चक्रे पाशिनस्तु गृहं गतः।
छत्रहस्तेन तेनापि सेव्यमानं च बालकम्।।१६।।

तदाश्चर्यं विलोक्याशु जग्मे प्राभञ्जनं पुरम्।
रत्नदण्डप्रकीर्णेन सेव्यमानं तु तेन तम्।।१७।।

क्षपाकरस्य नगरं वायसः प्राप्य[८] वेगतः।
भजमानं तु चन्द्रेण रामं दृष्ट्वा पलायितः।।१८।।

शूलिनो नगरं गत्वा रामं दृष्ट्वातिवेगतः।
उत्पपात ततश्चोद्र्ध्वं स्वर्गलोकाय वायसः।।१९।।

तत्र चाग्रे हि गच्छन्तं बालकं ददृशे खगः।
सत्यलोकं मनश्चक्रे गन्तुं पक्षी विशेषतः।।२०।।

---

१. पलाये-ग
२. अपसव्यतः-ग
३. माधवतीं-ग
४. रामतः-ग
५. भेदनात्-ग
६. सेव्यमानो-क
७. निर्ऋतिना-ग
८. प्राप-ग

तत्र गत्वा शिशुं राममजस्य निजसद्मनि।
अजाद्यैश्चैव[1] मुनिभिः पादसंवाहनं कृतम्[2]।।२१।।

एवं निरीक्ष्य रामं तु न कुतश्चिद्गतिः खगः।
भूलोकं पुनरावृत्य[3] चात्मानं दृश्यते[4] खगः।।२२।।

रामं च पृष्ठसंलग्नं बालरूपं च सुन्दरम्।
मतिं चकार रामस्य भयो येनैव जायते।।२३।।

इति ज्ञात्वा निजं रूपं वर्द्धयामास वायसः।
स्वयं तु पर्वताकारो दीर्घतुण्डो भयानकः।।२४।।

पक्षौ चाति महादीर्घौ पर्वतस्यैव[5] छादकौ।
पादावपि महादीर्घो तालवृक्षोपमौ च सौ।।२५।।

तयोर्मध्ये नखा दीर्घा अङ्कुशा इव दन्तिनाम्।
तदा रामो महातेजास्तार्क्ष्यं सस्मार वाहनम्।।२६।।

स्मरणादेव[6] देवस्य सम्प्राप्तो विनतासुतः।
खगाधिपं समारूह्यं रामोधावत[7] वायसम्।।२७।।

खगेश्वरोऽपि पक्षेण रामाज्ञप्तो जघान तम्।
भुशुण्डिस्तु स्वपक्षाभ्यां तताड विनतासुतम्।।२८।।

गरुडेन[8] पुनः काकः पातितः पृथिवीतले।
पीडां प्राप्तस्तदा काको जगदाधारवाहनात्।।२९।।

वक्षस्थले तु काकस्य गरुत्मानारुरोह च।
तस्य चोपरि रामो वै विश्वाश्रयो हि पीडति[9]।।३०।।

---

१. अजादिभिश्च-ग
२. पादयोः परिशीलितम्-ग
३. पुनराविश्य
४. ददृशे-ग
५. 'पर्वतस्यैव.....दीर्घा' पर्यन्तं पाठः ग-मातृकायां नास्ति।
६. स्मरणाद्राम-ग
७. धावतु-ग
८. गरुडेनापि-ग
९. पीडितः-क

तमुवाचाथ रामो वै किंकर्तव्यं त्वया खगः।
सूत उवाच-
भुशुण्डोऽपि महाविष्णुं[1] स्तोतुं रामं प्रचक्रमे।।३१।।

गद्गदस्वरया वाचा रामे संयम्य[2] मानसम्।
श्रीभुशुंडरुवाच-
नमो रामाय महते बालरूपाय ते नमः।।३२।।

अजस्य जनयित्रे च शिवताताय ते नमः।
जाग्रतस्वप्नसुषुप्तिभ्यः सदाभिन्नाय[3] ते नमः।।३३।।

सर्वाध्यक्षाय रामाय क्षेत्रज्ञाय नमो नमः।
योगिध्येयाय योगाय योगलभ्याय ते नमः।।३४।।

नमः आद्याय बीजाय शुद्धाय पुरुषाय ते।
नमो विश्वम्भरायेति विश्वरूपाय ते नमः।।३५।।

केचिद् ध्यायन्ति त्वां राम जगद्रूपिणामीश्वरम्।
अपरे पञ्चविंशञ्च षड्विशंति[4]मुतापरे।।३६।।

ज्योतिरूपमरूपञ्च केचिद् ध्यायन्ति व्यापकम्।
अपरे परमेशं च नित्यलीलादिभिर्युतम्।।३७।।

अपरे तेऽवतारांश्च सदा ध्यायन्ति चेतसा।
केचिद् विरागिणो लोका गृहं त्यक्त्वा वनं गता।।३८।।

तत्र त्वामभिपश्यन्ति ध्यानरूपं हि सर्वथा।
ज्ञानिनश्चापि ज्ञानेन व्यापकं त्वां स्मरन्त्युत।।३९।।

भक्त्या भागवता[5] भक्त्यभिन्नभिन्नं हि चांडतः।
अपरे नियताहाराः स्वनाभिकमले च त्वाम्।।४०।।

लोकपालैर्युतं रामं वायुं जित्वा[6] रहः प्रभो।
ये यथा त्वां प्रपद्यन्ते तां स्तथैव भजस्यहो।।४१।।

---

१. भयाविष्ट-ग
२. संन्यस्य-ग
३. सदामित्राय-ग
४. षड्विंशश्य-ग
५. भगवता-ग
६. पूजितस्त्वं-ग

माया ते प्रबला रामः यया जातमिदं जगत्।
तया सम्मोहितो जीवो ममाहमिति मन्यते।।४२।।

तत्र ते तु निजस्थानं दिव्यं धाम इति श्रुतम्।
यत्र त्वं रमसे नित्यं दिव्यं धाम मनोहरम्[१]।।४३।।

अजायास्तु त्रयः पादाः ध्वंसभावेन वर्जिताः।
सङ्कोचश्च[२] विकासश्च क्वचितेषां न जायते।।४४।।

तस्माद्दिव्यविभूतिः सा गीयते यं महर्षिभिः[३]।
विष्वक्सेनादयो देवा नित्यास्ते पार्षदा विभो।।४५।।

न वै स्पृशन्ति संसारं तव चेच्छानुसारतः।
अजाया[४]श्चैकपादेन जायते च इदं जगत्।।४६।।

ये भजन्ति सदा त्वां च जगतेषां हि दूरगम्।
भो राम तव मन्त्रं च ये जपन्ति सदा क्षितौ।।४७।।

जीवन्मुक्तास्तु ते चान्ते लभते परमं पदम्।
ध्यानेनापि पदाम्भोजं हृदि धारोपयन्ति ये।।४८।।

ते तरन्ति महात्मानः संसारं दुःखसागरम्।
अहं तु[५] पादाभ्यां पीडितो हृदये हरे।।४९।।

कथं मुच्येत दुःखाच्च ते पदाक्रमतोऽपि[६] सन्।
दर्शनार्थं महिम्नस्ते शष्कुल्याः कर्षणं कृतम्।।५०।।

स्वशक्तिर्दर्शिता राम त्वया पूर्णेन[७] मे प्रभो।
मुच्यतां मुच्यतां राम दीनोऽहं करुणानिधे।।५१।।

अहोभाग्यं हि मे भूरि पादस्पर्शे हि ते किल।

श्री सूत उवाच-

इति विज्ञापितो रामः काकेन हतपाप्मना[८]।।५२।।

---

१. दिव्यधामनि हरे-ग

२. संकोचो न-ग

३. गीयते परमर्षिभिः-ग

४. अजया-ग

५. तु तव-ग

६. पदाक्रमितोऽपि-ग

७. पूर्वेण-क

८. हतपाश्मना-क

तदा राम प्रसन्नात्मा भुशुण्डं मुमुच प्रभुः।
भुशुण्डः पुनरुत्थाय जग्राह चरणौ हरेः।।५३।।

मस्तके तु करं तस्य रामो दधे दयानिधिः।
पुनः पुनस्तु चोत्थाय रामस्य चरणेऽपतत्।।५४।।

पुनः पपात तार्क्ष्यस्य पादयोः शिरसा खगः।
गरुडोऽपि दयायुक्तो भुशुण्डं वाक्यमब्रवीत्।।५५।।

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ भो काक[1] ह्यागमिष्यामि तेऽन्तिकम्।
रामतत्त्वविवित्सार्थं प्रष्टुं[2] त्वां च महाखगः।।५६।।

दिव्यज्ञानमयाः[3] सर्वे विष्वकसेनादयो खगः[4]।
हरे रामस्य कृपया मायास्पर्शो न विद्यते[5] ।।५७।।

[6]इति लोका वदिष्यन्ति काको ज्ञानी महामतिः।
अज्ञानं गरुडस्यैव कृतं येनैव दूरगमम्।।५८।।

यशस्तु तव भो काक लोकेषु प्रसरिष्यति।
गरुडेन भुशुण्डाद् विज्ञानं प्राप्तं सुदुर्लभम्।।५९।।

भुशुण्डोवाच-

यूयं तु हरिभक्ताश्च रामस्य चरणार्चकाः।
यद् भविष्यति मे भाग्यं[7] यदा त्वं ह्यागमिष्यसि।।६०।।

कृतार्थोऽहं कृतार्थोऽहं पादस्पर्शात्तु काश्यप[8]।
अस्मिन् क्षणे मया[9] देव ज्ञानं प्राप्तं च सुन्दरम्।।६१।।

---

१. 'काकपदात्-ह्यागमिष्यामि' मध्ये एवं विद्यते ग-मातृकायाम्- 'रामस्य चरणार्चक। त्वया संप्रणितो राम अहं चापि विशेषतः।। यशसे तव भो काक..'

२. पृष्ठं-क

३. द्विव्यज्ञाना वयं-ग

४. द्विजः-ग

५. स्पर्शो न विद्यते नृणाम्-क

६. अस्मात् वाक्यात् पूर्वं ग-मातृकायामेवं विद्यते- 'अज्ञानीव ह्यहं काक विपृच्छेहं कदापि त्वां। रामतत्त्वं महाबुद्धे जयत्सु-यशस्ये तव'।।-ग

७. वाक्यं-ग

८. काश्यपे- क

९. देव-ग

रामस्य चरणाम्भोजस्पर्शात्तव महामते।
सूत उवाच-
विज्ञाप्यैवं स काकस्तु रामं वचनमब्रवीत्-।६२।।
भुशुण्ड उवाच-
भो श्रीराम महाभाग भक्तिं मे देहि निश्चलाम्।
अनेन बालरूपेण सदा मे हृदये वस।।६३।।
माया ते प्रबला राम यथा मोहवशोऽभवम्।
यथा न मोहयेद्देव तथा मां त्वं विधेहि भो।।६४।।
सदा च तव भक्तानां सङ्गमो मे भवेद्यथा।
तथा कुरुष्व[1] देवेश नाथस्त्वं मे यतः प्रभो।।६५।।
यत्सुखं साधुसङ्गेषु तन्नस्वर्गे न मानुषे।
सत्ये पुनर्भवे नैव तस्मात् सङ्गश्च प्रार्थ्यते।।६६।।
सूत उवाच-
काकेन प्रार्थितो रामस्तमूचे मन्दया गिरा।
भक्तस्य मोहितो भक्त्या तथा दीनं विलोक्य च।।६७।।
श्रीरामचन्द्रोवाच-
यथा वदसि भो काक तत्तथैव भविष्यति।
उपदेक्ष्यसि त्वं ज्ञानं गरुडाय महात्मने।।६८।।
मायया तव बन्धो न भविष्यति कदाचन[2]।
आश्रमे तव माया तु[3] प्रभावं न करिष्यति।।६९।।
हृदये मम रूपं च निवसिष्यति ते सदा।
भक्तानां मम सङ्गस्तु भविष्यति न संशयः।।७०।।
कृतं स्तोत्रं पठिष्यन्ति मानवास्ते विचक्षणाः।
तेषां वै सकलान् कामान् प्रददामि न संशयः।।७१।।
धनकामो पठेद्यस्तु षण्मासं कृतनिश्चयः।
विधिना ब्रह्मचर्येण लभते धनमेव हि।।७२।।

---

१. कुरुध्व-ग
२. कथंचन-ग
३. मे-ग

पुत्रार्थीः पठते[1] यस्तु वर्षमेकमनन्यधीः।
अवश्यं लभते पुत्रमन्यच्चापि महामते।।७३।।

सूत उवाच-

वरं दत्वा तदा रामस्तत्रैवन्तर्द्दधे[2] स्वयम्।
विसर्जितस्तु रामेण पक्षिराडपि निर्ययौ।।७४।।

भुशुण्डोऽपि निजं स्थानं प्रापद्यत प्रहर्षितः।
ध्यायमानः सदा रामं बालरूपिणमीश्वरम्।।७५।।

भुशुण्डश्च शिवश्चापि रामदर्शनलालसौ।
पश्यतस्तु सदा रामं ब्रह्मवेषधरौ च तौ।।७६।।

बालक्रीडा मया तुभ्यं वर्णिता मुनिसत्तमः।
अन्यामपि प्रवक्ष्यामि बालक्रीडां मनोहराम्।।७७।।

इति श्रीसत्योपाख्याने सूतशौनकसंवादे षड्विंशोध्यायः।



१. पुत्रार्थं हि पठेद्-ग
२. स्तत्रैवान्तर्दधे स्वयं-ग

सप्तविशंतिः अध्यायः

श्रीसूत उवाच-

कदाचिद् रामचन्द्रस्तु[1] बालरूपी तु कौतुकी।
चकार विविधां क्रीडां मातॄणां मोहनाय च।।१।

जानुभ्यां सह पाणिभ्यां रिंगमानो यतस्ततः।
मातरः स्पृष्टसंलग्नाः प्रस्त्रवन्त्यो स्तनात् पयः।।२।

धावमानस्तु प्रेम्णा बालरक्षार्थहेतवे।
ताम्बूलभक्षणं त्यक्त्वा तथा शय्यां हिरण्मयीम्।।३।

बालक्रीडाचमत्कारं कुर्वन्त्योपि[2] यतस्ततः।
लेभिरे परमानन्दं पूर्वैः सुकृतकोटिभिः।।४।

चेटिकास्तु सदा बालान् मातृभिः सहिता मुहुः।
ररक्षुः शस्त्रजातिभ्यः पतनाच्चैव वेगतः।।५।

रामचन्द्रं तु कौशल्या चालनं शिक्षते मुहुः।
रामस्य दक्षिणं बाहुं पाणिना गृह्य भामिनी।।६।

मातृपाणिं समालम्ब्य मन्दं मन्दं च चालसः।
कारयन्नूपुरारावं किङ्किणीनां पदे पदे।।७।

एवं भरतशत्रुघ्नलक्ष्मणादींश्च भ्रातरः।
लालयन्ति स्म प्रेम्णा वै कौशल्याद्यास्तु मातरः।।८।

कौशल्यापि महाराज्ञी रामञ्चाङ्के निवेश्य च।
मुखं संवीक्ष्य रामस्य मुदमाप परं सती।।९।

दन्तपङ्क्तिं मुखे वीक्ष्य कुन्दमुक्तासमप्रभाम्।
बन्धूकसदृशीं जिह्वामोष्ठं सिन्दूरसन्निभम्।।१०।

---

१. रामचन्द्रोऽपि-ग

२. पश्यन्तोपि-ग

कपोलौ च महादिव्यौ चन्द्रनीलसमप्रभौ।
चिबुकं बालकस्याथ नासिकां शुकनासिकाम्।।११।

तिलकं मृगनाभस्य वीक्ष्य माले मुदान्विता।
चापं पञ्चशरस्येव तादृशं भृकुटीद्वयम्।।१२।।

आवृतमलकैरास्यं ग्रथितैर्मणिमौक्तिकैः।
रामस्य तुण्डं जननी निरीक्ष्या-
चुचुम्ब प्रेम्णा किल चाक्षियुग्मम्।
पुनः पुनः सा वदनं विलोक्य,
कण्ठे स्वकीये मिलति स्म बालम्।।१३।।

श्रीरामचन्द्रस्य निरीक्ष्य शोभां
तथा तृणं त्रोटयति स्म माता।
मा दृष्टिदोषो मम बालकेऽभू
देवं विचारं मनसा चकार।।१४।।

कौशल्याभवने राजा स्थितस्तु[१] किल चैकदा।
रामं स्वाङ्के निधायाथ लालयामास प्रेमतः।।१५।।

भरताम्बा तु तत्राथ भरतेनाजगाम ह।
सुमित्रा तत्र पुत्राभ्यां प्राविशद् गजगामिनी।।१६।।

अन्याश्च तत्र शतशो राजदाराः समाजगुः।
अन्याश्च ज्ञातयः सर्वा दासादास्यो अनेकशः।।१७।।

नरेश्वरो महाभागः कौशल्याभवने शुभे।
क्रीडयामास बालान् वै परब्रह्मस्वरूपिणः।।१८।।

रामं कदाचिदुत्थाय भरतं लक्ष्मणं क्वचित्।
शत्रुघ्नं च तथा राजा लालयामास क्रोडके।।१९।।

तस्मिन् काले तु गन्धर्वो विश्वावसुरिति श्रुतः[२]।
आजगाम निजस्त्रीभिरन्तः पुरं च भूपतेः।।२०।।

भूपेनाकारितस्तत्र नान्यथागमनं गृहे।
राजानं वर्द्धयित्वा तु तथा राज्ञी अनेकशः।।२१।।

---

१. मास्थितः-ग

२. श्रुतिः-क

राज्ञा सभाजितः सोऽथः तेनाज्ञप्तस्थितो हि सः।

विश्वावसुरुवाच-

शृणुष्व राजशार्दूल वाक्यं नो गुणगौरवात्।।२२।।

विश्वरावधनं[1] यस्य तस्माद्विश्वावसुस्त्वहम्।
अहं गुणैः स्वकीयैस्तु ससुतं तोषये च त्वाम्।।२३।।

इत्युक्त्वा वादयामास मृदङ्गान् मुरजादिकान्।
कंस्यादिकाश्च सुषिरान् वीणाद्यादींश्च तान्त्रिकान्[2]।।२४।।

तालादिकाङ्गणश्चैव[3] तथा वाद्याननेकेशः।
स्वयं तु वादयामास सुस्वरां परिवादिनीम्[4]।।२५।।

अप्सरस्तु[5] ननृतुः सङ्गे तस्य समागताः।
नाटकाः तत्र गायन्ति रघ्वादीनां च भूभुजाम्।।२६।।

मोहितास्तु तदा सर्वे तासां गानेन ते जनाः।
राजा दशरथो राज्ञी दासाः दास्यश्च बालकाः।।२७।।

अन्याश्च ज्ञातयः सर्वाः पक्षिणः पशवस्तथा।
जङ्गमाजङ्गमाः जाताः[6] जङ्गमोजङ्गमस्तदा[7]।।२८।।

कर्णपात्रैः स्त्रियः पीत्वा तेषां गीतामृतं तु ता।
नाशकं स्मरवेगेन चात्मानं प्रतिगृहणीतुं।।२९।।

बालारामादयोप्येवं[8] मोहिताः तस्य गानतः[9]।
मातुरङ्कात् समुत्थाय गन्धर्वाङ्के समारुहत्।।३०।।

गानं त्यक्त्वा तु गन्धर्वो विश्वावसुर्महातपाः।
लालयामास बालांश्च भाग्यं मत्वाधिकं स्वकम्।।३१।।

---

१. विश्वारावधनं--क
२. वीणदिकाश्च-ग
३. तालादिकान् धनाश्चैव-ग
४. सुस्वरं परिवादनम्-ग
५. अप्सरास्तत्र-ग
६. याता-ग
७. जंगमाजंगमा-स्तरा-ग
८. प्येतं-ग
९. भागं-क

नृपादयस्तु ते सर्वे बालान् वीक्ष्य मुदं ययुः।
ऊचुः परस्परं लोकाः गीतमाहात्म्यमीदृशम्।।३२।।

बालानामपि मोहोऽभूदन्येषामपि का कथा।
मातरस्तु तथा सर्वाः हस्तान् प्रासार्य चाब्रुवन्।।३३।।

अत्रागच्छन्तु हे पुत्राः गन्धर्वाङ्काच्च वेगतः।
स्तन्यं धवन्तु[1] भो बालाः विश्वावसुस्तु गच्छतु।।३४।।

एवमाकारिताश्चापि न चाजग्मुश्च मातरम्।
पुनः पुनस्तु[2] तस्यैव चाङ्के लीनास्तु चार्भकाः।।३५।।

तदा तु मातरश्चापि विस्मयं जग्मुरुत्सुकाः।
राजादशरथस्यापि नराः सर्वे तु भूरिशः।।३६।।

सूत उवाच-

कौशल्या रामजननी[3] सुमित्रा लक्ष्मणप्रसूः।
गन्धर्वमूचतुः प्रेम्णा बालकानां सुखाय च।।३७।।

श्रीकौशल्या सुमित्रा चोंचतुः-

अत्रैव तिष्ठ गन्धर्व बालकानां सुखाय च[4]।
मानितः प्रीतियुक्तैश्च ह्यस्माभिर्नृपवेश्मनि।।३८।।

विश्वावसुरुवाच-

देवराजस्य चाग्रे वै गानकर्मसुयोजिताः[5]।
आज्ञां विना न तस्यैव तव गेहे वसेमहि।।३९।।

तमामन्त्र्य पुनर्देवी ह्यागमिष्यामहे ध्रुवम्।

श्रीराजादशरथोवाच-

इदानीं गम्यतां देवं तं गत्वा पुनराव्रज।।४०।।

बालकानां सुखार्थं नः शक्रस्त्वां न निषिध्यति[6]।
कैकेयी च तदा श्रुत्वा गन्धर्वगमनं दिवि।।४२।।

चुकोप च सदो[7] मध्ये विश्वावसुं जगाद च।
बालकान् मोहयित्वा नः कुत्र यास्यसि कैतव।।४२।।

---

१. घघन्तु-ग २. श्च-ग

३. जननी तस्य-ग ४. उवाच-क

५. गाने वयं सुयोजिताः-ग ६. निषिध्यति-ग

७. सा-ग

इन्द्रोऽस्माकं गृहे गातुं[१] त्वां निषिध्यति[२] नो कदा।
कदाचिच्च मदाविष्टः निषेधं कुरुते तव।।४३।।

तदा राज्ञो हि बाणौघैः पीडितोधः पतिष्यति।
वाक्यमुक्त्वा तु सा बाला जगदे नृपतिं प्रति।।४४।।

धनुर्बाणं समानीय प्रक्षिप्य नृपतेः पुरः।

श्रीकैकेयी उवाच-

बाणे पत्रं[३] समावेष्ट्य चेन्द्रलोकं च प्रेषय।।४५।।

गन्धर्वश्च[४] यथा तिष्ठेत्तथा कुर्याच्च वृत्रहा।
वाक्यं राज्ञः समाश्रुत्य चक्रे च रघूत्तमः[५]।।४६।।

इषौ पत्रं समाबध्य उपस्पृश्य जलं शुचिः।
चापे बाणं समाधत पठित्वा मंत्रमुत्तमम्।।४७।।

मुमोच बाणं सहसा स्वर्गलोकाय भूमिपः।
प्रभावाद् वशिष्ठमन्त्रस्य क्षणात् स्वर्गं जगाम सः।।४८।।

शक्रस्य च पपाताग्रे[६] सुराणां पश्यतां सताम्।
बाणाक्षरं विलोक्याशु विज्ञाय नृपतेरिषुम्।।४९।।

वाचयामास पत्रं तु बाणादुधृत्य वेगतः।
अत्रत्यं किल वृत्तान्तं गन्धर्वार्थे[७] तु देवराट्।।५०।।

ज्ञात्वा निवेदयामास कैकेय्याः कोपकारणम्।
देवेभ्योपजहासाशु[८] वाक्यमूचे त्विदं सुधीः।।५१।।

कदा मया निषेधस्तु गन्धर्वस्य कृतः सुराः।
वयं तु[९] तस्य चाज्ञायां सदा वर्तामहे विभो।।५२।।

---

१. गन्तुं-ग
२. निषिध्यति-ग
३. पात्रं-क
४. गन्धर्वोऽत्र-ग
५. तद्वसः-क
६. चापपाताग्रे-ग
७. गन्धर्वार्थं-ग
८. देवेभ्यो विजहासाशुः-ग
९. च

राज्ञो हि भुजवीर्येण दैत्येभ्यो नो भयं न हि।
तस्य चाज्ञां कथं हन्मः प्राणेभ्योऽपि गरीयसीम्।।५३।।

परन्तु कैकेयी रुष्टा[1] प्रीतिं नो जानती[2] तु सा।
अपराधं विना राज्ञी परुषं मां ब्रवीद्वचः।।५४।।

परुषस्य फलं दास्यो रामराज्ये न संशयः।
यदा रामस्य राज्यं तु प्रारभिष्यति भूपतिः।।५५।।

वधार्थं रावणस्याहो राज्यभङ्गमहोत्सवे।
राज्यभङ्गं करिष्यामि रामस्य परमात्मनः।।५६।।

तस्मिन्नवसरे वाणीं कैकेय्या कण्ठकूपके।
अवस्थाप्य तथा वाण्या ह्यंजसा योजयामि ताम्।।५७।।

कथयित्वा तु सर्वेभ्यः देवेभ्यः[3] पाकशासनः।
दूतं वै प्रेषयामास ह्ययोध्यां राजसंन्निधौ।।५८।।

दूतो राजानमभ्येत्य संदेशं नमुचिद्विषः।
नृपाय कथयामास सगन्धर्वार्थं महामतिः।।५९।।

देवदूत[4] उवाच-

श्रूयतां राजशार्दूल वाक्यं नो वशवर्तिनाम्।
इन्द्रवाक्यं ब्रवीमि त्वां येन प्रीतिर्भवेत्तव।।६०।।

श्रीइन्द्र उवाच-

वयं देवाश्च गन्धर्वाः तथा ह्यप्सरसो मुदा।
तव चाज्ञां प्रतीक्षामो दिवरात्रौ नराधिप।।६१।।

सर्वं त्वदीयं[5] गन्धर्वाः आज्ञां कस्य प्रतीक्षकाः।
मंजुघोषादयः सर्वा वसन्तु तव वेश्मनि।।६२।।

---

१. ह्यष्ट-ग
२. जननी-ग
३. स्वकृत्य-क
४. दूत-ग
५. सर्वे त्वदीयाः-ग

यदि चाज्ञा भवेत् राजन् द्वारपालाः भवेमहि।
सूत उवाच-
वदन्तमेव दूतं तु मघोनो वाक्यमुत्तमम्।।६३।।

राजा दशरथः प्रेम्णा दूतमाह हसन्निव।
श्रीराजादशरथ उवाच-
भो दूत वदतां श्रेष्ठ वचसा तोषितोह्यहम्।।६४।।

इन्द्राय प्रणतिं ब्रूहि गच्छतो हि ममाज्ञया।
एते बालास्त्वदीयाश्च पोष्या रक्ष्यास्त्वया च वै।।६५।।

आवयोर्वस्तुमात्रेण[१] नहि भेदस्तु चावयोः।
ये वरास्तु वरास्तेषां बुद्धिनास्त्यत्र संशयः।।६६।।

इत्युक्तो राजराज्ञा वै गतो दूतस्तथावदत्।
इन्द्रोऽपि मुमुदे विप्र ह्यत्रत्या ब्रूयतां[२] कथा।।६७।।

इति ज्ञात्वा तु गन्धर्वो विश्वावसुरुदारधीः।
रामं समर्पयद्राज्ञै[३]र्स्वकीयां काच्च हर्षितः।।६८।।
पुनर्गातुं समारेभे[४] बालकानां सुखाय च।।६९।।

गायन्ति नृत्यन्ति वदन्ति केचिन्नन्दन्ति चान्ये पुरतोऽर्भकाणाम्।
गन्धर्वराजेन[५] गुणैः स्वकीयैः संमोहितास्तत्र जनाश्च सर्वे।।७०।।

एवं सदा दाशरथिं च रामं गन्धर्वराजो युवतीभिरित्थम्।
गानैश्च नृत्यैः परितोष्य बालान् लेभे मुदं भूपितना स नित्यम्।।७१।।

इति श्रीसत्योपाख्याने सूतशौनकसंवादे सप्तविंशतमोऽध्यायः।



---

१. वस्तुपाते तु
२. श्रूयतां-ग
३. समर्पयाद्राज्ञयो-क
४. पुनर्न गन्तुः मारेभे-क
५. गन्धर्वराज्येन-ग

अष्टाविंशतमोऽध्यायः

श्रीसूत उवाच-

एकदा च महाराज्ञी कौशल्या रामसंयुता।
अट्टं समारुहच्छीघ्रं दासीभिः परिवारिता।।१।।

तत्रारुह्य निजाङ्के च रामं कृत्वा तु भामिनी।
संस्थिता मुमुदेतीव[1] रामे संन्यरतमानसा।।२।।

निधिलाभाद्दरिद्रस्य तस्य प्रेम तु तत्र वै।
तथैव राममातुर्वै रामे स्नेहस्त्ववर्द्धत[2]।।३।।

एतस्मिन्नन्तरे राजा सुमित्राभवनेऽविशत्।
तत्र पुत्रौ समालोक्य मुदमाप सुखं वशी।।४।।

सुमित्रा च महाराज्ञी[3] राजानां प्रत्यपूजयत्।
पुष्पाञ्जल्या महाप्रेम्णा ताम्बूलादिसमर्पणैः।।५।।

राजा दक्षिणजानौ तु[4] लक्ष्मणं समरोहयत्।
तथा वामे तु शत्रुघ्नं तयोर्मुखं व्यलोकयत्।।६।।

कौशल्या चेटिका काचिन्नाम्ना ख्याता च सुन्दरी।।
केनचित् कारणेनापि सुमित्राभवनं गता।।७।

तत्र राजानमासीनं लालयानं[5] सुतौ निजौ।
सार्द्धं सुमित्रया तं तु हसन्तं वीक्ष्य लज्जिता।।८।।

---

१. स्थित्वा मुमुदिरेऽतीव-ग
२. स्नेहश्च ववृधे-ग
३. सुमित्रा राजराज्ञी तु-ग
४. च-ग
५. लालयानौ-ग

परावृत्य सुमित्रायाः भवनाद्रामसन्निधौ।
आगत्य ददृशे तौ तु लक्ष्मणं शत्रुसूदनम्।।९।।

सन्देहं परमं प्राप यत्र[1] तत्र च बालकौ।
वीक्ष्य बाला पुनस्तत्र जगाम किल व्रीडिता।।१०।।

राजाङ्के बालकौ[2] वीक्ष्य कौशल्यां पुनराप सा।
पुनः सा ददृशे तत्र कौशल्यानिकटे तु तौ[3]।।११।।

पुनस्तत्र पुनस्तत्र भ्रममाणा पुनः पुनः।
एवं विंशतिवारांश्च ददृशे विस्मिता तु तौ[4]।।१२।।

आगच्छन्ती तु गच्छन्ती ददर्श नृपतिः स्वयम्।
शीघ्रमायासि यासि त्वमितस्तत्र भ्रमस्यहो[5]।।१३।।

मोहितां च भ्रमचित्तां त्वां विजानामि सुन्दरी।
राज्ञा पृष्टा तु सा बाला लज्जया व्रीडिताभवत्।।१४।।

पुनः पुनश्च राज्ञा वै सा पृष्टा तु ब्रवीद्वचः।
गुरुत्वाद्राजराजस्य वाक्यभङ्गभयात् पुनः।।१५।।

सुन्दर्युवाच-

भयाच्च तव राजेन्द्र कथितुं लज्जितास्मि वै।
अभयं दीयतां राजन् तदा वच्मि तवाग्रहः।।१६।।

सूत उवाच-

आज्ञाप्ता राजराजेन प्राह वाक्यं च सुन्दरी।
राजानं च सुमित्रां च बालकौ वीक्षती मुहुः।।१७।।

श्रीसुन्दर्य्युवाच-

इमौ[6] च बालकौ राजन् शत्रुसूदनलक्ष्मणौ।
कौशल्याङ्के मया दृष्टौ[7] रामस्य निकटे स्थितौ।।१८।।

---

१. तत्र-ग
२. बाल्यकौ-ग
३. सुतौ-ग
४. सुतौ-ग
५. भ्रमस्य च-ग
६. एवं-ग
७. दृष्टौ-ग

अत्र चैव तवाङ्के[1] वै वर्तते सुमनोहरौ।
यत्र गच्छामि तत्रैव पश्यामि तव बालकौ[2]।।१९।।

सन्देहं परमं प्राप्ता पुत्रौ वीक्ष्य तवाधुना।
वाक्यं निशम्य सुन्दर्याः राजराजो महामतिः।।२०।।

निशम्य वाक्यं सुन्दर्या अलभद्विस्मयं परम्।
ययौ शीघ्रं तया सार्द्धं कौशल्याभवनं नृपः।।२१।।

किमेषा जल्पसे[3] नूनं मम विस्मायानं वचः।
तत्र गत्वा नरेशोऽपि चात्मानो ददृशे सुतौ।।२२।।

क्रीडन्तौ[4] रामचन्द्रेण सुमित्रातनयौ तु तौ[5]।
तस्मिन्नट्टे स्थितिं[6] चक्रे कौशल्या यत्र तिष्ठति।।२३।।

गवाक्षे च मुखं कृत्वा सुमित्राभवनं नृपः।
विलोकयामास सुतौ क्रीडन्तौ जननीयुतौ।।२४।।

भवने राममातुश्च सुमित्राभवने पुनः।
आश्चर्यं परमं लेभे तथान्तःकरणेन च।।२५।।

विचारमकरोद् भूपः चेतसा स पुनः पुनः।
यदा तु निर्णयं कर्त्तुं न शशाक महीपतिः।।२६।।

आकारयद् गुरुं राजा वशिष्ठं तपतां वरम्।
आगतश्च[7] वशिष्ठस्तु राज्ञा सम्पूजितोऽविशत्।।२७।।

पप्रच्छ च गुरुं राजा प्रहसन् तपसां निधिम्।
कारणं बालकानां च यत्र[8] तत्र विलोकनात्।।२८।।

---

१. तत्रैव तव चाङ्के-ग
२. तत्र गच्छामि तत्रैव चात्र ह्यामिह्य तत्र वै-ग
३. जल्पती-ग
४. क्रीडन्ते-ग
५. सुतौ-ग
६. स्थितं-ग
७. आगतो हि-ग
८. तत्र-ग

सूत उवाच-

क्षणं ध्यात्वा वशिष्ठस्तु बालानां चरितं धिया।
स्वस्वेच्छया च क्रीडन्ति बाला एते च ईश्वराः।।२९।।

एकधा दशधा चैव सहस्रं कोटिधा तथा।
असंख्यानि च[1] रूपाणि ह्येतेषां[2] न च[3] संशयः।।३०।।

नृपाय नहि वक्तव्यं शिशूनां चरितं मया।
विज्ञाते वैभवे[4] नूनं तदा नैतादृशं[5] सुखम्।।३१।।

चित्ते ह्येव[6] विचार्यैव[7] प्रोवाच नृपतिं मुनिः।

श्रीवशिष्ठ उवाच-

श्रूयतां वचनं मेऽद्य गन्धर्वेन कृतं त्विदम्।।३२।।

विस्मयं ते यथा राजन् गान्धर्वं कर्म चेदृशम्।
बालकौ च सुमित्रायाः भवने तिष्ठतः सदा।।३३।।

परन्तु तव मोहार्थं गन्धर्वनात्र दर्शितौ।
आकारय स्वगन्धर्वं[8] परिपृच्छामहे च तम्।।३४।।

आज्ञप्तो मुनिना राजा गन्धर्वं समुपाह्वयत्।
स्कन्धयोर्बालकौ तस्य चागतस्य[9] व्यलोकयत्[10]।।३५।।

तदा तु जहसे राजा बालकौ वीक्ष्य सर्वतः।
गन्धर्वोऽपि न जानाति रामस्य चरितं त्विदम्।।३६।।

इत्येवं वदतस्तस्य मुने राज्ञश्च सन्निधौ।
नृपस्य निकटे बालावन्तर्धानं गतौ ततः[11]।।३७।।

---

१. असंख्यातानि-ग
२. एतेषां-ग
३. हि-ग
४. भवेन-ग
५. वै तादृश-ग
६. ह्येवं-क
७. विचार्य्यैवं-ग
८. आकारयतु गन्धर्वं-ग
९. चागमस्य-ग
१०. विलोकथत्-क
११. तदा-ग

सुमित्राभवने तौ च यथार्थं तिष्ठतः पुनः।
वशिष्ठेन पुनः प्रोक्तं दृष्टा माया त्वया नृपः॥३८॥

यथा ब्रवीमि राजेन्द्र तत् कुरुष्व नरोत्तमः[१]।
रामस्तु लक्ष्मणेनापि सदा क्रीडन्तु मन्दिरे॥३९॥

भरतो रिपुहन्ता च पायसांशानुसारतः।
न कदाचिद् भ्रमस्त्वेवं तव राजन् भविष्यति॥४०॥

सूत उवाच-

मुनेर्वचनमाकर्ण्य तथास्त्विति नृपोऽब्रवीत्।
इदमादिश्य[२] राजानं जगाम मुनिपुङ्गवः॥४१॥

गते मुनौ तदा राजा सुमित्रां निकटे स्वके[३]।
आहूयामास सा तूर्णं कौशल्या यत्र तिष्ठति॥४२॥

बध्वाञ्जलिमुवाचाथ राजानं सा तु भामिनी।

श्रीसुमित्रोवाच-

आगतास्मि[४] महाराज समाज्ञप्तुं त्वमर्हसि॥४३॥

पतिर्नारायणः साक्षात् तवाज्ञा मम मूर्द्धनि।

श्रीराजोवाच-

कौशल्याप्राङ्गणे रामो लक्ष्मणेन सह[५] स क्रीडतु॥४४॥

तथैव शत्रुहन्ता च भरतस्तेन[६] क्रीडतु।
यथा न जायते मोहः गन्धर्वेण कृतो मम॥४५॥

श्रीसुमित्रोवाच-

एवं भवतु भूपाल बालकौ मे तवानुगौ[७]।
उक्ता चैवं सुमित्रा तु प्रविवेश स्वकं गृहम्॥४६॥

---

१. तथा कुरु नरोत्तम-ग
२. इदमुद्दिश्य-ग
३. पुनः-ग
४. आगतोऽस्मि-ग
५. स-क
६. भरतः सह-क
७. ममतयोर्गुणैः-क

नित्यं नित्यं च[1] चोत्थाय प्रातः कले तु मागधी।
लक्ष्मणं रामसानिध्यं शत्रुघ्नं भरतस्य तु।।४७।।

प्रेषयन्ती महाभागा सुमित्रा पतिदेवता।
रामस्तु लक्ष्मणेनापि भरतो शत्रुघातिना।।४८।।

विचिक्रीडे[2] मुदायुक्तौ जगदानन्दकारकौ।
एवं युग्मं च तेषां च बालकानां बभूव ह।।४९।।

इतः ,परं च रामस्य बालचरित्रमद्भुतम्।
वर्णयाामि महापुण्यं श्रोतृणामघमोचनम्।।५०।।

इति श्रीसत्योपाख्याने सूतशौनकसंवादे अष्टाविंशतमोऽध्यायः।



१. नित्यं नित्यं तु-क

२. चिक्रीडतु-ग

एकोनत्रिंशतमोऽध्यायः

श्रीसूत उवाच-

राजा दशरथो ब्रह्मन् मन्दिरात्[1] द्वारनिर्ययौ।
रामं चाङ्के निधायाथ श्यामसुन्दरविग्रहम्।।१।।

पादयो पादकटकं दधानं मणिनूपुरम्।
स्वर्णसूत्रेण ग्रथितां मध्यमे[2] क्षुद्रघण्टिका।।२।।

करयोर्वलयं दिव्यं रत्नराजिविराजितम्।
अङ्गदे च भुजामध्ये रक्तरत्नविनिर्मिते।।३।।

कण्ठे च कण्ठिकां रम्यां नीलरत्नेन शीलिताम्।
तथा द्वीपिनखं वक्रं काञ्चनेन परिष्कृतम्।।४।।

गजमुक्तां च नासायां कर्णयोः कुण्डले शुभे।
अलकैरावृतं वक्त्रं बिन्दुना चाञ्जनस्य च।।५।।

ईदृशं बालकं चाङ्के कृत्वा राजा च तस्थिवान्।
चामरैर्वीज्यमानैश्च जनैः कतिपयैर्वृतः।।६।।

रत्नकला[3] वधू काचित् कस्यचिद्रघुवंशिनः।
अट्टे स्थिता स्वकीये च राजाङ्के ददृशे सुतम्।।७।।

दृष्ट्वा दृष्ट्वा पुनर्दृष्ट्वा मोहिता सा बभूव ह।
विसस्मार तदा बाला देहं गेहं च सुन्दरी।।८।।

पतिता सा पृथिव्यां तु सखीभिः परिवारिता।
मुहुः हिक्कां चकाराशु निमग्ना रूपसागरे।।९।।

व्यजनैर्वीज्यमानापि तथा लेभे न चेतनाम्[4]।
यथा कथञ्चित सा बाला चोत्थिता व्रीडिताभवत्।।१०।।

---

१. मन्दिर-ग   २. रत्नालका-ग
३. रत्नालका-ग   ४. चेतसा-क

सखीभ्यो वर्णनं चैव चक्रे रामस्य मौनतः[1]।
पर्यङ्के शयनं[2] चक्रे त्यक्त्वा चान्नं जलं[3] तथा।।११।।

ध्यायती हृदये चैवं रामोऽङ्के कथमाविशेत्।
यदा रामो ममाङ्के[4] तु स्वयमागत्य क्रीडति।।१२।।

अन्नं भुञ्जे[5] तदा नूनं कीलालं च तथैव हि।
हृदये ध्यायती ह्येवं रामार्थं वरवर्णिनी।।१३।।

पर्यङ्के पतिता ह्येवं जनैर्ज्ञाता सुदुःखिता।
तस्या पतिस्तु नाम्ना वै वीरसिंहो रघूत्तमः[6]।।१४।।

चिकित्सां कारयामास भार्यायाः परमौषधैः।
दुःखितानां च तस्यां वै राजा दशरथः सुतम्।।१५।।

प्रासादे च पुनर्गत्वा कौशल्यायै समर्पयत्।
कैकेय्याः भवनं रम्यं स जगाम नरोत्तमः।।१६।।

दुःखं रत्नकलायास्तु कौशल्या सुश्रुवे तदा।
गोत्रस्य गौरवाच्चैव तथा सम्बन्धमात्मनः।।१७।।

दुःखितां दर्शितुं राज्ञी रामेण सह निर्ययौ।
हर्म्ये सुनिकटे[7] तस्याः पद्यामेव विनिर्गताः।।१८।।

ऐश्वर्यं च परित्यज्य वीरसिंहस्य गौरवात्।
राज्ञो बहुमतत्वाच्च भवनं प्राप तस्य वै।।१९।।

सखीगणेन विंशत्या युक्तां राज्ञीं ददर्श सः।

श्रीवीरसिंहोवाच–

आगम्यतां महाराज्ञी किंकराणां गृहं त्विदम्।।२०।।

---

१. मूकवत्–ग
२. शयने–क
३. चान्नजलं–ग
४. ममाङ्कं–ग
५. भुक्ष्वे–ग
६. रघूद्वहः–ग
७. हर्म्यस्य निकटे–ग

यदा भाग्यं भवेद् भूरि नृपागच्छन्ति[1] वेश्मनि।
अन्तःपुरप्रवेशश्च क्रियतां यत्र दुःखिता।।२१।।

मानिता वीरसिंहेन कौशल्या तां ददर्श ह।
दृष्ट्वा रत्नकला राज्ञीं पर्यङ्काच्छीघ्रमुत्थिता।।२२।।

निकटे स्थापयामास ह्यासने परमाद्भुते।
अतसीपुष्पसंकाशं रामं चाङ्के निरीक्ष्य सा।।२३।।

दुःखं पलायितं तस्याः रामचन्द्रप्रसादतः।
ऊचे रत्नकला रामं करौ प्रासार्य मोहिता।।२४।।

ममाक्रोडे त्वमागच्छ दुःखं शीघ्रमपाकुरु।
रामो नारायणः साक्षात्तस्याः कामस्य पूर्तये।।२५।।

समर्पितस्तदा[2] तूर्णं तस्याः क्रोडं[3] समारुहत्।
पस्पर्श बाला सा बालं बालं मत्वात्मनो निजम्।।२६।।

चुचुम्ब आननं सा तु कण्ठे कृत्वा च बालकम्।
घ्राणं चकार मूर्द्धनश्च रामस्य परमात्मनः।।२७।।

रामस्पर्शेन यज्जातं[4] तत्सुखं वाक्यदूरगम्[5]।
मनसा प्रार्थयामास वैकुण्ठचरणाम्बुजम्।।२८।।

अहो देव महाविष्णो पुत्रं देहि ममेदृशम्।
रामस्तु पुनरम्बाया अङ्कं चारुरुहे हसन्।।२९।।

व्याधी रत्नकलायास्तुदूरे जाता[6] च रामतः।
कौशल्यां पूजयामास मालया चन्दनेन सा।।३०।।

रामहस्ते [7]महारत्नमर्पयामास भामिनी।
कौशल्या सुखिनीं कृत्वा वीरसिंहवधूं तदा।।३१।।

---

१. नृपाः गच्छन्ति-ग
२. स्मरयित्वा-ग
३. क्रोडे-ग
४. यद्यातं-ग
५. च दुःखदूरगं-ग
६. याता-ग
७. महारत्नान्य-ग

जगाम स्वगृहं राज्ञी रामेण[1] सह पूजिता।
न ज्ञातं केनचित्तस्याः कारणं सुखदुःखयोः।।३२।।
रामं विना महाचित्रं ज्ञातुं शेके न कश्चन।।३३।।

वाल्मीकिश्च मुनिर्वेद[2] रामचन्द्रस्य चेष्टया[3]।
वक्ष्ये रत्नकलायास्तु चरितं परमाद्भुतम्।।३४।।

इति श्रीसत्योपाख्याने सूतशौनकसंवादे एकोनत्रिंशतमोऽध्यायः।।२९।



१. क्रमेण
२. वाल्मीकिर्मुनि-ग
३. चेच्छया-ग

त्रिंशदध्यायः

श्रीशौनक उवाच-

व्यासशिष्य महाभाग ह्यमृतं वचनं तव।
मुहुः पिबामि ते वक्त्रात् सुन्दरैः कर्णसम्पुटैः।।१।।

वृत्तं रत्नकलायास्तु मह्यं कथय माचिरम्।
रामार्थं किं कृते नूनं दम्पतीभ्यां महामुने।।२।।

स्वभावो रामचन्द्रस्य कल्पवृक्षतरोर्यथा।
प्रार्थिताः पुत्रभावेन तस्याः पुत्रत्वमागमत्।।३।।

कस्मिन् जन्मनि रामस्तु तस्याः पुत्रो बभूव सः।
मया पृष्टं त्वमाचक्ष्व चरितं तु हरेरिदम्।।४।।

श्रीसूत उवाच-

शृणु शौनक वक्ष्यामि[१] गुणातीतगुणानहम्।
रत्नकला विचार्यैवं पत्या सह महामुने।।५।।

कथं रामो भवेत्पुत्रः आवयोः धर्मनिष्ठयोः।
अनेनैव विचारेण व्यतीतानि दिनान्यहो।।६।।

इच्छाया रामचन्द्रस्य हृदा[२] तेनैव प्रेरितौ[३]।
जग्मतुराश्रमं तूर्णं वशिष्ठस्य रथाश्रितौ।।७।।

आश्रमाच्च वशिष्ठस्य दूरे स्थाप्य रथं निजम्।
वशिष्ठचरणौ द्रष्टुं समीपे जग्मतुस्तुरा[४]।।८।।

वशिष्ठशिष्यो नाम्ना तु विष्णुमित्रो बहिः स्थितः।
आश्रमाच्च तदा[५] दृष्ट्वा पादौ जगृहतुर्मुनेः।।९।।

---

१. वक्ष्येऽहं-ग   २. ददते-ग
३. वर्षप्रेरितौ   ४. त्वरा-ग
५. तथा-ग

श्रीदम्पत्योवाच-

स्वामिन् वयं तु सम्प्राप्ताः गुरोः सन्दर्शनाय वै।
आज्ञां तस्य प्रतीक्षामः नौ निवेदय चागतौ।।१०।।

विष्णुमित्रस्तयोर्वाक्यं श्रुत्वावस्थाप्य[1] तत्र तौ।
कथनाय प्रविष्टस्तु तयोरागमनं गुरुम्[2]।।११।।

वशिष्ठस्तु कृपायुक्तः हृदिः रामेण प्रेरितः।
आहूयतां त्वया शीघ्रं निकटे चात्मनो ध्रुवम्।।१२।।

विष्णुमित्रेण तौ नीतौ गुरुणा प्रेरितेन वै।
तौ दम्पती महाहृष्टौ जग्मतुर्गुरुसंनिधौ।।१३।।

गुरुं दृष्ट्वा तु तौ प्रेम्णा ववन्दाते पदे मुनेः।
गुरुणा च शुभाशीर्दत्ता[3] गृह्य ततः स्थितौ।।१४।।

अभ्यर्णे स्थापितौ तेन वशिष्ठेन महात्मना।
प्रपच्छ कुशलं तौ हि वचसामृतवर्षिणा।।१५।।

श्रीवीरसिंह उवाच-

सदैव कुशलं नाथ गुरुर्येषां भवादृशः।
कोटिजन्मसमुत्थेन धर्मेणैव तु लभ्यते।।१६।।

श्रीसूत उवाच-

शिष्यास्तु परिचर्यायां गवां याता यतस्ततः।
वशिष्ठस्य मुनेः काले वशिष्ठः प्राह तौ पुनः।।१७।।

श्रीवशिष्ठ उवाच-

किमर्थमाश्रये यात्रा कृता चात्र मम प्रियौ।
कथमिष्यामि तत् सर्वं सन्देहं मा मनः कृथा।।१८।।

श्रीरत्नकला उवाच-

जानासि त्वं च सर्वेषां संकल्पं मानसोद्भवम्।
किमर्थं पृच्छसे स्वामिन् न शक्ता कथितुं[4] त्वयि।।१९।।

---

१. श्रुत्वा चाथाप्य-ग

२. गुरो-ग

३. शुभा ह्याशीर्दत्ता-ग

४. कथिते-ग

सूत उवाच-

क्षणमात्रं मुनिः स्थितो ध्यानस्तिमितलोचनः।
बालरूपी तदारामो मनस्याविर्बभूव ह।।२०।।

स एव कृष्णारूपेण मुनिना ददृशे पुनः।
सर्वं तेनैव विज्ञातं भविष्यं जन्म कर्म च।।२१।।

एतद् ज्ञात्वा मुनिस्तूर्णमूचे रत्नकलां प्रति।

श्रीगुरु[1] उवाच-

शृणु रत्नकले वाक्यं संकल्पस्ते मनोहरः।।२२।।

तव[2] कष्टबहुत्वाच्च संसिद्धिस्तु भविष्यति।
गच्छतां तु युवां तत्र यत्र नारायणो मुनिः।।२३।।

लोकानां स्वस्तयोऽद्यापि तपस्तप्ते[3] सुदारूणम्।
सेवते नारदो यस्य पादपद्मं हि[4] नित्यदा।।२४।।

नाम्ना कलापग्रामस्तु विख्यातो जगतीतले।
यत्र गत्वा न जायन्ते जनन्याः जठरे जना।।२५।।

वसन्ति मुनयो यत्र राजर्षिणां कदम्बकम्।
तत्र गत्वा जगन्नाथमाराधय जगद्गुरुम्।।२६।।

चैत्रे मासि सिते पक्षे नवमी पक्षवर्द्धिनी।
पुनर्वसुयुता चैव युवाभ्यां क्रियतामिति।।२७।।

निराधारौ च वर्षायां हेमन्ते जलशायिनौ।
तापिनौ[5] किल चाग्नीनां पञ्चानां चैव ग्रीष्मके।।२८।।

भवतां तु फलाहारौ कायक्लेशरतौ पुनः।
जिह्वया रामचन्द्रस्य नित्यं जपपरायणौ।।२९।।

अतसीपुष्पसंकाशं द्विभुजं रघुनन्दनम्।
ध्यायन्तो मनसा चैवं लभतां पुत्रमीश्वरम्।।३०।।

---

१. वशिष्ठ-ग
२. न तु-ग
३. तपस्तप्तं-ग
४. च-ग
५. तापसौ-ग

व्रतेन नवमीनां तु तपसा दुर्घटेन वै।
द्वापरान्ते युवा जन्म लभेतां गोकुले पुनः।।३१।।

वीरसिंहस्तु नन्दो वै यशोदा भवेत्त्वियम्।
रामोयं[१] कृष्णरूपेण पुत्रस्त्वं च भविष्यति।।३२।।

इत्युक्तौ मुनिना तौ तु प्रहृष्टौ द्वौ बभूवतुः।
तं[२] प्रणम्य यथान्यायमायतुः स्व गृहं पुनः।।३३।।

आहूय ब्राह्मणान् सर्वांस्तथा मागधबन्दिनः।
अश्वान् गजान् रथान् प्रादाद् वीरसिंहो विचक्षणः।।३४।।

सर्वं दत्त्वा तु विप्रेभ्यः धरां वृत्तिकरीमपि[३]।
गृहदानं च गोदानमन्नदानमणेरपि।।३५।।

सन्तर्प्य च यथान्यायं प्रणामकरोत्ततः।
अयोध्यावासिनः सर्वेः दम्पत्योर्द्रष्टुमागताः।।३६।।

साधु साधु वदन्तस्ते परिबब्रुः[४] समन्ततः।
ब्रह्मचर्यधरौ तौ च सूक्ष्मवस्त्रधरावुभौ।।३७।।

हर्म्यं च[५] गुरुवे दत्त्वा राजानं प्रापतुः पुनः।
राज्ञा सभाजितौ तौ च जगाद वचनं नृपः।।३८।।

श्रीराजा दशरथ उवाच-

धन्यौ युवां महाभागौ कुलरीतिकरौ मम।
रघूनां च कुले [६]जातास्तेषां रीतिस्तु चेदृशी।।३९।।

[७]जरयाग्रस्तमात्मानं दृष्ट्वा हित्वा गृहं वनम्।
जग्मुः पूर्वे महात्मानो युवाभ्यां तु तथा कृतम्।।४०।।

न चापूर्वा[८] कृता वृत्तिः पूर्वैराचरिता कृता।
गम्यतां गम्यतां तत्र मा विलम्बस्तु क्रियताम्।।४१।।

---

१. रामो वा-ग
२. ते-क
३. वृत्तिकरा-क
४. परिवार्य-ग
५. हिरण्यं-ग
६. याता-ग
७. जराया-ग
८. नाना पूर्वा-ग

तीर्थं जिगमिषोर्यस्तु यात्राभङ्गं करोति च।
रौरवे पच्यते मूढः साकं पितृपितामहैः।।४२।।

तत्र गत्वा जगन्नाथमाराधय[१] महामते।
नारायणस्तु विश्वात्मा लिप्सां ते पूरयिष्यति।।४३।।

श्रीदम्पतिः उवाच[२]-

एवं भवतु भो राजन् तव वाग्[३] यथार्थतः।
चक्रतुर्गमनायैव राज्ञा चानुगतौ पथि।।४४।।

राजद्वारे[४]स्तथाप्यन्यैः संस्तुतौ ययतु[५]र्वनम्।
विनिवार्य पुनः सर्वान् पूजितौ तैश्च पूजितान्।।४५।।

आश्रमं तु हरेः प्राप्य मुदितौ तौ बभूवतुः।
उषित्वा तत्र तौ वर्षान् नवमीव्रतपरायणौ।।४६।।

तीर्थस्नानरतौ तौ च जपध्यानपरायणौ।
एवं च कुर्वतौ स्वैरमेकादश समागताः।।४७।।

कायक्लेशं च कुर्वाणौ तस्मिन् संन्यस्तमानसौ[६]।
तदा रामः प्रसन्नात्मा दर्शयामास स्वां तनुम्।।४८।।

वरं ब्रूहि वरं ब्रूहि तुष्टोऽहं तपसा च वाम्।

सूत उवाच-

वाक्यं निशम्य रामस्य ह्यमृतेनैवं सिञ्चितौ।।४९।।

प्राहत् रामचन्द्रं च गिरा गद्गदया च तौ।
तयोर्वाणी तु जिह्वायामुवास रामप्रेरिता।।५०।।

श्रीदम्पतिः उवाच-

एकादश समास्तप्तं[७] तपः परमदुष्करम्।
तावत् परिमितं राम ह्यावयोस्त्वं गृहे[८] वस।।५१।।

---

१. मापराधय-ग

२. दम्पती ऊंचतुः-ग

३. वाक्यं-ग

४. राजदारैः

५. यद्यतु-ग

६. सम्यकं स्तिमितमानसौ-क

७. समा प्राप्तां-ग ८. गृहं-ग

पुत्रो भूत्वा न जानीमः त्वतत्त्वं[१] भरताग्रज।

श्रीरामोवाच-

एवं भवतु वां पूर्णः कामः सम्पद्यते युवाम्।।५२।।

एकादशैव वर्षाणां निवसिस्यामि ते गृहे।
द्वापरान्ते तु वैकुण्ठं यास्यथः परमाद्भुतम्।।५३।।

यं प्राप्य न निवर्तन्ते संसारे मृत्युभक्षके।
इत्युक्त्वा तु गतो राम आत्मनः परमां दिशम्।।५४।।

तौ तु देहं परित्यज्य विष्णुलोकं च जग्मतुः।
द्रोणोधरेति जज्ञाते[२] देवलोके पुनस्तुतौ।।५५।।

तत्रापि ब्रह्मणाज्ञप्तौ ते याते परमं तपः।
अजेनेति वरो दत्त्वा हरिः पुत्रो भविष्यति।।५६।।

इत्युक्तौ च पुनः स्वर्गे भुक्त्वा भोगान्निजार्ज्जितान्।
गोकुले च तदोत्पन्नौ यशोदानन्द एव च।।५७।।

द्वापरान्ते महात्मानौ वसुदेवस्तु देवकी।
मथुरायां तयोर्जात ईश्वरो लक्ष्मणाग्रजः।।५८।।

आत्मनो वरदानाच्च वराच्चैव तथाविधेः।
पितरौ च परित्यज्य कृष्णरूपेण राघवः।।५९।।

निवाससमकरोतत्र नन्दवेश्मनि माधवः।
वीर्याणि तस्य भूरीणि यथा रामस्य सन्ति हि।।६०।।

रामस्तु कृष्णरूपेण रामरूपेण माधवः।
तयोः भेदं न कर्तव्यं कृत्वा वै पापमाप्नुयात्।।६१।।

अनेन कारणेनैव ह्येकादशसमा हरिः।
उवास गोकुले कृष्णो मथुरायां ततो गतः।।६२।।

मया कथितं सर्व रामवृत्तं च शौनकः।
शृणुयात् कीर्त्तयेद्वापि पापहानिश्च तस्य वै।।६३।।

इति सत्योपाख्याने सूतशौनकसंवादे त्रिंशत्त (त्रिंशद्) अध्यायः।३०।



---

१. त्वां च हि-ग

२. जज्ञाते-क

एकत्रिंशोऽध्याय:

श्रीशौनक उवाच-

यत्त्वया वर्णितं स्वामिन् नवमीव्रतकरावुभौ।
माहात्म्यं चैव मे ब्रूहि नवम्यां विधिपूर्वकम्।।१।।

कस्य कस्य विशुद्धिश्च नवम्याश्च व्रतेन वै।
मनो न तृप्यते सूत मिष्टा रामकथा यत:।।२।।

श्रीसूत उवाच-

श्रूयतां भो द्विज श्रेष्ठ सेतिहासं कथानकम्।
यस्य श्रवणमात्रेण रामप्रीतिश्च जायते।।३।।

पुरा त्रेतायुगे ब्रह्मन् महेन्द्रो[१] गिरिसत्तम:[२]।
अगस्त्यश्च तपस्तेपे पर्वते मुनिसेविते।।४।।

यस्मिन् वृक्षा: महादीर्घा: गगनस्पर्शिनो द्विज:।
सालास्तालास्तमालाश्च आम्रा: नीपाश्चखादिरा:।।५।।

धातृवृक्षा: महादीर्घाश्चिञ्चिणीका: धवास्तथा।
कपित्था: वञ्जुलाश्चैव जम्बुवृक्षा: सतिन्दुका:।।६।।

बिल्वा: निम्बास्तथाचोच्चैर्बदर्याभयामला:।
खर्जूराम्रातकव्राता: पारिजातादयो द्रुमा:।।७।।

पनसा कोविदाराश्च सरला: देवदारव:।
पाटलाश्चम्पकाश्चैव नागचम्पादयो द्रुमा:।।८।।

एतेरन्यैश्च[३] वृक्षैश्च शोभिते पर्वतोत्तमे।
महेन्द्र च तपस्तेपे ह्यगस्त्यो भगवानृषि:।।९।।

---

१. महेन्द्रे-ग

२. गिरिसत्तमे-ग

३. एतैर्ण्यैश्च-क

महा महाशिलाः यत्र लताभिः परिगुम्फिताः।
यस्य शृङ्गे घनावासं कुर्वन्ती सततं घनाः।।१०।।

भानौ मार्गं समारोद्धुं पुनर्विन्ध्य इवो स्थितः।
प्रभाभिश्च मणीनां तु सदा दीप्तो बभूव यः।।११।।

लतानां च[1] वितानैश्च[2] वेष्टितः पुष्पशालिभिः।
गगनं यस्तु शृङ्गैश्च भुवं पादैरमिश्रितः।।१२।।

सर्वं व्याप्य यथा विष्णुस्तथा पर्वतसत्तमः।
पुष्पैश्चात्मतटोत्थैर्यः पक्षिणो मदृको[3] नगः।।१३।।

बह्वानस्तु[4] यत्र नद्यस्तु चावरोहन्ति भूतले।
पितुरङ्काद्यथा कन्याः पतिं सिंधुमुपाद्रुताः।।१४।।

सुमेरोर्यत्र चादाय महेन्द्रस्याचले सुराः।
रत्नानि विविधान्येव[5] चक्रुस्ते चेन्द्रप्रीतये।।१५।।

यस्माद् धनानि लोकाश्च धनाढ्यादिव लेभिरे।
यत्रारुह्य जनैर्प्रेम्णा साक्षात् सूर्यो विलोक्यते[6]।।१६।।

क्षणे क्षणे मुनिनां तु ह्यानन्दो[7] येन जायते।
पौर्णमास्याः क्षपा[8] नूनं पूर्वस्यां तु हिमांशुकम्।।१७।।

मार्तण्डं च प्रतीच्यां तु ह्यस्तस्योपरि[9] मस्तके।
बिभर्त्ति घण्टके द्वे तु चन्द्रसूर्यौ यथात्विभः।।१८।।

सुवर्णानां शिला यत्र रौप्यानां तु विशेषतः।
यस्य शृङ्गेषु गीर्वाणाः स्थिताः पश्यन्ति भास्करः।।१९।।

---

१. हि-ग
२. प्रतानैश्च-ग
३. मादको-ग
४. बह्वाश्च-ग
५. विविधान्यत्र-ग
६. विलोकते-ग
७. ह्यानन्दो-ग
८. पौर्णमास्यामयं-ग
९. ह्ययगस्त्योपरि-ग

दिवानक्तं तथा चन्द्रं युवत्या नयनं यथा।
शृङ्गेभ्यो यत्र धाराश्च पतन्ति पृथिवीतले।।२०।।

जलदास्तु निजैर्गात्रै सदैवाच्छादयन्ति यम्।
मानिन्यो यत्र मानं तु त्यक्त्वा क्रीडन्ति स्वामिना।।२१।।

यस्य तटाः महादीर्घाः प्राणिनां चैव दुर्गमाः।
तरवो यत्र पुष्पाणि बिभ्रन्ति स्वशिखोपरि[१]।।२२।।

सञ्चरन्ति मृगाः यत्र चाङ्गानीव महीभृतः।
हूयन्ति[२] कोकिलाः यत्र छायायां पथिकानिव।।२३।।

किन्नराः यत्र वर्तन्ते युक्ताः नानाविधैः मुखैः।
नराननमयं दृष्ट्वास्तुरङ्गवदनश्चयः।।२४।।

यः स्पर्द्धते[३] तु तं दृष्ट्वा प्रियायाश्चुम्बने रतम्।
नराननोपि तं दृष्ट्वा प्रियायाः परिरम्भणे।।२५।।

यः स्पर्द्धति तथा चोच्चैः पर्वते[४] मुनिसेविते[५]।
वाप्यो यत्र महादीर्घाः मणिसोपानशोभिताः।।२६।।

नीलोत्पलैर्जलं[६] यासां नीलेनैव तु मिश्रितम्।
बह्वीनां तु कुलं यत्र चमरीणां तु[७] विद्यते।।२७।।

लज्जां वहन्ति तत्राथ देवानां बत योषितः।
गुहायाः सन्मुखे कुड्यं तस्यामेव सुसंस्थितः[८]।।२८।।

सूर्यरश्मेस्तु सम्पर्को मणिभिस्तु[९] यदा भवेत्।
भवन्ति ब्रीडिताः नग्नाः दुकूलानां च धारणे।।२९।।

कलभाः[१०] यत्र क्रीडन्ति पद्मानां कुसुमैरिभाः[११]।
रात्रावौषधयो[१२] यत्र प्रज्वलन्ति सहस्रशः॥३०॥

---

१. स्वशिशे-ग
२. रटन्ति-ग
३. स्पर्द्धन्ते-क
४. वर्तते-ग
५. मुनिसेवने-क
६. चलं-ग
७. च-ग
८. सुसंस्थिताः-ग
९. मणिभिः तौ-क
१०. कलभै-ग
११. कुकुभैरिभाः-क
१२. यत्रा चौ-क

मदमत्तास्तु गन्धर्वाः यत्र क्रीडन्ति भूरिशः।
कामिनीभिर्दिवारात्रौ देवता इव नन्दने।।३१।।

वर्षाकाले घनान्[१] वीक्ष्य ह्यधोभागे तु लम्बितान्।
आरोहन्ति तदा श्रृंगमुच्चकैस्तन्निवासिनः।।३२।।

एवंभूते ह्यधो भागे तत्र वसन्ति चार्षयः सुराः।
आसनं तु महेन्द्रस्य तथा वायोः शुभस्थलम्।।३३।।

हिमांशोर्यत्र[२] चास्थानं तथा [३]चोमाकपर्द्दिनोः।
सिन्धुजा गिरिजा यत्र सावित्री च सरस्वती।।३४।।

अदितिश्च दितिश्चैव क्रीडन्ति पतिभिः सह।
बलारातेरगेः ह्येवमुवास कुम्भसम्भवः।।३५।।

नाम्ना सुतीक्ष्णः शिष्यो हि मुनिं पप्रच्छ यत्नमान्[४]।
यूयं पृच्छथ रामस्य नवम्यां व्रतमुत्तमम्।।३६।।

श्रीसुतीक्ष्ण उवाच-

भगवन् योगिनां श्रेष्ठ नवम्यास्त्वं फलं वद।
व्रतस्य करणे वापि को विधिस्तत्र कथ्यते[५]।
पापानां प्रलयं कस्य चकार नवमीव्रतम्।।३७।।

सूत उवाच-

सुतीक्ष्णेन पृष्ठो वै प्रत्युवाच मुनीश्वरः।।३८।।

श्री सत्योपाख्याने सूतशौनकसंवादे श्रीरामनवमीमाहात्मो एकत्रिंशोऽध्यायः।।३९।



१. वार्षकान् घानान्-ग
२. हिशो-क
३. यम-ग
४. यत्तुमा-क
५. कार्य्यते-ग

द्वात्रिंशोऽध्यायः

श्रीअगस्त्य उवाच-

ततोऽहं कथयिष्यामि नवमीं पापानाशिनीम्।
यस्यां हि जन्म रामस्य पूर्णस्य परमात्मनः॥१॥

चेत्रै मासि सिते पक्षे नवम्यां तु पुनर्वसुः।
तत्र मध्याह्नवेलायां कौशल्या सुषुवे सुतम्॥२॥

ततो देवाः सगन्धर्वाः सिद्धचारणगुह्यकाः।
दिव्यतूर्याण्यवादं तमुदितास्तत्र तत्र ह॥३॥

चिन्तामणिर्मणीनां तु वृक्षाणां कल्पवृक्षवत्।
व्रतानामपि सर्वेषां तथा वै नवमी व्रतम्॥४॥

ये कुर्वन्ति व्रतं विप्र नवमीं मुक्तिदायिनीम्।
महोत्सवं तथा पूजा तेऽपि यान्ति परां गतिम्॥५॥

देवानां कार्यसिद्ध्यर्थं साधूनां रक्षणाय च।
वधार्थं यातुधानानामवतीर्णः स्वयं हरिः॥६॥

चैत्रे मासे नवम्यां तु जातो रामः स्वयं हरिः।
पुनर्वस्वर्क्षसंयुक्ता सा तिथिः सर्वकाम्मदा॥७॥

श्रीरामनवमी प्रोक्ता कोटिसूर्यग्रहाधिका।
चैत्र शुक्ला तु नवमी पुनर्वसुयुता यदि॥८॥

तस्मिन् दिने महापुण्ये राममुद्दिश्य[१] भक्तितः।
यत्किञ्चित् क्रियते कर्म तद्भवक्षयकारकम्॥९॥

उपोषणं जागरं च राममुद्दिश्य तर्पणम्।
तस्मिन् दिने तु कर्तव्यं ब्रह्मप्राप्तिमभीप्सुभिः॥१०॥

---

१. ग-मातृकायांमेतदधिकं प्राप्यते-'भक्तितः। यत्किञ्चित् क्रियते कर्म तद्भवक्षयकारकं॥ उपोषणं जागरं च राममुद्दिश्य-'

राम एव[1] परं ब्रह्म तद्दिनं रामतोषकम्।
उपोषणं जागरणं तस्मात् कुर्याद् विशेषतः।।११।।

यस्तु रामनवम्यां तु भुङ्क्ते मोहाद् विमूढधीः।
कुम्भीपाकेषु पच्यन्ते घोरेषु नात्र संशयः।।१२।।

यस्तु रामनवम्यां तु नियतस्तर्पयेत् पितॄन्।
ते सर्वे तत्क्षणादेव यान्ति विष्णोः परं पदम्।।१३।।

यस्तु रामनवम्यां तु दद्यात् वित्तानुसारतः।
यत् किञ्चिदपि तत् सर्वं महादानसमं भवेत्।।१४।।

धन्यो लोको व्रतपरो रामनामपरायणः।
तिथिर्धन्या च नवमी यस्यां जातो हरिः स्वयम्।।१५।।

ये नवमीव्रतपरा[2] महोत्साहरताश्च ये।
रामरूपां[3] गतिं यान्ति चाक्षया[4] सुरसेविताम्।।१६।।

यस्तु रामनवम्यां तु कुर्याद्रामव्रतं यदि।
तुलापुरुषदानाद्[5] फलं प्राप्नोति मानवः।।१७।।

सूर्यग्रहे कुरुक्षेत्रे महादानैः कृतैः हुतैः।
यत्फलं तदवाप्नोति श्रीरामनवमीव्रते।।१८।।

कुर्याद् रामनवम्यां तु चोपोषणमतन्द्रितः।
न[6] मातुर्गर्भमाप्नोति सैव[7] रामो भवेत् स्वयम्।।१९।।

नवमी चाष्टमीयुक्ता वर्ज्या विष्णुपरायणैः।
उपोषणं नवम्यां वै दशम्यामेव पारणम्।।२०।।

नीलोत्पलदलश्यामं पीताम्बरधरं विभुम्।
द्विभुजं कञ्जनयनं दिव्यसिंहासने स्थितम्।।२१।।

वशिष्ठाद्यैश्च परितो वृतं[8] रत्नकिरीटिनम्।
सीता[9]संलापचतुरं दिव्यगन्धादिवासितम्।।२२।।

---

१. स्वयं-ग
२. नवम्या-क
३. भगवद्रूपां-ग
४. चाक्षयं-ग
५. तुलापुरुषदानादि-ग
६. ग-मातृकायां नास्ति।
७. नैव-ग
८. नुत-ग
९. पीतां-ग

चापद्वयंकरं[1] चाग्रे सेवितं लक्ष्मणेन च।
शत्रुघ्नाभरताभ्याञ्च पार्श्वयोरथ सेवितम्।।२३।।

ध्यायन्ननन्यभावेन द्वादशाक्षरमन्त्रतः[2]।
पूजयेद् विहितो नित्यं श्रीरामं न्यासपूर्वकम्।।२४।।

मन्त्रसन्ध्यां विधायैव त्रिकालं पूजयेत् सदा।
न पुष्करसमं तीर्थं न व्रतं नवमी समम्।।२५।।

न केशवात् परो देवो न नदी जाह्नवी समा।
किं वर्णयाम्यहं विप्र रामजन्मदिनं शुभम्।।२६।।

स्वयं ब्रह्मावतीर्णो हि लोकानां च सुखावहः।

सूत उवाच-

सुतीक्ष्णोऽपि पुनः प्रश्नं चकार मुनिपुङ्गवम्।।२७।।

माहात्म्यं रामदेवस्य नवम्यां पूजनं तथा।

श्रीसुतीक्ष्ण उवाच-

भगवन् योगिनां श्रेष्ठ सर्वशास्त्रविशारदः।।२८।।

किं मन्त्रं[3] किं परजाप्यं किं ध्यानं मुक्तिसाधनम्।
ज्ञातुमिच्छामि तत्सर्वं ब्रूहि मे मुनिसत्तमः।।२९।।

श्री अगस्त्य उवाच-

सुतीक्ष्ण त्वं महाभाग शृणु वक्ष्यामि तत्त्वतः।
यत्परं यद्गुणातीतं यज्ज्योतिरमलं भुवि[4]।।३०।।

तदेव परमं तत्त्वं कैवल्यपदकारणम्।
श्रीरामेति परमं जाप्यं तारकं ब्रह्मसंज्ञकम्।।३१।।

ब्रह्महत्यादिदोषघ्नमिति वेदविदो विदुः।
श्रीरामरामरामेति जनाः प्रवदन्त्यपि सर्वदा।।३२।।

तेषां भुक्तिश्च मुक्तिश्च भविष्यति न संशयः।
नमस्कृत्य प्रवक्ष्यामि रामनाममनामयम्[5]।।३३।।

---

१. चापद्वयकरे-ग
२. द्वादशाक्षरमन्वहं-ग
३. तन्मन्त्रं-ग
४. शुचि-ग
५. राम राममनामयम्-क

अयोध्यानगरे रम्ये रत्नमण्डपमध्यगे।
स्मरेत् कल्पतरोर्मूले रत्नसिंहासनं शुभम्।।३४।।

तन्मध्येऽष्टदलं पद्मं नानारत्नप्रवेष्टितम्।
सौवर्णं राजतं वापि कारयेद्रघुनन्दनम्।।३५।।

पार्श्वे भरतशत्रुघ्नौ धृतछत्रकरावुभौ।
चापद्वयसमायुक्तं लक्ष्मणं कारयेत् सुधी।।३६।।

मातुरङ्कशयं रामम‍िन्द्रनीलसमप्रभम्।
कोमलाङ्गं[1] विशालाक्षं विद्युद्वर्णाम्बरावृतम्।।३७।।

भानुकोटिप्रतीकाशं किरीटेन विराजितम्।
रत्नग्रैवेयकेयूररत्नकुण्डलशोभितम् ।।३८।।

रत्नकाञ्चनमञ्जीरकटिसूत्रैरलङ्कृतम् ।
श्रीवत्सकौस्तुभोरस्कं मुक्ताहारोपशोभितम्।।३९।।

सौवर्णे राजते पात्रे षट्कोणैश्चैव[2] संयुते[3]।
अलाभे बिल्वपीठे वा[4] स्थापयेद् रघुनन्दनम्।।४०।।

वस्त्रद्वयसमायुक्तं दिव्यरत्नविभूषितम्।
अस्त्रशक्तिसमायुक्तं देवेशं पूजयेत्क्रमात्।।४१।।

प्रणवं पूर्वमुच्चार्य नमः शब्दं ततो वदेत्।
भगवत्पदमाभाष्य वासुदेवाय इत्यपि।।४२।।

ततः सर्वात्मसंयोगस्ततः[5] पीठात्मने नमः[6]।
इति मन्त्रेण तन्मध्ये कुर्यात् पुष्पाञ्जलिं[7] पुनः।।४३।।

एवं सम्पूजयेत् पीठं[8] देवमावाह्य पूजयेत्।
अर्घ्यादिधूपदीपान्तानुपचारान् विधाय च।।४४।।

---

१. कोमलाङ्गे-क

२. षट्कोणं चैव-क

३. संयुतम्-क

४. च-क

५. ग-मातृकायां 'स्ततः' पदं नास्ति।

६. नमो नमः-ग

७. पुष्पाञ्जलीन्-ग

८. पीठे-

ततोऽनुज्ञाप्य देवेशं परिवारांश्च[1] पूजयेत्।
पूर्वं च षट्कोणेषु हृदयादीनि षट् क्रमात्।।४५।।

मूलमन्त्रेण कर्तव्यमुपचाराश्च षोडशः।
इन्द्रादिलोकपालांश्च वशिष्ठादिमुनीनपि।।४६।।

सर्वदिक्पालमन्त्रेण पूजयेद् भक्तिसंयुतः।
अशोककुसुमैर्युक्तमर्घ्यं देवस्य दापयेत्।।४७।।

अथ अर्घमन्त्रः-

दशाननवधार्थाय धर्मसंस्थापनाय च।
दानवानां विनाशाय दैत्यानां निधनाय च।।४८।।

परित्राणाय साधूनां जातो राम स्वयं हरिः।
गृहाणार्घ्यं[2] मया दत्तं भ्रातृभिः सहितोनघः।।४९।।

प्रतियामं विशेषेण चार्चये[3]द्रघुनन्दनम्।
पुराणैः स्तोत्राठैश्च वेदपारायणेन च।।५०।।

नृत्यगीतैश्च वाद्यैश्च रात्रिशेषं व्यपोह्य च।
प्रातः स्नात्वा च सावित्रीं जप्त्वा संध्यामुपोषयेत्।।५१।।

दशाक्षरेण मन्त्रेण देवेशं मनसा स्मरेत्।
देवदेवं प्रणम्याथ पूर्ववत् पूजयेत् सुधीः।।५२।।

नवम्यां पूजनं तुभ्यं श्रीरामस्य ह्युदाहृतम्।
माहात्म्यं कथयिष्यामि सेतिहासं पुरातनम्।।५३।।

इति श्रीसत्योपाख्याने सूतशौनकसंवादे
द्वात्रिंशोऽध्यायः।।३२।

---

१. परिचारांश्च-ग
२. गृहाणार्थं-ग
३. चार्पये-ग

त्रयस्त्रिंशोध्यायः

श्रीअगस्त्य उवाच-

[1]अथ ते कथयिष्यामि कथां परमसुन्दराम्।
मरुकान्तारदेशे च बभूवः पञ्चपापिनः।।१।।

एकस्तु तैलकारो हि[2] लु[3]म्पकेति च कथ्यते।
तन्तुकारो द्वितीयश्च नाम्ना शङ्कुरिति श्रुतः।।२।।

तृतीयश्च नटो ज्ञेयः आह्लातस्य[4] तु लुण्ठकः।
चतुर्थो धीवरो दुष्टो नाम्ना लोके च जन्तुहा।।३।।

पञ्चमं कुम्भकारस्तु धर्महेतिप्रथामगात्।
पञ्चग्रामे तु पञ्चानामेकस्थस्यास्थितीरभूत्[5]।।४।।

तैलकारस्य गोदोषो बभूव तैलपीडने।
इति दोषं चरैः ज्ञात्वा राज्ञा[6] ग्रामाद् बहिः कृतः।।५।।

तन्तुकारस्तु भार्यामामनुजस्यैव सङ्गकृत्।
नटश्च पथिकान् सर्वान् सदा लुण्ठति कानने।।६।।

धनुर्बाणधरः पापी तन्तुकारगृहे स्थितः।
राज्ञा तौ तु गृहीत्वा च यष्टिघातानकारयत्।।७।।

धीवरः [1]कुम्भकारश्च सदा चौर्यपरायणौ।
राजलोकैः गृहीतौ च कदाचिच्चौरकर्मणि।।८।।

बद्ध्वा नीतौ नृपस्याग्रे पापिनौ परतापिनौ।
विमलात्मेति राजर्षि देहभङ्गं न चाकरोत्[7]।।९।।

---

१. इयं पङ्क्तिः ग-मातृकायां नास्ति।
२. मू-ग
३. ल्लु-ग
४. आहातस्य-ग
५. कस्याथितिरप्यभूत्-ग
६. रामा-क
७. कारयेत्-ग

एषः राज्ञां परो धर्मश्चौराणां मारणं[१] तु [२]यत्।
ज्ञानिनां तु मतं नैव तस्माद् राज्ञा विमोचितौ।।१०।।

देहभेदेन[३] यो दण्डः कर्त्तव्यो विदुषा[४] न वै।
वपनं द्रविणादानं देशनिर्यापणं तथा।।११।।

एष हि सर्वदुष्टा[५] वधो नान्योस्ति[६] दैहिकः।
इति ज्ञात्वा नरेशेन राज्ञा निर्यापितौ च तौ।।१२।।

तैलकारो नटश्चैव कुम्भकारः [७]कुविन्दकः।
धीवरोऽपि महापापी पञ्चानां मेलनं वने।।१३।।

बभूव पापिनां दैवाद्धिंस्राणां परतापिनाम्।
ग्राममागत्य पञ्चैते चौर्यं कुर्वन्ति नित्यशः।।१४।।

मुषित्वा द्रव्यबहुलं पलायन्ति[८] वनं पुनः।
ग्रामान्तरं पुनर्गत्वा तत्र चौर्यं च[९] चक्रिरे।।१५।।

तस्मिन् देशे च ये ग्रामाः लुण्ठितास्तैश्च पापिभिः।
मुषित्वा तत्र बहुलं वेश्याभोगपरायणाः।।१६।।

मद्यपानरताश्चैव मांसाहारोपजीविनः।
गोविप्रसुरसाधूनां सदा निन्दापरायणाः।।१७।।

एवं ते पापिनो राज्ञा स्वदेशाच्च निराकृताः।
राज्ञा निराकृताः सर्वे दुःखितास्ते सदाभवन्[१०]।।१८।।

देशाद्देशान्तरं गत्वा न पुनः शर्म लेभिरे।
किं कुर्मोपि वयं चापि ब्रुवन्तो ह्यनिशं मुहुः।।१९।।

---

१. मरणं-ग
२. हि-ग
३. देहाभेदेन-क
४. विदुषानरे-ग
५. सर्वदुनां-क
६. नान्यो हि-ग
७. कुविंदुषः-क
८. पालयति-क
९. हि-ग
१०. सदाभ्रमन्-ग

भ्रमन्त एव ते सर्वे नानादेशेषु पामराः।
चक्रुरेनांसि सर्वे लोके नानाविधानि च॥२०॥

पापेन दुःखिता सर्वे मुहुर्ग्लानिं च लेभिरे।
मधुमासे महादिव्ये नवम्यां रामजन्मनि॥२१॥

स्नानार्थं च जनाः चेन्द्रप्रस्थात् प्रचेलिरे।
तेषां सङ्गस्तु तेषां वै चौराणामपि लुम्पताम्॥२२॥

एवं विचार्य ते चौराः करिष्यामोऽत्र चौर्यताम्।
पृष्टास्तु पथिकैः पञ्चह्यात्मानं तु ब्रुवन्तु नः॥२३॥

चौराः ऊचूः-

वयं वै यात्रिणः सर्वे मरुकान्तारवासिनः।
तीर्थयात्रां करिष्यामो श्रीमत्तां सङ्गमे वयम्॥२४॥

तेषामितीरितं वाक्यं किञ्चिन्नोचुश्च ते जनाः।
अयोध्यायां गतास्ते तु नराः सुकृतिनो द्विजाः॥२५॥

चौरस्यावसरस्तेषां[1] नाभवत् पापकर्मणाम्।
उपशल्यमयोध्यायाः पुर्याः द्वारे समाजगुः॥२६॥

अयोध्यायां तु ये विघ्नाः मूर्तिमन्तस्तु ते सदा।
कामक्रोधश्च लोभश्च दम्भः स्तम्भोऽथ मत्सरः॥२७॥

निद्रा तन्द्रा तथालस्यं पैशुन्यमिति ते दश।
हस्ते दण्डं गृहीत्वां तान्मूर्तिमन्तो विदुद्रुवुः॥२८॥

वध्यमानांश्च तान् दृष्ट्वा दयायुक्तोऽब्रवीन् मुनिः।
असितो नाम मेधावी मा निषेधत[2] चागतान्॥२९॥

भविष्यति महापुण्यं युष्माकं पापतारणे।
इति श्रुत्वा मुनेर्वाक्यं विघ्नं ते चँ चक्रिरे॥३०॥

तस्मिन्नवसरे चौरा असितं वाक्यमब्रुवन्।

चौर उवाच[3]-

भगवन् के निषेधारण्येऽस्माकं[4] रोधने रताः॥३१॥

---

१. तेषु-ग

२. निषेधथ-ग

३. चौरा ऊचुः-ग

४. निषिद्धास्ते येऽस्माकं-ग

संशयं छिन्ध नो ब्रह्मन् तुभ्यं विप्र नमो नमः।

अस्ति उवाच-

सभाग्याश्च भवन्तो हि येषा[1]मागमनं त्विह।।३२।।

एते विघ्ना अयोध्यायां बाधन्ते हि नराधमान्।
मया निवारिता सर्वे त्यक्त्वा युष्मान् पुनर्गताः।।३३।।

विधिपूर्वमयोध्यायाः यात्रां कुरुत सत्तमः।
तीर्थयात्राप्रभावेण पापराशिर्विनश्यति।।३४।।

चौराः ऊचुः-

केनैव विधिना ब्रह्मन् तीर्थयात्रां चरेमहि।
येना पापाः वयं सर्वे व्रजिष्यामोमरावतीम्।।३५।।

असित उवाच-

यस्य हस्तौ च पादौ च मनश्चैव सुसंयुतम्।
विद्या तपश्च कीर्तिश्च स तीर्थफलमश्नुते।।३६।।

पापं न कुरुते यस्तु वाङ्मनोभ्यां शरीरतः।
यथाशक्त्या च दानेन स तीर्थफलमश्नुते।।३७।।

स्वर्गद्वारं समासाद्य वपनं कारयेद् व्रती।
स्नात्वा व्रजेत्तु रामस्य जन्मस्थानं विशेषतः।।३८।।

गोहत्या ब्रह्महत्या च गुरुस्त्रीगमनं तथा।
दोषैरेतैस्तथाप्यन्यैर्निर्मुक्तो जायते क्षणात्।।३९।।

मधुमासे सिते पक्षे नवमी रामजन्म च।
समागताः नराः सर्वे देवगन्धर्वकिन्नराः।।३९।।

जन्मस्थानं हि पश्यन्ति स्नात्वा श्रीसरयूजले।
भवद्भिः क्रियतां यात्रां पापनिर्णाशहेतवे।।४०।।

अग्रे गच्छतु पश्यन्तु ह्याश्चर्यपरमाद्भुतम्।

श्रीसूत उवाच-

इत्युक्त्वा अन्तर्दधे[2] योगी नाम्ना सितो महामुनिः[3]।४१।।

इति श्रीसत्योपाख्याने सूतशौनकसंवादे त्रयस्त्रिंशध्यायः।।३३।

---

१. एषा-क २. ऽतर्दधे-ग

३. च बासितो मुनिः-क

चतुर्त्रिंशोध्यायः

सूत उवाच-

नगरं विविशुस्ते च पञ्च चौराश्च मोदतः।
अयोध्यायाः तदा मूर्तिं ददृशे चाग्रतश्च तैः।।१।।

शुक्लाम्बरधरा देवी दिव्यचन्दनभूषिता[1]।
दिव्यमालां च कण्ठे हि बिभ्रती सा मनोहरा।।२।।

शंखचक्रधरा देवी चक्रारूढा शुभानना।
मूर्तिमद्भिश्च तीर्थैश्च परितः सेविता च सा।।३।।

चामरैर्वीज्यमाना सा सखीभिः परिवारिता।
रामप्रिया पुरी चाद्या विबुधैः सेविता च सा।।४।।

वशिष्ठवामदेवाद्यैर्मुनिवृन्दैरुपासिता ।
ईदृशी विमला दृष्टा पुरी चाद्या महामुने।।५।।

तथा पापैः पुरी दृष्टा तथा नान्यैश्च यात्रिभिः।
असितस्य मुनेः संगात्तथा तस्य वरेण च।।६।।

अयोध्यादर्शनं चक्रुर्लेभिरे परमं[2] पदम्[3]।
पापैर्न योध्यते यस्यास्तेनायोध्येति कथ्यते।।७।।

यथार्थं तस्य शब्दस्य[4] कथयिष्यामि शौनक।
दृष्ट्वा पापानि चौराणां गदामुद्यम्य सा पुरी।।८।।

दुद्राव[5] पश्यतां तेषां चौराणां सन्मुखे तदा।
भयं तु लेभिरे चौराः किमस्माकं हनिष्यति।।९।।

---

१. क-मातृकायां 'दिव्यचन्दन-शुभानना' पर्यन्तं नास्ति।
२. परमां-ग
३. मुदम्-ग
४. देवस्य-ग
५. दुद्रुवं-ग

इति मीमांसमानानां देहेभ्यः पापाराशयः।
निर्गता मूर्तिमन्तश्च युद्धाय समुपस्थिताः।।१०।।

नीलवस्त्राः करालास्यास्तथा वै निम्ननासिकाः।
लोहभूषणसंवर्गास्तथा रक्तशिरोरुहाः।।११।।

हस्तेन रहिताः केचित् पद्भ्यां केचन वर्जिताः।
नेत्रहीनास्तथा केचित् कुब्जाः काणास्तथापरे।।१२।।

भयंकरास्तथा चान्ये कुष्ठिनश्चापरे[1] तथा।
नानावेषधराश्चान्ये पापानां पापविग्रहाः।।१३।।

उद्यतायुद्धदोर्दण्डाः सत्यायाः सन्मुखं गताः।
अयोध्यापि महावीर्या यथा नामा तथा गुणाः।।१४।।

ताडितायोध्यया सर्वे गदया भीमवेगया।
पलायनपराः सर्वे पुरस्तस्या[2] न[3] तस्थितरे।।१५।।

तस्थुर्बहिश्च सत्यायाः [4]समेत्याश्वत्थवृक्षके।
रुदन्तो भैरवं नादं येन लोकाः विसस्मिरे।।१६।।

पुर्य्याकारिता[5]श्चौराः स्वर्गद्वारे समाययुः।
यस्यां तिथौ गताश्चौराः नवमी सा मधुमासिकी।।१७।।

स्नात्वा च सरयूं दिव्यां जन्मस्थानं तु ते गताः।
व्रतिनो रामचन्द्रस्य जन्मभूमेः प्रदर्शनात्।।१८।।

पापमुक्तास्तदा[6] सर्वे बभूवुः पञ्चपापिनः।
तस्मिन्काले चाहूतौ चित्रगुप्तौः यमेन वै।।१९।।

कर्णे प्रोवाच गुह्यं च चौराणां सुखहेतवे।

श्रीयम उवाच[7]-

क्षम्यतामपराधस्तु यन्मया [8]नोच्यतेऽधुना।।२०।।

---

१. कुष्ठिनो परयं-क
२. पुरस्या-ग
३. नव-ग
४. सत्यात्याः समेत्यायाः-ग
५. पूर्य्या चाकारिता-क
६. पापमुक्ताश्च ते-ग
७. संयमन उवाच-ग ८. प्रो-ग

क्रियतां भवता चाथ [1]चौराणां पापमार्जनम्।
लेखनं[2] पापपङ्क्तेस्तु[3] सत्यया तत् परिमार्जितम्।।२१।।

विष्णोराद्या पुरी सत्या तस्याः माहात्म्यमीदृशम्।
पापमुक्तास्तुते सर्वे पञ्चचौरास्तथापरे।।२२।।

मुमुक्षवस्तु ये केचिदयोध्यां समुपासते।
कृतान्तस्य वचः श्रुत्वा मलिनौ द्वौ बभूवतुः।।२३।।

गतः परिश्रमो ह्यावां[4] बहुकालकृतौ [5]लिपौ।
एवं भवतु[6] भो काल लेखनोदुपरता[7] वयम्।।२४।।

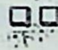
जन्मभूमेस्तु रामस्य यदि पापानि यान्ति वै।
पापिनस्तु गमिष्यन्ति साकेतं रामजन्मनि।।२५।।

गतपापाः भविष्यन्ति कलिकाले तु पामराः।

सूत उवाच-

एवं विश्राव्य तस्याग्रे विवर्णवदनौ[8] तु तौ।
समार्ज्जतु लिपिं शीघ्रं चौराणां पापसम्भवाम्।।२६।।

इति श्रीसत्योपाख्याने सूतशौनकसंवादे
चतुर्त्रिंशोध्यायः।



---

१. चा-
२. लेपणं-क
३. पापपङ्क्तिस्तु-ग
४. ह्यैवम्-क
५. कृतालपौ-ग
६. चित्रगुप्तोवाच-क
७. लेषणोपरता-क
८. विवर्णवदने-ग

पञ्चत्रिंशोऽध्याय:

श्रीसूत उवाच-

यमेन प्रेषिताः दूताः पर्यटन्ति सदा क्षितौ।
पुर्याः परिसरे ते तु ददृशुः पापविग्रहान्।।१।।

यमदूत उवाच[1]-

के यूयं पिप्पले स्थित्वा दुःखशोकपरायणाः।
किं कर्तुमाश्रिताः यूयं पिप्पले कुत्र[2]वासिनः।।२।।

पापविग्रहाः ऊचु-

मरुकान्तारे चोत्पन्ना पापिभिः प्रतिपालिताः।
मातरं पितरं त्यक्त्वा मर्यादां वेदसम्भवाम्।।३।।

अस्मासु प्रीतिसंयुक्तास्तैर्वयं प्रतिपालिताः।
ते वयं यात्रिसङ्गेन साकेतं प्रति चागताः।।४।।
ताडिताश्च वयं सर्वे पुर्य्या विमलया स्वया।।५।।

देहं त्यक्त्वा च तेषां तु दुःखितात्र वसेमहि।
[3]नवमी चैत्रमासस्य शुक्ल चाद्य प्रवर्तते।।६।।

तस्याः व्रतप्रभावेन सरयूस्नानतः पुनः।
दर्शनाद्रामदेवस्य जन्मभूमेर्विलोकनात्।।७।।

नाम्ना सन्तानकं लोकं विमानैस्तत्र ते गताः।
तेषां वियोगदुःखेन मित्राणां गमनेन च।।८।।

यैरिमे[4] पालिताः मित्रैः धर्मं त्यक्त्वा महात्मभिः।
ते परित्यज्य वास्माकं लोकसन्तानकं गताः।।९।।

---

१. यमदूताः ऊचतुः-ग

२. कुत्ते-क

३. 'नवमी- पुनः' पर्यन्तं ग-मातृकायां नास्ति।

४. यैरहं-ग

मित्रसङ्गवियोगेन दुःखिताश्चात्र संस्थिताः।

सूत उवाच-

मनो वै करुणायां तु दूतानां संबभूव ह।।१०।।

अब्रुवन् वचनं क्रूरं पापरूपान् सांत्वयन्।

यमदूताः ऊचुः-

सहायं तु करिष्यामो युष्माकं मित्रमेलने।।११।।

कार्यं तु विद्यतेऽस्माकं हता चाज्ञा यमस्य भो[1]।
ईदृशी विमला धृष्टा पापिनां च गतिप्रदा।।१२।।

भवद्भिः स्थीयतां चात्र यावत् ब्रूमो यमं प्रति।

सूत उवाच-

इत्युक्त्वा संयमनीं[2] जग्मुर्यमदूतास्त्वरान्विताः।।१३।।

यमं निवेदयामासुः पापानां दुःखमेव च।

श्रीयम उवाच-

विमलायाश्च माहात्म्यं शुक्ला च नवमीस्तथा[3]।।१४।।

एतैर्नज्ञायते दूतैर्महिमा चक्रपाणिनः।
जन्मभूमेस्तु माहात्म्यं वक्तुं शक्तो न पद्मजः।।१५।।

पापकोटिसमायुक्तश्चेत्रै नावमिके[4] तिथौ।
पापकोटिनरस्त्यक्त्वा जन्मभूमेः प्रदर्शनात्।।१६।।

प्राप्नोति परमं लोकं यत्र गत्वा न शोचते।
प्रसन्ना यस्य सत्या चेत्तस्य किं कुरुते यमः।।१७।।

भवतो[5] दुष्टबुद्धिस्तु याता वै विमलां प्रति।
क्षमापनार्थं[6] वयं तस्याः गमिष्यामोऽधमाः चिरम्।।१८।।

---

१. नो-ग

२. यमनीं-ग

३. नवम्यामघोस्तथा-ग

४. नवमिके-ग

५. भवतां-ग

६. क्षामनार्थं-क

श्रीसूत उवाच-

इत्युक्त्वा यमराजोऽपि भूतप्रेतगणैः वृतः।
आरुह्य महिषं वेगात् सत्यां प्रतिजगाम ह।।१९।।

साकेतनिकटे दृष्टो विश्वकर्म च शिल्पिराट्।
यमराजेन सः पृष्टः[१] कुत्रः[२] त्वया गम्यतेऽधुना।।२०।।

नवमी विद्यते चाद्य तां त्यक्त्वा कुत्र यास्यसि।

विश्वकर्मोवाच -

[३]आगम्यते तु साकेतात् स्नात्वा श्रीसरयूजलैः।
दर्शनं जन्मभूमेस्तु देवैः सार्द्धं कृतं मया।।२१।।
ब्रह्मणा तत्र चाज्ञप्तो गमिष्यते तत्पदं ध्रुवम्।।२२।।

तत्र गत्वा च वेश्मानि करिष्ये यात्रिणामपि।
नवमीव्रतिनां तत्र सरयूस्नापिनां पुनः।।२३।।

जगाम चातिवेगेन यमं विश्राव्य कारणम्।
निशम्य तत्मुखोद्गीते[४] यमभृत्यो[५] विसस्मरे।।२४।।

जगाम यमराजोपि साकेतनगरोद्भवम्।
माहात्म्यं श्रावयन् भृत्यान् तमसां तु ददर्श ह।।२५।।

महिषं च परित्यज्य ननाम बिभृताञ्जलिः।
आदौ प्रणवमुच्चार्य विमलायै तु मध्यतः।।२६।।

नमश्चान्ते तु सम्पूज्य मन्त्रोयं समुदाहृतः।
सोन्वधावच्च[६] वेगेन यत्र पुर्याः मुखे स्थिते[७]।।२७।।

गोप्रतारं सिरस्तस्यास्ततः पूर्वं तु कण्ठकम्।
तटे स्थित्वा सरय्वायाः[८] सत्यायाः स्तुतिं मुहुः[९]।।२८।।

---

१. सम्पृष्टः-ग

२. क, कुत्र-ग

३. इदं वाक्यं कमातृकायां नास्ति। 'आगम्यते- तत्पदकं ध्रुवम्' पर्यन्तमं भागः 'तत्र गत्वा.....(२३) श्लोकादनन्तरं वर्तते ग-मातृकायाम्)

४. गीतं-ग   ५. यमभृत्याः-ग

६. द्धि-ग   ७. मुखं स्थितं-ग

८. सरव्यास्तु-ग   ९. मुहुर्मुहुः-ग

अब्रवीत् परया वाण्या मेघनादगभीरया।

श्रीयमराजोवाच-

अयोध्यायै नमस्तेस्तु राममूर्त्त्यै नमो नमः।
आद्यायै तु नमस्तुभ्यं सत्यायै च नमो नमः।।२९।।

सरय्वा वेष्टितायै च नमो मातस्तुभ्यो सदा।
ब्रह्मादिवन्दिते मातः ऋषिभिः पर्युपासते।।३०।।

रामभक्तप्रिये देवि सर्वदा ते नमो नमः।
ये ध्यायन्ति महात्मानो मनसा त्वां हि पूजिते।।३१।।

तेषां नश्यन्ति पापानि ह्याजन्मोपार्जितानि च।
अकारो वासुदेवः स्यात् यकारस्तु प्रजापतिः।।३२।।

उकारो रुद्ररूपस्तु तान् ध्यायन्ति मुनीश्वराः।
सूर्यवंशोद्भवानां तु राज्ञां परमधर्मिणाम्।।३३।।

तेषां सामान्यधातृत्वं तथा सुकृतिनामपि।
न जानन्ति महिम्नो तं तव देवि मुनीश्वराः।।३४।।

कथं तु ज्ञायते दूतैर्मदीयैर्बुद्धिवर्जितैः।
नमस्तेस्तु सदा देवि सर्वा[1] देवि नमो नमः।।३५।।

नमोयोध्ये नमोयोध्ये पापं नस्त्वमपाकुरु।

श्रीसूत उवाच-

स्तुत्वैवं विररामाथ सूर्यपुत्रो महात्मना।।३६।।

अयोध्या दर्शयामास तनुं स्वान्तस्य प्रीतये।
वन्दिता यमराजेन सत्या प्राह यमं त्विदम्।।३७।।

श्रीसत्योवाच-

वरं ब्रूहि महाबुद्धे प्रीताहं ते न संशयः।
यदर्थं चागतोसि त्वं तन्ममाग्रे च भण्यताम्।।३८।।

यमराजोवाच-

प्रसन्नामपि मातश्चेदिह स्थानं च कंठके।
चौरेभ्यस्तु गताः ये तु पापरूपाः च पिप्पले।।३९।।

---

१. सदा-ग

तेषां मोक्षविधानं च कथ्यतां देवि मे पुरः।
मम दूतापराधश्च क्षम्यतां हरिपूजिते[1]।।४०।।

श्री अयोध्योवाच-

यमस्थलेति विख्यातं स्थानं ते [2]सरयूतटे।
उर्ज्जे मासि सिते पक्षे द्वितीयायां तु ये यमः।।४१।।

स्नास्यन्ति च नराः सर्वे तेषां तव भयं न हि।
यानि तिष्ठन्ति पापानि चौराणां पिप्पले तथा[3]।४२।।

विलयं यान्तु भो देव ममवाक्यात्तवापि च।
ममेदमष्टकं यस्तु त्वया भक्त्या च यत् कृतम्।।४३।।
प्राप्नोति सकलानर्थान् मया दत्तान्नरः शुभान्।।४४।।

सूत उवाच-

विश्राव्य वचनं सत्या यमावान्तर्दधे स्वयम्।
तेन स्थितिं तदा चक्रे वाशिष्ठ्यां पुलिने शुचौ।।४५।।

चित्रगुप्तो च ते दूताः लज्जिताश्चाभवन्मुहुः।
विग्रहास्तु गता नाशं पापानां तु क्षणात्तदा।।४६।।

भ्रातापि यमुनायास्तु स्थानं कृत्वा पुरः गतः।
माहात्म्यं विमलायास्तु दूतेभ्यः श्रावयन् बहुः।।४७।।

श्रीअगस्त्य उवाच-

माहात्म्यमीदृशं तुभ्यं मया ते बहुवर्णितम्।
जन्मभूमेरयोध्यायां नवम्यां च मुनीश्वरः।।४८।।

य इदं श्रृणुयान्नित्यं यश्चापि परिकीर्तयेत्।
भुक्त्वा च विपुलान् भोगान् अन्ते चापि गतिं लभेत्।।४९।।

श्रीसूत उवाच-

अगस्त्येन पुरा प्रोक्तं सुतीक्ष्णाय च शौनक।
अहं श्रुत्वा सुतीक्ष्णाच्च रामभक्ताय चाब्रुवम्।।५०।।

---

१. हरिपूजित-ग

२. श्री-ग

३. हि च पिप्पले-ग

न शठाय प्रवक्तव्यं नातपस्काय पापिने।
निन्दकाय गुरूणाञ्च वेदानाञ्च तथैव हि।।५१।।

निन्दकाय च पुण्यानां [1]तेषां न कथयेत् क्वचित्।
ब्रूयाच्छ्रद्भावते[2] चैव भक्तिश्चेच्छूद्रयोषिताम्।।५२।।

विष्णुभक्ताय प्रेम्णा वै स्वयं ब्रूयात् विचक्षणः[3]।
पठने श्रवणे चास्य पापपर्वतदारणम्।।५३।।

इति श्रीसत्योपाख्याने सूतशौकसंवादे अगस्त्यसुतीक्ष्णसंवादे श्रीरामनवमीमाहात्म्ये पञ्चत्रिंशोऽध्यायः।।३५।



१. तस्मै-ग
२. पुराणानां-ग
३. ब्रूयाच्छद्धावते-ग

षट्त्रिंशोऽध्यायः

श्रीशौनक उवाच-

भो भो सूत महाबुद्धे[१] स्मृतिमन्मतिमन्विभो।
रहस्यं रामचन्द्रस्य भक्तानां भक्तिवर्धनम्।।१।।

कृपां कृत्वा तदाचक्ष्व गोप्यकार्यं रसायनम्।
श्रोतुं वक्तुं[२] स्थिरस्नेहं मादृशं यदि मन्यसे।।२।।

अविच्छिन्नं भवेत्तन्मे श्रोतुं संस्त्वरते[३] मनः।
श्रुतं रामायणं भूरि सीतायाश्चरितं मुहुः।।३।।

तृप्तिर्नैति मनो मे वै पिबन् रामामृतं बहुः[४]।
विहारो रामचन्द्रस्य न व्यासेन मया श्रुतम्।।४।।

विद्याभ्यासस्य तदा बाल्ये[५] दुःखं ते नाभ्यभूयते[६]।
विप्रे[७] शुश्रूषणा क्लान्तिः लोकाह्लादकृतत्क्रमः।।५।।

यस्तु[८] स्नेहभवोऽन्धो अंधकूप इवा क्षयम्।
अन्वभूयन्ते ते नासीत् कौमार्यं[९] मृदुलात्मना।।६।।

---

१. महाभाग-ग
२. धर्तुं-ग
३. सत्वरते-ग
४. मुहुः-ग
५. विद्यामभ्यास्यभावाल्पे-ग
६. नान्वभूयत-ग
७. पित्रो-ग
८. बन्धु-ग
९. कौमार्ये-ग

यौवने वनवासेन कालो क्षिप्तोऽक्षतात्मना।
प्रजापालनपीडाथ जागोद्वेगोप्यभुज्यत।।७।।

रामो नारायणः साक्षादैश्वर्यं तस्य विस्तृतम्।
बहुधा तत् पुराणेषु श्रुतं सीतापतेर्मया।।८।।

माधुर्य्यं न हि रामस्य मया क्वापि श्रुतं द्विजः।
कृपां कृत्वा तमावक्ष्व माधुर्यं खेटकादिकम्।।९।।

श्रीसूत उवाच-

भवादृशा यदि कृपां मयि कुर्युः सुपेशलाम्।
कृतं प्रश्नं त्वया श्रेयं तन्मया कथ्यतेऽधुना।।१०।।

जिह्वां लब्ध्वापि या विष्णुं कीर्तनीयं न कीर्तयत्।
लब्ध्वापि मोक्षनिःश्रेणीं स नारोहति दुर्मतिः।।११।।

तेनाहं वर्णयिष्यामि चरित्रं परमात्मनः।
आत्मारामोऽपि श्रीरामः सुखाय जगतां प्रभुः।।१२।।

वर्द्धयामास स्वं रूपं पित्रोरानन्दकारकम्।
पित्रो प्रेमहृदा चैव जनानन्दकरैस्तथा।।१३।।

इच्छया च ह्यमूढानां चरितं च रघोः पतिः।
अनुभूय सतां चैव ह्यात्मनः प्रभुता तथा।।१४।।

नेत्रोत्सवैः च नारीणामाशीर्भिश्च द्विजन्मनाम्।
उत्तमेनैव गानेन मुदा रामो हि ववृद्धे।।१५।।

सखायो रामचन्द्रस्य तथा ववृधिरे समम्।
रामस्तु बालकैस्सार्द्धं विक्रीडे च गृहाजिरे।।१६।।

वृषस्कंधो सखा कश्चित्तस्य स्कन्धे रुरोह च।
तथा भरतशत्रुंघ्नौ लक्ष्मणश्च निजान् सखीन्।।१७।।

चामरैः वीज्यमानाश्च तथा बालै[illegible]।
अलकैः कंम्पमानैश्च मुखेन परिशोभितः।।१८।।

यन्त्रैः मन्त्रैस्तथा मात्रा रक्षिताः प्रभुरीश्वरः।
अङ्गेऽङ्गे तथा दिव्यं भूषणं विदधत् प्रभुः।।१९।।

दिव्यगन्धानुलिप्तश्च मातुः करेण भोजनम्।
अन्नं चतुर्विधं शुभ्रं भ्रातृभिः सखिभिस्तथा।।२०।।

बिभुजे यज्ञभुक् स्वामी[1] रामो नाम रमापतिः।
सखास्कन्धगतो रामो भ्रातृभिर्द्वारि निर्ययौ।
शिरसा धारयन् रामो स्वर्णसूत्रस्य पट्टिकाम्।।२१।।

कञ्चुकञ्च महादिव्यं स्वर्णसूत्रेण शीलितम्।
द्वारे देशे विनिर्गत्यं रामो राजीवलोचनः।।२२।।

तथा भरतशत्रुघ्नौ लक्ष्मणश्च महामतिः।
तथा वेषेण ते बालाः[2] क्रीडां चक्रुर्मनोरमाम्।।२३।।

शतशो नागरास्तत्र रामं दृष्ट्वा मुदं ययुः।
बालवृद्धाः पुरंध्र्यश्च लेभिरे परमां मुदम्।।२४।।

शुक्रमासस्य पूर्णायां राजा दशरथो नदीम्।
रामनिर्गमनात् पूर्वं सरयूस्नातुमागतः।।२५।।

रघुनाथः सखीन् प्राह तातः क्वास्ति ममाधुना।
तत्र सर्वे व्रजिष्यामो व्रजिष्यामोऽद्य मा चिरम्।।२६।।

वेत्रधराः ऊचूः-

स्नानार्थं गतो राजा ह्यधुना वै सरयूनदीम्।
श्रीमद्भिस्तत्र गन्तव्यं निकटे वर्तते मनः।।२७।।

इति वाक्यं तु तेषां वै रामः श्रुत्वा च [3]बालवत्।
हास्यं कृत्वा मुहुश्चोच्चैर्गच्छगच्छेति चाब्रुवन्।।२८।।

ताडयामास तं पद्भ्यां यस्य स्कन्धे च तस्थिवान्।
अधावत् सोऽपि[4] वेगेन बालैः सार्धं महाबली।।२९।।

सरयूं प्रति ते सर्वे बालास्तूर्णं प्रतस्थिरे।
मार्गे तत्र नराः नार्यो रामं दृष्ट्वा मुदं ययुः।।३०।।

राजापि सरयूतीरे कृत्वा सन्ध्याजपादिकम्।
गन्तुं चक्रे मनस्तावद् वशिष्ठादिभिरन्वितः।।३१।।

---

१. मुक्त्वा च यज्ञमुक्त्वामी-ग
२. बेताल-ग
३. बालकात्-क
४. सोऽति-ग

बालाः सर्वे समाजग्मुः शतशोऽथ सहस्रशः।
चाराः आगत्य वेगेन रामागमनमब्रुवन्॥३२॥

क्षणं तस्थौ तदा राजा कुमारागमनहर्षितः।
[1]चतुराणां चतुर्ण्णां[2] तु चत्वारश्चतुरैः सह॥३३॥

बालकैस्ते कुमारापि[3] भूपतेर्निकटं ययुः।
प्रोतीर्य्य च वयस्यानां स्कन्धेभ्यो बालकास्तथा॥३४॥

नृपस्य निकटे तस्थू रामोऽङ्के[4] च समारुहत्।
कुट्टे[5] परमविस्तीर्णे स्वर्णसूत्रेण रंजिते॥३५॥

निवेश्य च बालकान् सर्वान् रामं प्राह नृपोत्तमः।
दण्डवत् क्रियतां वत्स वाशिष्ठ्यै च पुनः पुनः॥३६॥

नरेशस्य वचः श्रुत्वा बालाः सर्वे नदीं प्रति।
साष्टाङ्गप्रणितिं[6] चक्रु प्रेम्णा रामादयोऽर्भकाः॥३७॥

पुनर्निवेश्यतामग्रे कृत्वा च करकुड्मलम्[7]।
जगदे[8] सरयूं राजा सर्वेषां चैव शृण्वताम्॥३८॥

इति श्रीसत्योपाख्याने सूतशौनकसंवादे
षष्टत्रिंशोऽध्यायः॥३६।



---

१. अयं श्लोकः क- मातृकायां नास्ति।
२. चतुराणां-ग
३. कुमाराश्च-ग
४. रामोऽङ्के-ग
५. पीठे-ग
६. साष्टांग प्रणतिं-ग
७. करकुडमले-ग
८. जगर्द-ग

सप्तत्रिंशोऽध्यायः

श्रीराजादशरथ उवाच-

नमस्ते सरयूदेवि वशिष्ठतनये शुभे।
ब्रह्मादिसकलैर्देवैः ऋषिभिः नारदादिभिः।।१।।

सदा त्वं सेविते देवि तथा सुकृतिभिर्नरैः।
मानसाच्च समायाते जगतां पापहारिणी।।२।।

स्मरतां पश्यतां देवि पापनाशे पटीयसी।
ये पिबन्ति जलं देवि त्वदीयं गतमत्सराः।।३।।

ते न मातुः स्तनं पानं करिष्यन्ति कदाचन।
मनुप्रभृतिमान्यैस्त्वं मानितासि सदा शुभे।।४।।

त्वत्तीरे मरणेनैव[1] त्वन्नामरटनेन वै।
ये त्यजन्ति तनुं देवि कृतार्थाः न संशयः।।५।।

[2]नेत्रोद्भवादेवि हरेः श्रीमन्नारायणस्य[3] हि।
महिमा तव वेदैश्च गीयन्ते च मुहुर्मुहुः।।६।।

तत्र का मम शक्तिर्हि स्तवने मानुषस्य च।
त्वत्तीरे[4] सर्वतीर्थानि निवसन्ति चतुर्युगे।।७।।

नमो देवि नमो देवि पुनरेव नमो नमः।
हे वाशिष्ठे महाभागे प्रणतं रक्ष बन्धनात्।।८।।

इमे बालास्त्वदीयाश्च वर्तन्ते[5] शरणं तव।
एते रक्ष्याश्च पोष्याश्च तटे देवि सदा पुनः।।९।।

---

१. त्वत्तीररमणेनैव-ग

२. ग-मातृकायां 'नेत्रोद्....' पदात् पूर्वं 'त्वं तु' वर्तते।

३. नारायणस्य हि-ग

४. त्वन्नीरे-ग

५. व ताम्व-क

तथाष्टकं[1] विधायाथ पुत्राणामुदयाम च।
स्वर्णलक्षं च[2] विप्रेभ्यः पुत्रहस्तेन दापयत्।।१०।।

राज्ञः स्तवं समाकर्ण्य सरयूः कामरूपिणी।
दर्शनार्थं कुमाराणामाजगाम तटे निजम्।।११।।

सर्वाङ्गेषु दधाना सा भूषणानि मनोहरा।
आगत्य निकटे तस्थौ बालानां सन्मुखे सरित्।।१२।।

जग्राह चरणौ तस्याः बालैः सह नरेश्वरः।
आशिषः सरयूः दत्त्वा राममङ्के न्यवेशयत्[3]।।१३।।

मुक्तामालां तु रामस्य ददौ कण्ठे स्वयं मुदा।
घ्राणं चकार मूर्ध्नस्तु प्रेम्णा सा सरयूर्नदी।।१४।।

भूपतिं जगदे सा तु शृणु राजन् वचो मम।
इमे च बालका इष्टाः[4] सर्वेषां मण्डगोलके।।१५।।

वसन्ति मम कुक्षौ हि पश्यतां ज्ञानचक्षुषा।
त्वया कृतमिदं यस्तु चाष्टकं च पठेन्मम।।१६।।

स्नानस्य सर्वतीर्थानां फलमाप्नोति मानवः।
उक्त्वैवं दर्शयामास रामादीन्निजकुक्षिके।।१७।।

दृष्ट्वा दशरथो राजा विस्मयं परमं गतः।
पप्रच्छ तां प्रणम्यादौ कदोत्पन्ना सरिद्वरे।।१८।।

वशिष्ठेन समानीता मनो स्वायंभुवै सति।
वाशिष्ठीति समाख्याता पुत्राः मे हृंदये धृताः।।१९।।

कथ्यतामिति मे पृष्टं स्वमुखेनैव हे नदि।

सूत उवाच-

उवाच सरयू भूपं वाचा गम्भीरया नदी।।२०।।

श्रूयतां नृपशार्दूल चोत्पत्तिं कथयामि ते।

श्रीसरयू उवाच-

सृष्ट्यादौ च यदा ब्रह्मा पद्मनाभस्य नाभितः।।२१।।

---

१. नद्याष्टकं-ग

२. स्वर्ण तत्पञ्च-क

३. निवेशयेत्-क

४. इमं च बालकमिष्टं-क

जज्ञे च विष्णुनाज्ञप्तस्तपसाराधयेति माम्।
तदा धाता तपः कर्तुं मनश्चक्रे निजासने।।२२।।

दिव्याब्दानां सहस्त्रं च कुम्भकेन व्यवस्थितः।
ध्यायन् भगवतो रूपं यदाहुः ध्यानगोचरम्।।२३।।

निर्देशे वर्तमानं तु[१] विज्ञाय कमलापतिः।
आरुह्य गरुडं वेगात्त्रयाल्लोकात् समागतः।।२४।।

तं तदा तादृशं दृष्ट्वा निजभक्तिपरायणम्।
कृपया सम्परीतस्य[२] नेत्राज्जलं मुमोच ह।।२५।।

पस्पर्श पाणिपद्मेन पद्मनाभो हि पद्मजम्।
स्पर्शनात् पद्मनाभस्य सुखं प्राप [३]पितामहः।।२६।।

सुखितेनैव[४] स्पर्शेन तत्यजे[५] कुंभकं विधिः।
उन्मील्य नयनेऽपश्यल्लोकनाथं जगत्पतिम्।।२७।।

प्रणम्य दण्डवद् ब्रह्मा तस्यापश्यच्च माधुरीम्।
पतितं विष्णुनेत्राच्च जलं जग्राह पाणिना।।२८।।

कमण्डलौ स्थापयामास प्रेम्णा तत्र पितामहः।
चतुर्भिर्वदनैर्ब्रह्मा तुष्टाव जगतां पतिम्।।२९।।

सः स्तोत्रेण[६] प्रसन्नोऽभूद् वरं दत्वा जगाम सः।
ब्रह्मापि तज्जलं ज्ञात्वा ब्रह्मद्रवमिदं शुभम्।।३०।।

मनसा रचयामास मानसं सर एव सः।
जलं[७] तु सरसस्तस्मिंश्चक्रे न्यासं च पद्मजः।।३१।।

जलस्य द्रुहिणो ज्ञात्वा माहात्म्यं परमाद्भुतम्।
स्वयं तु जगतां सर्गे सम्बभूव पितामहः।।३२।।

---

१. तं–ग
२. सम्परीतस्तु–ग
३. यदा महान्–क
४. सुशीतेनैव
५. तायाज–क
६. स्तोत्रेणाति–ग
७. जले–ग

बहुकालगते[१] ह्येवमिक्ष्वाकुः पूर्वजस्तव।
अभवत् पृथिवीपालस्तेनाज्ञप्तो स्वयं मुनिः।।३३।।

वशिष्ठो मानसं गत्वा नद्यर्थं मञ्जुकेशिनम्[२]।
तुष्टाव सः प्रसन्नोऽभूद् वरं ब्रूहि द्विजोत्तमः।।३४।।

वव्रे मुनिर्नदी तस्मात्तेन दत्तं[३] च नेत्रजम्।
जलं यन्मानसे न्यस्तं ब्रह्मणा ब्रह्मयोनिना।।३५।।

नदीरूपेण साहं वै सरसस्तु विनिर्गता।
प्राप्तायोध्यां वशिष्ठस्तु पश्चादहं तु तस्य वै।।३६।।

विष्णुनेत्रसमुत्पन्ना विष्णुं कुक्षौ बिभर्म्यहम्।
ये ध्यायन्ति सदा रामं ममकुक्षिगतं नराः।।३७।।

तेषां भुक्तिश्च मुक्तिश्च भविष्यन्ति न संशयः।
रामं विद्धि परब्रह्म सच्चिदानन्दमद्वयम्।।३८।।

भक्तानां रक्षणार्थाय दुष्टानां च वधाय च।
जातस्तव गृहे राजन् तपसा तोषितस्तव।।३९।।

विश्राव्य चात्मनोत्पत्तिमन्तर्धानं[४] च सा गता।
अयोध्यावासिनः सर्वे विस्मयं लेभिरे परम्।।४०।।

धन्यो दशरथो राजा धन्येयं सरयू नदी।
इति श्रुत्वा च धर्मात्मा धार्मिकानां शिरोमणिः।।४१।।

ततो दशरथो राजा विज्ञाप्य चात्मनो गुरुम्।
आजगाम गृहं तूर्णं बालैः सह महामतिः।।४२।।

एवं विधानि रम्याणि रामचन्द्रस्य सन्ति वै।
चरितानि च मिष्टानि पापनाशकराणि च।।४३।।

सुखं दातृणि श्रोतृणां[५] कथितानि मया त्वयि।
अतः परं महारम्यं चरितं ते वदामीदम्[६]।।४४।।

---

१. बहुकाले गते-ग।
२. नद्यर्थं मुंज्केशिनं-ग
३. दत्ते-क
४. चात्मनोत्मनोत्प्रतिंमंतर्द्धानं-ग
५. सुखदानि-ग
६. वदाम्यहं-ग

रामचन्द्रो रमानाथो जिह्वा या वक्ति मे स्वयम्।
न वक्ता चेत् स्वयं रामो रहस्यं तु कथं गृणे।।४५।।

इति श्रीसत्योपाख्याने सूतशौनकसंवादे
सप्तत्रिंशोऽध्यायः



अष्टत्रिंशोऽध्यायः

श्रीसूत उवाच-

सखायो रामचन्द्रस्य बहवः सन्ति शौनकः।
शत्रुघ्नो भरतश्चैव लक्ष्मण परवीरहा।।१।।

प्रतापी शत्रुनाशश्च प्रतापग्रो युधिष्ठिर।
सुकर्मा सुष्ठुरूपश्च विजयश्च जयस्तथा[1]।।२।।

सुकण्ठो दीर्घबाहुश्च सुशिराश्चातिविक्रमी।
चारुचन्द्रश्च भानुश्च रिपुवारस्तथारिजित्।।३।।

तथा शीलः सुशीलश्च गजगामी मनोहरः।
सबलाश्वो हरिदश्वश्च तथान्ये च सहस्त्रशः।।४।।

सखायो रामचन्द्रस्य क्रीडनार्थं सदैव हि।
वर्तन्ते निकटे तस्य राज्ञा चैवाभिनन्दिताः।।५।।

सदा चागत्य रामस्य विविशुः परितोऽर्भकाः।
कौशल्यायाः गृहे सूदाः[2] नियुक्ताः पाककर्मणि।।६।।

अहं पूर्वमहं पूर्वं रामर्थं पाचयाम्यहम्।
इति प्रीतेन मनसा रामपाके सदा रताः।।७।।

पीवराः सर्वभूषाढ्याः मणिकुण्डलधारिणः।
पाकं कृत्वा विधानेन चातुर्विधमनुत्तमम्।।८।।

राममाहूय प्रेम्णा च भोजयन्तः सखींस्तथा।
कृत्वा तु भोजनं बालाः सह रामेण चाकृताः।।९।।

बहिर्गत्य गृहात्तूर्णं चक्रुः क्रीडां मनोहराम्।
चत्वारश्चतुराः[3] बालाः पीतकञ्चुकभूषिताः।।१०।।

---

१. जयश्च विजयस्तथा-ग

२. शूद्राः-क ३. चतुरो-ग

पट्टिकां स्वर्णसूत्रस्य दधानाः शिरसा पुनः।
उपानहः[1] स्वर्णसूत्रेण ग्रन्थिताः[2] मणिभिः सह।।११।।

दधानाः बालकाः पद्भ्यां मणिभूषणभूषिताः।
शिरसा धारयन् सर्वे मणिमौक्तिकमञ्जरीम्।।१२।।

यैः ते हि[3] बालकाः दृष्टाः पुण्यैः पूर्वकृतैर्नरैः।
उर्ध्वं तु नाकलोके[4] वै गन्तुं नेष्ट इतो हि तैः[5]।।१३।।

इन्द्रनीलनिभो राम चिक्रीडे नगराजिरे।
कन्दुकं च करे गृह्य बालकैः सह क्रीडति।।१४।।

तथा क्रीडन्ति बालाश्च यथा रामो हि क्रीडति।
वीथिं वीथिं जगामाथ क्रीडार्थं रघुसत्तम।।१५।।

अजडाश्च जडाश्चैव सप्राणा इव तेऽभवन्।
प्रदुद्रावः क्षणं तत्र क्षणे[6] तस्थौ तदा प्रभुः।।१६।।

उत्क्षाल्य[7] कन्दुकं प्रोच्चैर्बिभर्ति पाणिना पुनः।
दूरे निक्षिप्य वेगेन पतङ्गं धावति द्रुतम्।।१७।।

तथैव बालकाः सर्वे कन्दुकं प्रति विह्वलाः।
कंदुकं गृहीत्वाग्रे रामाय चार्पयते पुनः।।१८।।

पुनर्निक्षिप्य वेगेन रामो धावति वेगतः।
शत्रुघ्नो भरतश्चैव लक्ष्मणश्च महाबलः।।१९।।

गृहीत्वा कन्दुकं वेगात् शीघ्रं रामाय चार्पयन्।
कोलाहलोऽपि बालानां शृण्वन्ति जनतास्तदा।।२०।।

नराः नार्योमरप्रख्याः पश्यन्ति सततं शिशून्।
महापुण्यसमूहेन नानाजन्मोद्भवेन च।।२१।।

---

१. उपाहनः-क

२. ग्रथिताः-क

३. येर्हि-ग

४. उर्द्धतुं नागलोके-क

५. हिते हतैः-क

६. क्षणं-ग

७. उत्क्षाल-ग

वीथीं त्यक्त्वा च अन्येषां[1] यदा याति हरिः स्वयम्।
जनानां पश्यतां चैव प्राणा[2] इव प्रयान्ति हि।।२२।।

कार्यं त्यक्त्वा तु नारीभिर्वीक्षितास्ते रघूद्वहाः।
हेतवो दौस्थ्यतायास्त[3] नारीणां ते तदा[4]भवन्।।२३।।

गुरुह्रियं परित्यज्य नानाभावै[5]र्विलोकयन्।
मोहिताः रामरूपेण नात्मानं विविदुस्त्रियः।।२४।।

मन्दं मन्दं हसन् रामो हासयंश्च निजान् सखीन्।
अयोध्यानगरे रम्ये चिक्रीडे भरताग्रजः।।२५।।

दूरे याति यदा रामः कन्दुकार्थं रमापतिः।
अहं पूर्वमहं पूर्वं राम बालाभिरेभिरे।।२६।।

कन्दुकेन क्षितिं रामः स्पृशन्निच्छति वर्त्मनि।
तथैव बालकाः सर्वे नानावेषधराः वराः।।२७।।

क्रीडित्वा नगरे वीथ्यां पुनरायान्ति बालकाः।
यत्र राजा दशरथस्तत्र रामादयोऽगमन्।।२८।।

तदा रामं निजाङ्के तु स्थापयामास भूपतिः।
मूर्ध्न्याघ्राणं चकाराशु मातुरन्तःपुरं ययौ।।२९।।

उत्थाय भ्रातृभिस्सार्द्धं सखीभिः परिरक्षिता।
मातृभिः लालिताः बालाः भुक्त्वा क्षीरोपसेचनम्[6]।।३०।।

यस्मिन् यामे च या लीला तस्मिन् यामे कृता हि तैः।
क्रीडित्वा सुचिरं[7] कालं मातुरन्तःपुराजिरे।।३१।।

---

१. न्यलेखां-ग
२. स वि-क
३. हेतवादौ स्थितायास्तु-क
४. ततो-ग
५. नाना वै-क
६. क्षीरोपसेवन-ग
७. स चिरं-क

कदाचिद् भूपतेरग्रे कदाचिज्जनवर्जिते।
दिनानि क्षणवत्ते[1] तु कुर्वाणां[2] कलभाः[3] सदा।।३२।।

रात्रौ स्वपन्ति ते गेहे मातृभिः सहितार्भकाः।
पयः फेनानिभाः शय्याः दान्ताः रुक्मपरिग्रहाः।।३३।।

आसनानि च हैमानि मृदूपस्तरणानि च।
पर्यङ्के शोभने रामो निनाय[4] शर्वरीमथ।।३४।।

तथा बालाश्च ते सर्वे ह्युषस्युत्थाय ते पुनः।
रामस्य निकटे जग्मु क्रीडनार्थे तु बालकाः।।३५।।

इति श्रीसत्योपाख्याने सूतशौनकसंवादे
अष्टत्रिंशोऽध्यायः।



१. क्षणवर्ते-ग
२. कर्मणा-ग
३. बालकाः-ग
४. निसाय-क

एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः

सूत उवाच-

एकदा प्रातरुत्थाय स्वल्पधनुरुपाददे।
तथैव चेषुधिं स्वल्पं दधार रघुनायकः।।१।।

तथा भरतशत्रुघ्नलक्ष्मणाद्याश्च बालकाः।
क्रीडनार्थं सख्यास्तु तीरे[1] चातिमनोहरे।।२।।

बालकैः सह रामोऽपि क्रीडां चक्रे मनोरमाम्।
लक्ष्यं कृत्वा तदा बालास्तस्मै बाणाममूमुचत्।।३।।

न मोघो जायते[2] बाणो बालानां लक्ष्यपातने।
नाशयामो वयं लक्ष्यं युष्माभिः प्रेक्ष्यतामिदम्[3]।।४।।

प्रेक्ष्यतां राम रामेश नो विवादो यथा भवेत्।
तथा कुर्म्मो वयं राम यथा देशो भवेत्तव।।५।।

पर्य्यायेणैव पातव्यं लक्ष्यं मित्राः परस्परम्।
इति श्रुत्वा तदा बालाः पर्य्याये विविधुस्तु तत्।।६।।

एवं क्रीडन्ति स्वैरं च रामाद्याः बालकास्तदा।
एवं चिक्रीडतां तेषां भोजनं चैव विस्मृतम्।।७।।

मध्याह्नं च[4] बभूवाथ न गृहाय समाययुः।
राजा दशरथो नूनं भोजनाय गृहं[5] ययौ।।८।।

---

१. मक्षयेस्तु भीरे-क
२. जयते-क
३. प्रेक्ष्यता त्विदं-ग
४. मध्याह्नो हि-ग
५. गृहे-क

पाकशालां समाविश्य भोजनाय प्रचक्रमे।
अन्नं चाग्रे समायातं शालिग्रामसमर्पितम्।।९।।

बुभुजे न तदा राजा पुत्राः मे कुत्र संस्थिताः।
तैर्विना नहि भोक्तव्यं भुञ्जेऽहं तु सुतैस्सह[१]।।१०।।

सूत उवाच-

नृपस्य वचनं श्रुत्वा सौविदल्लाः प्रदुद्रुवः।
कौशल्यां कैकेयीं जग्मुः सुमित्रां च तथा द्विजाः।।११।।

कुत्र सन्ति कुमारास्ते भुनक्ति न क्षितीश्वरः।
वाक्यं श्रुत्वा मुखं क्षीणाः[२] राजदारास्तदा[३] ब्रुवन्।।१२।।

श्रीराजदारा ऊचुः-

क्रीडन्ति सरयूतीरे धनुर्बाणधरार्भकाः।
शिबिकास्तत्र गच्छन्तु शिबिकावाहिभिस्त्वरा।।१३।।

आनयन्तु नृपस्याग्रे भुनक्तु नृपतिस्सुतैः।
महीशस्य तु पत्नीनां साज्ञया शिविकागताः।।१४।।

शिविकावाहाः ऊचुः-

आरुह्य शिविकां यूयं गच्छन्तु पितुराज्ञया।
भुनक्ति नृपतिर्नैव त्यक्त्वा युष्मान् महीपतिः।।१५।।

अन्ये बालाः ऊचुः-

गमिष्यामो शनैस्तत्र न तु क्रीडां त्यजेमहि।
शत्रुहावचनं प्राह रामस्य ह्यनुगाः वयम्।।१६।।

एवं ब्रुवत्सु बालेषु रामो राजीवलोचनः।
पितुराज्ञा समाकर्ण्य धनुर्बाणं तु चिक्षिपे।।१७।।

शिविकां च परित्यज्य बाहुस्फोटं चकार वै।
गम्यते तु मया बाला इति दुद्राव वेगतः।।१८।।

तथैव बालकाः सर्वे रामं पश्चात् प्रदुद्रुवुः।
धनुर्बाणं तु रामस्य किङ्कराः जगृहुस्तदा।।१९।।

---

१. स तु तैः-ग
२. तुषं गनां-ग
३. तथा-क

चत्वारो भ्रातरश्चाग्रे पश्चाद् बालाः त्वनेकशः।
दुद्रुवुः सर्वतो वेगाच्छिबिकायाः गतिर्नहि॥२०॥

अयोध्यानगरे रम्ये वीथ्यासु ददृशुः स्त्रियः।
रामादीन् बालकान् सर्वान् किमिदं बत दुद्रुवे॥२१॥

नराः नार्य्यस्तदा सर्वे वीक्ष्य रामं मुदं ययुः।
दृष्ट्वा[1] च शिविकावाहान्निःसन्देहास्तदाभवन्॥२२॥

रामोऽपि चातिवेगेन पाकशालां ययौ पितुः।
हस्तौ पादौ च प्रक्षाल्य भ्रातृभिः सखिभिः सह॥२३॥

मध्य[2]भूमौ समाविश्य बुभुजे भ्रातृभिः सह।
क्षितिपोऽपि तदा चक्रे भोजनं बालकैः सह॥२४॥

भुजन्नेव च पप्रच्छ रामं राजा प्रहर्षयन्।
तातपुत्रेतिप्रेम्णा वै लक्ष्यपातः[3] कृतो न वा॥२५॥

मोघो न जायते बाणास्तथाभ्यासं कुरुष्व त्वम्।
चललक्ष्यनिपातो च[4] शब्दोत्पत्ति[5]स्तथैव च॥२६॥

श्रीरामचन्द्र उवाच-

ईषद्[6] विकम्पते बाणो मम मुक्तो नरेश्वरः।
लक्ष्यं च पातयाम्यद्य तथा शिक्षय त्वं पितः॥२७॥

श्रीराजोवाच[7]-

शिक्षयामि महादिव्यां[8] विद्यां शस्त्रास्त्रधारिणाम्[9]।
तथैव भरतशत्रुघ्नलक्ष्मणेभ्यो ददाम्यहम्॥२९॥

---

१. पृष्टवा-क
२. मेध्य-क
३. लक्ष्यघातः-क
४. चललक्ष्यनिपातेन-ग
५. शब्दोत्थानि-ग
६. ईषच्च-ग
७. दशरथ उवाच-ग
८. महाविद्यां-ग
९. शस्त्रास्त्रधारिणीम्-ग

नरेशस्य तदा वाक्यं श्रुत्वा बालातिहर्षिताः।
एवं च नृपतिर्मुक्त्वा चाचम्योत्थाय चार्भकैः।।३०।।

ताम्बूलभक्षणं चक्रे लवङ्गैः सह राजराट्।
अन्तःपुरं जगामाथ बालकाश्च स्वमातरम्।।३१।।
तथान्यैश्चविहारैश्चयामान्निन्युश्चबालकैः।।३२।।

इति श्रीसत्योपाख्याने सूतशौनकसंवादे
एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः।



चत्वारिंशोऽध्यायः

श्रीशौनक उवाच-

बुद्धिर्मन्यतिमन् सूत रामपादाब्जषट्पद।
क्रीडामन्यां च रामस्य मह्यं ब्रूहि प्रसादतः।।१।।

श्रीसूत उवाच-

श्रूयतां च मुनिश्रेष्ठ कथा रामस्य पावनी।
यां श्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः।।२।।

चेटिकाः राजपत्नीनां कौशल्यादीनां शुभाननाः।
श्यामाः कमलपत्राक्ष्यः ऊचुर्वाक्यं परस्परम्।।३।।

रामादयः कुमारास्तु तिष्ठन्ति नो गृहे दिवा।
धनुर्बाणं गृहीत्वा तु क्रीडन्ति सरयूतटे।।४।।

माधुर्य्यं न च पश्यामो बालानां भो[1] गृहे वयम्।
तस्माद् वयं मुषित्वा च धनुर्बाणं [2]तथा ह्यसिम्।।५।।

धनुर्बाणं विना क्रीडा कथं क्रीडा च जायते।
एवं ताः संविदं कृत्वा कैशौर्यश्च कुतूहलात्।।६।।

धनुर्बाणं मुषित्वा तु गृहकोणे न्यवेशयत्।
कौशल्याद्याः न जानन्ति दास्याः तासां च निश्चयात्।।७।।

एवं जाते हि चौर्ये तु व्यतीता रजनी द्विज।
राज्ञः पुत्राश्च रामाद्याः जहुर्निद्रां च शीघ्रतः।।८।।

शौचं विधाय ते सर्वे बुभुजुर्मातृपाणिना।
एतस्मिन्नन्तरे बालाः समाजग्मुः सहस्त्रशः।।९।।

---

१. च-ग

२. इतः परं २३ श्लोकस्य पूर्वार्ध पर्यन्तश्लोकाः ग मातृकायां न सन्ति।

धनुर्बाणं तथा खड्गं गृहीत्वा निजवेश्मनः।
कौशल्याप्राङ्गणे तिष्ठन् रामार्थं सर्वबालकाः।।१०।।

बालान् वीक्ष्य तदा रामः क्रीडार्थं तु मनो दधे।
उवाच लक्ष्मणं रामो धनुर्मे दीयतामिति।।११।।

सतूणं चापखड्गं मे खेटकाय मनो मम।

सूत उवाच-

लक्ष्मणो गृहकोणेषु ह्यायुधार्थं जगाम ह॥१२॥

न ददर्श धनुर्बाणं खड्गं चापि चुकोप च ।
आजगाम तु रामस्य प्रहसन् लक्ष्मणो बली॥१३॥

नास्ति तत्र धनुर्बाणः खड्गोपि कनकत्सरुः।

सूत उवाच-

तच्छ्रुत्वा रामदेवश्च ज्ञात्वा तासां च मानसम्॥१४॥

आनन्दार्थं तु तासां वै चकार नरनाटकम्।
चत्वारो भ्रातरस्ते च कौशल्यां प्रपच्छुरुत्सुकाः॥१५॥

धनुर्बाणस्तथा खड्गः क्वास्ति मातः प्रदीयताम्।
माता प्रोवाच रामस्य नाहं जानामि पुत्रक॥१६॥

धात्रीं पृच्छ स्वधन्यां च सुमित्रां वा च कैकेयीम्।
इति प्रोक्तो जनन्या तु रामः प्रपच्छ मातरौ॥१७॥

मातरावूचतुः-

न जानीवो धनुर्बाणं तावकं च तथा ह्यसिम्।
नवीनं गृह्यतां वत्स मा च शोके मनः कृथाः॥१८॥

सूत उवाच-

रसज्ञो रामचन्द्रोऽपि मोदं दास्य हि योषिताम्।
प्रत्युवाच प्रसन्नात्मा धनुरर्थं सखीजनान्।।१९॥

धनुर्मे दीयतां सख्यो बाणं चापि तथा ह्यसिम्।
जग्राह प्रहसन् कांचित् भुजाम्यां रघुनन्दनम्।।२०॥

पुनरन्यां च जग्राह प्रहसन् राघवो मुदा।
कण्ठे पलायमानां च वादयन्तीं च नूपुरम्।।२१॥

स्थित्वा ह्युवाच रामं सा नाहं जानामि ते धनुः।
कुत्र चास्ति धनुर्बाणो दीयतां प्रमदोत्तमे।।२२।।

प्रत्युवाच तदा रामं सखी चातिमनोहरा।
श्रूयतां च वचस्त्वेतत्[1] भो कुमारकक्रीडिता[2]।।२३।।

धनुर्मे भृकुटी प्रोक्ता बाणौ तीक्ष्णौ हि चक्षुषी[3]।
इत्येवं ज्ञायते राम नान्यज्ञानामि ते शुभम्।।२४।।

तां च त्यक्त्वापरां रामो जग्राह श्रीफलस्तनीम्।
क्व चास्ति मे धनुर्बाणौ दीयतां मुषितौ त्वया।।२५।।

सा प्रोवाच तदा रामं प्रहसन्ती वरानना[4]।
कन्दुकौ दृश्यते राम कञ्चुक्यां ते[5] कुमारकः।।२६।।

न जानामि धनुर्बाणौ कन्दुको गृह्यतामितः।
रामो दुद्राव वेगेन त्वरा[6] जग्राह कामिनीम्।।२७।।

धनुर्मे दीयतां भद्रे बाणं चापि प्रदीयताम्।
सा तु हास्यप्रवीणा[7] च रामं प्रोवाच कामिनी।।२८।।

किं मया गोपितो राम बाणस्ते तु ह्यऽधोंशुके।
तां च त्यक्त्वा महाबाहुरन्या जग्राह पाणिना।।२९।।

धनुर्मे दीयतां चोक्त्वा सा चोवाच च तं प्रति।
कोष्ठागारे मया सार्द्धं गम्यतां तत्र मा चिरम्।।३०।।

एवमुक्त[8]स्तया सार्द्धं कोष्ठागारे जगाम च।
नास्ति तत्र धनुर्बाणौ राममालिङ्ग्य कामिनी[9]।।३१।।

---

१. तथ्यं-ग

२. क्वक्रीडिता-ग

३. चाक्षुषी-ग

४. वारानना-ग

५. मे-ग

६. चतुरां-ग

७. दासी प्रवीना-क

८. एवमुक्त्वा-ग

९. राममालिङ्गकारिणी-क

चुचुम्बे वदनं तस्य पुनः प्रोवाच राघवम्।
नास्ति चात्र धनुर्बाणावन्यत्र निचयं कुरु।।३२।।

तया सार्द्धं बहिर्गत्वा रामः पप्रच्छ मन्थराम्।
कुत्र चास्ति धनुर्बाणो मन्थरे कथ्यतां त्वया।।३३।।

सा प्रोवाच तदा रामं पूर्ववैरस्य चिन्तती।
चुल्हां ते वर्तते राम धनुर्बाणौ न ज्ञायते।।३४।।

वाक्यं तस्य तु सौमित्रिः श्रुत्वा कोपं चकार ह।
मुखं रूक्षं हि कृत्वा तु ह्यनया भाषितं रुषा।।३५।।

ताडनाय कशा तस्याः जग्राह दक्षिणे करे।
अनया ह्येव धनुर्बाणौ ग्रहीतौ नात्रसंशयः।।३६।।

अस्माकं तु सुखं द्रष्टुं न क्षमा पापकारिणी।
कशया ताडयिष्यामि न ह्येवं कुरुते पुनः।।३७।।

शत्रुघ्नताडिता कुब्जा कन्दुकेव पलायिता।
लक्ष्मणो भर्त्सयामास तां च दुद्राव वेगतः।।३८।।

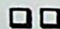
हसिता बालकैः सार्धं पाणिवादनकारिभिः।
तदानीं लज्जिता पापा जगाम कैकयीगृहम्।।३९।।

मामेतिवचनं प्रोक्त्वा[१] भ्रात्रभ्राता[२]निवारितः।
हास्ये ह्येवं प्रजातेपि धनुर्बाणौ तथा ह्यसिम्।।४०।।

रामाय प्रददुः सर्वाः सख्यः प्रहसिताननाः।
श्रीरामोऽपि धनुर्बाणौ खड्गं च कनकत्सरुम्।।४१।।

प्रगृह्य बालवैः सार्द्धमगमत् सरयूतटे।
चकार विविधां क्रीडां भ्रातृभिः सह राघवः।।४२।।
इतः परं मिष्टतमं श्रूयतां भो द्विजोत्तमः।।४३।।

इति श्रीसत्योपाख्याने सूतशौनकसंवादे
चत्वारिंशोऽध्यायः



१. चोक्त्वा-ग
२. भ्राताभ्राता-ग

एकचत्वारिंशोऽध्यायः

श्रीसूत उवाच-

क्रीडां कुर्वंस्तदा रामो जगाम सरयू तटे।
नाविको धीवरः कश्चित् प्रणम्य चाह राघवम्।।१।।

श्रूयतां मे वचस्तथ्यं राजपुत्र अरिंदम।
महिषो वर्तते राम प्रचरंश्चाति वीर्यवान्।।२।।

कुशं करे स्थितस्तस्य[1] जनान् धावति मार्गगान्।
तत्र मा गच्छ मो वीर महिषस्थाने हि बालकैः।।३।।

धीवरस्य वचः श्रुत्वा बालकास्ते च सस्मिताः।।
सौमित्रिं प्रेरयामासुः कटाक्षैर्गम्यतामिति।।४।।

राममामान्त्र्य सोमित्रिर्बालकान् प्रत्युवाच च।
गम्यतां तत्र भो बालाः यत्र वै महिषस्थलम्।।५।।

लक्ष्मणस्य वचः श्रुत्वा रामेण लक्ष्मणेन च।
प्रजग्मुस्तत्र ते सर्वे महिषो यत्र वर्तते।।६।।

धनुष स्फोटनं चक्रुः कुमाराश्चाति चञ्चलाः।
श्रुत्वा स्फोटं च धनुषां महिषोप्याजगाम ह।।७।।

विदारणं भुवः कुर्वन् पद्भ्यां च स्तब्धलोचनः।
उद्यम्य पुच्छवप्राणि शृङ्गाभ्यामख[2]नन्महीम्।।८।।

बाला ऊचुर्यदा[3]स्माकं सन्मुखे महिषः पतेत्।
बाणैः खड्गैश्च छित्वैनं गच्छामो निजमन्दिरे।।९।।

बालेष्वेवं ब्रुवाणेषु सहसा रामसन्मुखम्।
दुद्राव चातिवेगेन तदा मूर्ध्नि[4] च ताडितः।।१०।।

---

१. कुशस्तोकस्थितिस्-ग   २. न्यखनन्-ग
३. ऊचुर्यद्य-ग   ४. मूर्द्धनि-ग

अशल्यैनैव बाणेन ममार महिषो द्विज।
मुक्त्वा तु महिषं रूपं दिव्यदेहोभवत्तदा।।११।।

कन्दर्पसदृशाकारो योषितां हृदयङ्गमः।
किशोरः श्यामलः स्त्रग्वी मुकुटी कुण्डलान्वितः।।१२।।

कटिसूत्रेण हारेण ह्यंगदेन विभूषितः।
यथा रूपं हि भक्तानां रामस्य परमात्मनः।।१३।।

तथा रूपो हि गन्धर्वो बिल्वनामाभवत्तदा।
प्रणनाम हरेः पादौ नाम स्वं श्रावयन्मुदा।।१४।।

तेन स्तोत्रं समारब्धं बालानां शृण्वतामिदम्।

श्रीबिल्व उवाच-

नमो रामाय महते नमस्ते लक्ष्मणाग्रज।।१५।।

कौशल्यासुप्रजा राम नमस्ते पङ्कजेक्षण।
राजराजेन्द्रपुत्राय नमस्ते राघवाय च।।१६।।

नमस्ते सरयूतीरे नित्यक्रीडाकराय च।
नमो ब्रह्मण्यदेवाय रावणान्तकराय च।।१७।।

नमो वाचा विदूराय रामभद्राय ते नमः।
नरनाट्यप्रवीणाय नमस्ते धर्मरक्षक[१]।।१८।।

नमस्ते रुद्रसेव्याय धनुर्बाणधराय च।
पुंसां मोहनरूपाय नमोऽस्तु बालकैः सह।।१९।।

नमो रामाय भद्राय भक्ताभीष्टप्रदाय च।
श्रीराम श्रीमहाबाहो[२] पुनरेव नमो नमः।।२०।।

सूत उवाच-

स्तुत्वैवेशं प्रसन्नात्मा[३] विरराम महामतिः।
जगताञ्च स्वयं साक्षी प्रत्युवाच तदा च तम्।।२१।।

---

१. धर्मरक्षके-क
२. मो श्रीराम महाबाहो-ग
३. स्तुवैनं सुप्रसन्नात्मा-ग

श्रीरामकुमार उवाच[1]-

बिल्व बिल्व महाबुद्धे केन त्वं कर्मणा भव।
महिषो दीर्घशृङ्गश्च महावीर्यः सरित्तटे।।२२।।

कस्मात्त्वं दिव्यरूपश्च दिव्यस्त्रीगणमण्डितः।
सन्दिहानां वः[2] सन्देहं दूरीकर्तुं त्वमर्हसि।।२३।।

सूत उवाच-

पृष्टः प्रोवाच रामेण सर्वेषां शृण्वतामिदम्।
बालकानां च सर्वेषां रामं प्रति महामतिः।।२४।।

बिल्व उवाच-

हे श्रीराम महाबाहो महिषे कारणं मम।
श्रोतुमर्हसि धर्मज्ञ कृपया परमेश्वरः।।२५।।

पुरा कृतयुगे स्वामिन् गन्धर्वो बिल्वनामधृक्।
गानविद्याप्रभावेण रूपयौवनदर्पितः।।२६।।

नास्ति मत्सदृशः कोपि गाने रूपे बले तथा।
एवं गानाभिमानेन प्राचरं पृथिवीं तदा।।२७।।

निर्ज्जिताः बहुगर्न्धवाः यज्ञे यज्ञे च भूतले।
स्वर्गे वापि तथा भूम्यां ह्यधो भागे न संशयः।।२८।।

मुमूर्छ हृदये गर्वो मदीये परमेश्वरः।
एकदा च कुरुक्षेत्रे राजा वैवस्वतो मनुः।।२९।।

चकार यज्ञं धर्मात्मा संभारैर्बहुभिर्नृपः।
तस्मिन् यज्ञे सुराः सर्वे मुनिगन्धर्वदानवाः।।३०।।

समाजग्मुर्दर्शनार्थमहं तत्रागमं मुदा।
गन्धर्वास्तत्र गायन्ति यथा ज्ञानं हि रागिणः।।३१।।

मया जितास्तु गन्धर्वास्तदाहं चातिगर्वितः।
नास्ति मत्सृदशः कोपि देवाः दैत्याः न मानवाः।।३२।।

---

१. राम उवाच-ग

२. सन्देहानां च-ग

तदा तु नारदो योगी वीणावादनतत्परः।
मां विजेतुं[१] मनश्चक्रे क्षेमाय मम चानघः[२]।।३३।।

मया गीतं तु यद् गानं[३] तेन ज्ञातं महात्मना।
पश्चात्तेन ममारब्धं गीतदिव्यं[४] महर्षिणा।।३४।।

न च ज्ञातं मया तस्य गीतं रागविचित्रितम्।
श्लाघा तस्य कृता नैव न मया स्तवनं कृतम्।।३५।।

तदा मां नारदो योगी प्रहस्य[५] वाक्यमब्रवीत्।

श्रीनारद उवाच-

रे रे बिल्व मया गीतं त्वया ज्ञातं च वा न वा।।३६।।

हास्यं चक्रुस्तदा सर्वे जनाः यज्ञगतास्तदा[६]।
पुनः प्रोवाच हे देव नारदो मुनिसत्तमः।।३७।।

अपगच्छतु ते गर्वोरूपगानसमुद्भवः।
महिषोऽपि न जानाति वस्तुज्ञानं यथार्थतः[७]।।३८।।

तथा त्वया न ज्ञातमेतस्मात्त्वं महिषो भव।
मया विज्ञापितः सोपि कदा मुक्तो भवाम्यहम्।।३९।।

श्रीनारद उवाच-

राजा दशरथो नाम रथकुञ्जरवाजिवान्।
भविष्यति महाप्राज्ञस्त्रेतायां मतिमान् बली।।४०।।

तस्य पुत्रोतितेजस्वी रामो नारायणः स्वयम्।
विहरन् बालकैः सार्द्धं दर्शनं त्वं करिष्यसि[८]।।४१।।

इषुणा ते च मूर्द्धानं ताडनं सः करिष्यति।
माहिषं रूपमुत्सृज्य गन्धर्वस्त्वं भविष्यति।।४२।।

---

१. निर्जेतुं-ग
२. ममानघः-ग
३. गीतस्तु यद् ज्ञानं-क
४. गीतव्यं-ग
५. प्रहसन्-ग
६. ज्ञानगतास्तदा-क
७. यथार्हतः-ग
८. ते करिष्यति-ग

तावत्तिष्ठ सरय्वाश्च पुलिने तृणसङ्कुले।
सत्यजातं वचस्तस्य दर्शनं तव बभून्मम[१]।।४३।।

अनुग्रहाय शापो मे मुनिना तेन कल्पितम्।
त्वदीय पादपद्मे मे भक्तिरस्तु सदा प्रभो।।४४।।

श्रीरामचन्द्र उवाच-

वरं ब्रूहि महाभाग यत्ते मनसि वर्तते।
मदीयं दर्शनं कृत्वा न नरो पतते[२] परम्।।४५।।

बिल्व उवाच-

मन्नामपूर्विकामूर्तिः सदा तिष्ठतु ते हरे।
हरस्यापि महाराज नाम्ना बिल्वहरस्सदा।।४६।।

श्रीरामकुमार उवाच-

एवमस्तु महाबुद्धे गम्यतां स्वपदे हितः[३]।
भोगं कृत्वा तु भोगानामन्ते मोक्षमवाप्स्यसि।।४७।।

सूत उवाच-

गन्धर्वोऽपि निजस्थानं बालकानां च पश्यताम्।
जगाम व्योमयानेन स्वालयं स्वर्गिणा[४] पदम्।।४८।।

गन्धर्वस्य तु तत्स्थानं नाम्ना बिल्वहरिस्मृतम्।
वैशाखे मासि यात्रा स्यात् सर्वपातकनाशिनी।।४९।।

अमायां तु महापुण्यं पितृणां मोक्षणं[५] सदा।
रामोपि भ्रातृभिः सार्द्धं जगाम सरयूतटे।।५०।।

पीत्वा जलं निषन्नस्तु बालकैः सह सुन्दरः।
क्रीडत्वा सुचिरं तत्र पुनर्जग्मु गृहं प्रति।।५१।।

---

१. ते ह्यमून्मम-ग
२. याचते-ग
३. स्वपदं ह्यतः-ग
४. स्वर्गिनो-ग
५. मोक्षदा-ग

जनयन्नयनानन्दमयोध्यां पुरवासिनाम्।
मातृभिर्ल्लालिता सर्वे भुक्ताः चान्नं चतुर्विधम्।।५२।।

पितुः समीपे गत्वा तु पितरं तोषयन्मुहुः।
भेजिरे शयनं बालाः मातृभिरुपलालिताः।।५३।।

इति श्रीसत्योपाख्याने सूतशौनकसंवादे बिल्वकोपाख्याने एकचत्वारिंशोऽध्यायः।



द्विचत्वारिंशोऽध्यायः

सूत उवाच-

प्रातरुत्थाय ते बाला क्रियां कृत्वा यथाविधि।
अन्नं चतुर्विधं भुक्त्वा खेटकाय ययुः[1] पुनः।।१।।

शशान् वराहान् महिषान् मृगान् वध्यन् मुहुः मुहुः।
एवं क्रीडंस्तदा रामो द्वितीयं काननं यमौ।।२।।

ददर्श कानने रामो वल्मीके[2] च नराकृतिम्।
कुशैः परिवृतं तं च सर्पाणां कञ्चुकैस्तथा।।३।।

लतानां तन्तुभिश्चैषु[3] तथा गुल्मैः सुसंवृत्तम्[4]।
तं च दृष्ट्वा तदा रामो बालकानिदमब्रवीत्।।४।।

श्रीरामकुमार उवाच-

किमिदं बालकाः ब्रूत वल्मीकं च नराकृतिम्।
इत्युक्त्वा बालकैः सार्द्धं जगाम निकटे प्रभुः।।५।।

करेण स्पर्शनं चक्रे बालकानां च पश्यताम्।
रामस्पर्शनमात्रेण दिव्यदेहो बभूव सः।।६।।

पीताम्बरधरः स्रग्वी मुकुटी कुण्डलान्वितः।
दधद्विशेषकं[5] भाले तुलसीदाममण्डितम्।।७।।

अङ्गदी च तथा हारी वलयाभ्यां विराजितः।
पादौ पपात रामस्य स्पर्शन् मूर्द्धा उपानहौ।।८।।

---

१. पुनः-क
२. वल्मीकं-ग
३. तन्तुभिस्तंतु-ग
४. समावृतम्-ग
५. दधद्विरेयुकं-क

श्रीरामचन्द्र उवाच-

ब्रूहि ब्रूहि महाबुद्धे कारणं ह्यात्मनो मम।
कस्त्वं वल्मीकरूपेण वने तिष्ठति निर्ज्जने।।९।।

अस्माकं श्रवणायालं वक्तव्यं यदि मन्यसे।

श्रीडिंडिर उवाच[१]-

किरातो डिंडिरोहं वै वासो मम हिमाचले।।१०।।

धनुर्बाणं करे बिभ्रत्प्राचरं मृगयां सदा।
एकदा मृगयूथानां पश्चाद्भागे च प्राद्रवम्।।११।।

पलायमानास्ते यूथा अरण्ये विविशुर्भयात्।
योजनानां त्रयोविंशद् धावमानो हि मन्दधीः।।१२।।

परिश्रमं गतोहं[२] च दिनान्ते पतितः पथिः।
आजग्मुश्च तदा तत्र साधनः पञ्चविंशतिः।।१३।।

कृपया मां ब्रुवन्सर्वे गम्यतां सङ्गमेषु नः।
ग्रामं गत्वा च सङ्गेन सतां रात्रिरुपोषिताः।।१४।।

प्रातःकाले कृतं तैश्च शालिग्रामस्य पूजनम्।
पाकं कृत्वा पुनः सर्वे नैवेद्यं हरये ददुः।।१५।।

मां प्रसादं ददुस्ते च कृपया साधवः पुनः।
स्वयं बुभुजिरे ते च यज्ञोच्छिष्टं दयालवः।।१६।।

तेषां दर्शनमात्रेण शिलायाः दर्शनेन च।
शालिग्रामशिलातोयं जहार मम पातकम्।।१७।।

नैवेद्येन मनः शुद्धं बभूव रघुनन्दन।
मां विलोक्य पुनस्ते च प्रोचुर्वाक्यं परस्परम्।।१८।।

ये मृगाः वनमध्यस्थास्तृणाहाराः न संशयः।
तेषां वधे जनाः सर्वे गच्छन्ति मृगयां वत।।१९।।

परमांसेन ये पुष्टास्तेषां पीडा यमालये।
भविष्यत्यादृशो'यापि[३] पापिनां नर्कगामिनाम्।।२०।।

---

१. पुरुष उवाच-ग

२. परिश्रमयुतोऽहं-ग

३. भविष्यति कीदृशी हदो-ग

डिंडिर उवाच-

तेषां वाक्यमिदं श्रुत्वा ज्ञानं तु हृदये मम।
एवं बभूव मो राम विष्णोर्नैवेद्यभक्षणात्।।२१।।

अहमुत्थाय तेषां तु कृत्वा ह्यग्रे पुटाञ्जलिम्।
प्रोवाच भवतां सङ्गे तीर्थयात्रां करोम्यहम्।।२२।।

गम्यतामिति तैः प्रोक्तास्तेषां सङ्गे व्यहं ययौ।
तीर्थात् तीर्थान्तरं गच्छन् अयोध्योमाययुः पुनः।।२३।।

सङ्गमे गोप्रतारे च स्वर्गद्वारे च ते पुनः।
प्रेम्णा सस्तुर्महाभागाः मया सह नरोत्तमाः।।२४।।

[1]अत्रागत्य महात्मानो दृष्ट्वा पुलिनमुत्तमम्।
वनैश्च शतपत्राणां पद्मानां च तथैव च।।२५।।

त्रिरात्रं[2] च उषित्वा तु[3] गमनाय मनोदधुः।
प्रस्थिताः सरयूतीरे मार्गेणैवान्यतीर्थकम्।।२६।।

पुण्डरीकवनैश्चित्रैस्तथा गुल्मशतैर्वृतम्।
ईदृशं पुलिनं दृष्ट्वा तपस्यायां मनोदधुः।।२७।।

तप्त्वा तपांसि ते चात्र गताः स्वर्गे[4] च भिक्षवः।
अहं चात्र समाधिस्थो हरेर्नारायणस्य हि।।२८।।

ध्यायमानो विस्मार शरीरं बहुवार्षिकम्।
वल्मीकं मे शरीरे तु बभूव रघुनन्दन।।२९।।

तव स्पर्शात् पुनः प्राप्तं शरीरं परमाद्भुतम्।
त्वं ब्रह्मपरमं साक्षादाद्यो नारायणो हरिः।।३०।।

मोहयन् मायया लोकान् क्रीडन् बालैरनेकधा।
त्वदीयस्मरण[5]मात्रेण पूताः पापाः सहस्त्रशः।।३१।।

---

१. श्लोकोऽयं 'त्रिरात्रं...' श्लोका.. दनन्तरं ग-मातृकायां प्राप्यते।

२. त्रिरांत्रिं-ग

३. ते-ग

४. स्वर्गं-ग

५. स्मर-ग

किं पुनः दर्शनेनैव स्पर्शनेन च किं पुनः।
उद्धारार्थं तु जगतामाविर्भूताय ते नमः।।३२।।

ते वयं प्रकृती राम स्वेच्छा[1]रूपेण वर्ण्यते।
तवेच्छया पुनर्याता रजसत्त्वतमोगुणाः।।३३।।

तमसा पञ्चभूतानि सत्त्वाद्देवा प्रजज्ञिरे।
रजसा[2]पीन्द्रियाण्यासन् युयुषु[3]र्यत्र तत्र च।।३४।।

अण्डमुत्पादयामासुस्तवेच्छावशतः पुनः।
षोडशांशेन प्राविष्ट[4] विराडिति पृथामगः[5]।।३५।।

हिताय जगतां नाथ सर्वत्र च विराजसे।
मुखं ते ब्राह्मणाः सर्वे क्षत्रिया बाहवस्तव ।।३६।।

ऊर्वो वैश्याः समुद्भूताः पद्भ्यां शूद्राः विनिर्गताः।
मूढोयं नाभिजानाति लोकस्त्वं हितकारकः।।३७।।

त्वदीयं दर्शनं मह्यं साधूनां कृपया ह्यभूत्।
कृपां कुरु सदा राम ययो ते[6] चरणाब्जयोः।।३८।।

मनो यातु यथा गंगा पूरपूर्णे[7] पयोनिधौ।
यत् सुखं तव भक्तानां सङ्गमे न भवेत् क्षितौ।।३९।।

न तेन तुलये मोक्षं स्वर्गमिन्द्रियजं तथा।
ब्रह्मादिप्रार्थितो नाथ जातो दशरथालये।।४०।।

समुद्रबन्धनादीनि कर्माणि त्वं करिष्यसि।
रावणादीनि रक्षांसि कोटिशो निहनिष्यसि।।४१।।

भूभारं च समुताय्यं ब्रह्मलोकं गमिष्यसि।
इदं त्रैकालिकं ज्ञानं जातं श्रीरामदर्शनात्[8]।।४२।।

---

१. येच्छा-ग
२. रजसे-ग
३. सुषुयु-ग
४. प्रविष्टस्त्वं-ग
५. प्रथामगाः-ग
६. पपाते-क
७. पूरं पूर्णे-ग
८. श्रीमदद्दर्शनात्-ग

नमो रामाय भद्राय महाराजाय ते नमः।
सर्वभूतनिवासाय ब्रह्मण्याय नमो नमः।।४३।।

आज्ञां च दीयतां मह्यं गमिष्ये[1] भगवत्पदम्[2]।

श्रीरामकुमार उवाच-

गम्यतां गम्यतां शीघ्र यत्र ते त्वरते मनः।।४४।।

स्वर्गे[3] वा सत्यलोके[4] वा वैकुण्ठे[5] वा हरेः पदम्।

सूत उवाच-

राघवेण अनुज्ञातो जगाम परमं पदम्।।४५।।

हंसयुक्तविमानेन किङ्किणी जालमालिना।
पुनर्न जायते[6] जन्तुर्यत्र गत्वा महीतले।।४६।।

रामोऽपि बालकैः सार्द्धं क्रीडां[7] कृत्वा अनेकशः।
आजगाम तदा गेहं सायंकाले महात्मना[8]।।४७।।

पौरैर्निरीक्षितो रामः पित्रा माता तथैव च।
भुक्ता चतुर्विधं चान्नं निनाय रजनीं ततः।।४८।।

इति श्रीसत्योपाख्याने सूतशौनकसंवादे
द्विचत्वारिंशोऽध्यायः।



---

१. गमिष्यामि -ग
२. भवत्पदम्-ग
३. स्वर्ग-ग
४. सत्यलोकं -ग
५. वैकुण्ठं -ग
६. पतते-ग
७. पदो नास्ति ग-मातृकायाम्।
८. महायशाः-ग

त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः

श्रीसूत उवाच-

एकदा रामचन्द्रोऽसौ प्रातरुत्थाय सत्वरम्।
कृत्वा चावश्यकं सर्वं भ्रातृभिः सह वीर्यवान्।।१।।

सखी[१]नाकारयामास मृगयार्थं महामनाः।
प्रतापाग्र्यं नीलरत्नं वीरभद्रं महाबलम्।।२।।

सबलाश्वं हरिदश्वं[२] शोभनाश्वं[३] हर्य्यश्वकम्[४]।
चन्द्रभानुं चन्द्रचारुं रिपुवारं रिपुञ्जयम्।।३।।

भद्राश्वं च जयन्तं च[५] सुबाहुं च महामतिम्।
अन्यानपि महावीरान् मृगयासिद्धिकारकान्।।४।।

कुक्कुरग्राहिणः सर्वान् तथा वै जालधारकान्।
सेनपालान् सिंहपालान् तथा तरक्षुपालकान्[६]।।५।।

कुलिंग[७]पालकानन्यान् मृगयार्थं समाह्वयत्।
ते चागत्य नृपद्वारे रामार्थं च समाश्रिताः।।६।।

गजरोहास्तथा चान्ये ह्यश्वारोहा अनेकाशः।
रथारोहास्तथा चान्ये उष्ट्रारोहश्चनैकशः।।७।।

भुशुंडिभिः समायुक्तास्तथापाशैर्भयानकैः।
पतयस्तु महावीर्य्याः धनुर्बाणधराः वराः।।८।।

---

१. नृपा-ग
२. हरिजश्वं -ग
३. शोणश्वं -ग
४. हरिदश्वकम्-ग
५. वि विजयं -ग
६. च ऋक्षपालकान् -ग
७. कुलंग-ग

शृङ्गारं कुरुते रामस्तावतिष्ठन्ति चाङ्गणे[1]।
एतस्मिन्नन्तरे[2] रामो मातुराज्ञामवाप्य च।।९।।

राज्ञा चापि ह्यनुज्ञातो[3] भ्रातृभिः सह निर्ययौ।
शोणाश्वं रामचन्द्रस्तु चारुरोह बलाद् बली।।१०।।

उच्चैःश्रवाः समप्रख्यं भरतोऽपि निजं हयम्।
आरुरोह महावेगाल्लक्ष्मणो रुरुहे मुदा।।११।।

शत्रुहा सैन्धवं चैव कंकवि[4] कशया[5] सह।
गृहीत्वा चारुरुहत् शीघ्रं सर्वेषां पश्यतां सताम्[6]।।१२।।

तथा चारुरुहुः सर्वे वाहान् स्वानवस्थितान्।
तदा वाद्यान्यवाद्यन्तः ह्यानकाद्याः अनेकशः।।१३।।

चचार[7] रघुनाथोऽपि भ्रातृभिः सखिभिस्तथा।
चामरैः वीज्यमानाश्च राजा[8] राजकुमारकाः।।१४।।

उष्णीषहरितं चैव कञ्चुकं च तथाविधम्।
दधानं हरितानां च मणीनां बहुभूषणम्।।१५।।

त्रिणतं च धनुस्कन्धे दधान चेषुधिद्वयम्।
रत्नमुद्राशोभितेन[9] करेण दक्षिणेन च।।१६।।

स्वर्णपुङ्खं तथा बाणं भ्रामयन्तं मुहुर्मुहुः।
कुण्डलाभ्यां परिष्वक्तमलकैश्चलसन्मुखे।।१७।।

तिलकेन महारम्यं शोभितं रत्नमालया।
खड्गेन कटिबद्धेन राजमानं कुमारकम्।।१८।।

---

१. प्राङ्गणे -ग
२. तस्मिन्न-ग
३. ह्यनुभ्रातो -ग
४. वकं च-ग
५. विकया-ग
६. पश्यतो सदा -क
७. चचाल-ग
८. राज-ग
९. रत्नमुद्राशेभितनु-क

उपानहा गूढपदं रामं वीक्ष्य जनाः मुहुः।
नागराः नरनार्य्यश्च न चक्रुः नेत्रमीलनम्[1]।।१९।।

एवं ब्रुवन्ति ते सर्वे कारणं[2] च[3] परस्परम्।
धन्याः सर्वाः महिष्यश्च राज्ञो दशरथस्य च।।२०।।

राममाता च तासां तु कौशल्या भानुमन्तजा।
पुनर्धन्याः वयं सर्वे रामदर्शनतत्पराः।।२१।।

अस्य दर्शनमात्रेण वयं मुक्ताः न संशयः।
असौ नारायणः साक्षात् भूभारहरणाय च।।२२।।

देवैश्च प्रार्थितो यत्र जप्तो दशरथात् स्वयम्।
एवं वदन्तः ते सर्वे ह्यानन्दं परमं ययुः।।२३।।

रामस्य ध्वजिनी सा तु राजमार्गे समाययौ।
सेनामध्यगतो रामो मन्दं मन्दं चचाल च।।२४।।

अयोध्यापुरवासिन्यो रमण्यस्तु रमा इव।
रामदर्शनकांक्षिण्यो हर्म्ये[4] चारुरुहुर्मुहुः[5]।।२५।।

दृष्ट्वा रामं रमानाथं मनसा परिषस्वजे।
काचिन्नेत्रपथे[6] रामं कृत्वा ध्याने च[7] तत्परा।।२६।।

कोटिकन्दर्प्पलावण्यं दृष्ट्वा देहं च विस्मृतम्।
काचित्[8] सखी नितम्बस्य वस्त्रमाकृष्य कथ्यती।।२७।।

द्वौ[9] कुचावञ्चलेन सापि दधे भाति व्रीडिता।
मोहिता कामबाणेन लज्जां त्यक्त्वा च कामिनी।।२८।।

---

१. नेत्रनिमीलने -क
२. करान्-ग
३. गृह्य-ग
४. हर्म्याण्या-ग
५. रुरुहुर्मुदा -ग
६. काश्चि-ग
७. न-ग
८. कश्चिदुच्छसितं वस्त्रं करेणाकृष्य चोत्थिता-ग
९. कुचौ चांचलेनातिव्रीडिता च पुनः पुनः -ग

य: शेते प्रलये रामो जगत् पीत्वा च सागरे।
एकेनाक्ष्णा पपौ[1] तं च भावेन[2] रसिकापरा।।२९।।

काचिद्रामं समावीक्ष्य बालकालिङ्गने रता।
मुखं गवाक्षे कृत्वा तु काचिद्रामं निरीक्षती।।३०।।

पुष्पाञ्जलीं सर्षपां च लाजानन्याश्च चिक्षिपुः।
काश्चित्तु[3] प्राञ्जलिं बध्वा प्रोचू रामं गवाक्षतः।।३१।।

यथा न ज्ञायतेप्यन्यैस्तथाभावेन ताः[4] जगुः।
कृत्वा च खेटकं शीघ्रमागन्तव्यं गृहं झटिति।।३२।।

नोचेदागमनं सायं प्राणाः यास्यन्ति नो वयम्।
इति तासां प्रियं वाक्यं हर्म्ये रामो हि शुश्रुवे।।३३।।

एतस्मिन्नन्तरे राजा निषादाधिपतिर्गुहः।
सर्वायुधधरः श्रीमान् दासैश्च परिवारितः।।३४।।

रामचन्द्रस्य शिक्षार्थं खेटकानां वने वने।
समाहृतः स्थितो नित्यं राज्ञा दशरथेन च।।३५।।

तस्मिन्नवसरे रामं प्रणनाम गुहो मुदा।
दासाः पञ्चसहस्त्राणि तस्य सङ्गे महाबलाः।।३६।।

धनुर्बाणधराः सर्वे भुशुण्डिपरिघायुधाः।
सर्वे चागत्य रामस्य प्रणेमुः पादपद्मयोः।।३७।।

निषादधिपतेः रामः करे जग्राह प्रेमतः।
गुहं प्रोवाच रामस्तु खेटकेऽपि मनो मम।।३८।।

समीचीनतयां मित्रं मां शिक्षय वने वने।

श्रीगुह उवाच-

का शिक्षा त्वयि कर्तव्या सर्वशिक्षाकरे त्वयि।।३९।।

---

१. एके नोक्ष्णाय ये -क
२. भावेग -क
३. काचिच्च -ग
४. ते -ग

तथाप्येवं हि कर्त्तव्य यथाज्ञापयते भवान्।

श्रीसूत उवाच-

एवं ब्रुवति भूपे च निषादाधिपतौ जनाः।।४०।।

साधु साध्विति तं प्रोचुर्मृगयायां कतूहलात्।
रामाज्ञाया तदा राजा घोटकं श्यामवर्णकम्।।४१।।

रत्नग्रैवेयसंयुक्तं स्वर्णभाण्डपरिष्कृतम्।
आरुरोह तदा वेगात् श्यामवस्त्रेण भूषितः।।४२।।

सेनाया अग्रतो जग्मुर्जनास्ते ध्वजधारिणः।
तत्पश्चाच्च निषादास्तु बलिष्ठास्तीव्रमन्यवः।।४३।।

तेषामपि ततः पश्चादुन्दुभीनां च दुन्दुकाः[१]।
तेषामपि ततः पश्चात् पादातास्तु भुशुण्डिनः।।४४।।

अश्ववाहा[२]स्ततो जग्मुस्तेषां पश्चाच्च स्यदनम्[३]।
तेषां पश्चाद् गजाः जग्मुस्तेषां पश्चात् क्रमेलकाः।।४५।।

चचाल सा महासेना प्रवाहो सरितां यथा।
अश्वानां दशसहस्त्रं हस्तिनां च शतं तथा।।४६।।

रथानां हि सहस्त्रं च उष्ट्राः पञ्चशतानि च।
पदातीनां सहस्त्राणि संख्यया पञ्चविशतिः।।४७।।

रामाज्ञया च स्वल्पा च[४] खेटके किं प्रयोजनम्।
जगाम सेना नगरात् सरयूतीरमुत्तमम्।।४८।।

अश्ववाहास्तुरङ्गांस्तु[५] ननर्तयामासु शिक्षया[६]।
मतङ्गजमतङ्गेभ्यः योधयामासु लीलया।।४९।।

इत्येवं बहुधा लीलाः सैन्याः चक्रुः परस्परम्।

इति श्रीसत्योपाख्याने सूतशौनकसंवादे त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः।

---

१. वादकाः-ग
२. अश्ववारा-ग
३. स्यन्दना-क
४. सा-ग
५. अवसारास्तु तुरगांन-क
६. रोजसा -ग

चतुःचत्वारिंशोऽध्यायः

श्रीसूत उवाच-

शनैः शनैः जगामाथ खेटकाय च वाहिनी।
अयोध्योपवनेवापु संसिषेवे मनोनुगम्।।१।।

सा सेना तमसातीरं जगाम च गुहाज्ञया।
अग्रे[१] गुहः प्रयाति च वननिर्णयकोविदः।।२।।

निवासो यत्र वन्यानां शोधयामास भूपतिः।
ज्ञात्वा स्थानं च तेषां तु रामायाकथयत् स्वयम्।।३।।

शृणु राजकुमार[२] त्वं वनमत्र भयानकम्।
नानाजीवैः समायुक्तं झिल्लीझङ्कारनादितम्।।४।।

बहुव्यालसमाकीर्णं नानावृक्षैश्च[३] शोभितम्।
एतद्वनं महापुण्यं पावनं चापि पापिनाम्।।५।।

प्रफुल्लैर्बहुगुल्मैश्च शोभितं लतया युतम्।
लतानां च प्रतानानि वितानै[४]श्चापि मण्डितम्।।६।।

फुल्लैश्चापि[५] प्रियङ्गूनां पुष्पितैश्चापि केतकैः।
तमालगुल्मैर्निचितं कर्णिकारैस्तथैव च।।७।।

बकुलैः पुष्पितैर्नागैर्जलजैश्च मनोरमम्[६]।
द्विरेफानां च मालाभिः पुष्पे पुष्पे निवासिनाम्।।८।।

---

१. अहो-ग
२. राजेन्द्रकुमार -ग
३. नानावृक्षैश्च -ग
४. प्रतानै-ग
५. पुष्पैश्चापि -ग
६. बकुलैः पुष्पितैर्व्याप्तं पुन्नागैश्च मनोहरैः-ग

शोभितं च[1] प्रफुल्लानामम्बुजानां च रेणुभिः।
विहङ्गमानां च रुतैर्नादितं सारसैरपि।।९।।

प्रमत्तदात्यूहरुतैः पथिकान् वशकारकैः।
क्वचिच्च चक्रवाकानां तेषां नादेन नादितम्।।१०।।

क्वचिच्चकलहंसानां नादेन विनिनादितम्[2]।
कारण्डवानां शब्देन भ्रमराणां तथैव च।।११।।
पुष्पितैः सहकारैश्च तिलकैश्च द्रुमैश्चितम्।।१२।।

प्रकृष्टैश्च विहङ्गैश्च पिकानां कूजनेन च।
मण्डितं नीलकण्ठानां केकीभिश्च[3] मनोरमम्।
एवं भूतं वनं रम्यं[4] विद्यते तमसातटे।।१३।।

मृगयात्र त्वया कार्या ह्यात्मतोषणहेतवे।

श्रीसूत उवाच-

गुहस्य वचनं श्रुत्वा रामो वाक्यमुवाच च[5]।।१४।।

श्वगणास्तत्र गच्छन्तु तथा वै जालधारिणः।
वितत्य जालं गृह्णान्तु[6] वनजीवाननेकशः।।१५।।

रामाज्ञया तदा सर्वे नराः[7] जग्मुर्वनं वनम्।
विविष्टानां[8] वनं तेषां तदा कोलाहलो ह्यभूत्।।१६।।

श्रुत्वा कोलाहलं जीवाः दुन्दुभिनिनदं तथा।
पलायनपराः सर्वे प्राणरक्षणहेतवे।।१७।।

शशकानां च यूथानि मृगानां च कुलं तथा।
महिषाणां समूहश्च चामरीणां चयस्तथा।।१८।।

---

१. क्वचित् -ग
२. इयं पङ्क्तिः ग-मातृकायामेव प्राप्यते।
३. केकामिश्च-ग
४. राम-ग
५. वचनमब्रवीत् -ग
६. जालानुगृहं तु -ग
७. भटाः-ग
८. प्रविष्टानां -ग

वानराणां सवृंदश्च[1] तथा जीवा अनेकशः।
स्वं स्वं स्थानं परित्यज्य परियेतुर्मुनेः स्थलम्।।१९।।

माण्डव्यस्य महाबुद्धे दयायुक्तस्य प्राणिषु।
दृष्ट्वा मुनिर्दयायुक्तो विज्ञाय कारणं हृदि।।२०।।

खेटकार्थं कुमाराश्च प्राप्ता चात्र नदी वने।
शिष्यैः परिवृतो राममाजगाम प्रणोदितः[2]।।२१।।

सूत उवाच-

आयातं च मुनिं दृष्ट्वा रामोऽवतीर्य घोटकात्।
भरतादयस्तु ते सर्वे वाहनेभ्यो महीं गताः।।२२।।

ववन्दिरे मुनेः पादौ माण्डवस्य महात्मनः।
आशीर्वादान् बहून्नाह रामाय विदितात्मने।।२३।।

वने जातानि पक्वानि फलानि विविधानि च।
रामाय चार्प्यामास माण्डव्यो निजपाणिना।।२४।।

प्रसीदेति[3] तदा रामो जग्राह सिरसा मुदा।

श्रीरामकुमार उवाच-

कुशलं वर्त्तते नाथ ह्याश्रमे ते महामुने।।२५।।

शिष्याः वृक्षाश्च जीवाश्च[4] क्षेमेणैव वसन्ति ते।

श्रीमाण्डव्य उवाच-

कुशलं वर्त्ततेऽस्माकं त्वयि कुमाररक्षके[5]।।२६।।

मृगयार्थं च गच्छन्ति जना एते ममाश्रमे।
तान् निवारय श्रीराम कृपां कृत्वा ममोपरि।।२७।।

आश्रमे च मुनीनां तु न कर्तव्यं च खेटकम्।
आश्रमस्थान् मृगान् हन्ति तेषां दोषो महान् भवेत्[6]।।२८।।

---

१. हि वृन्दैश्च -ग
२. घृणार्दितः -ग
३. प्रसोदति-ग
४. पदोऽयं ग-मातृकायां नास्ति।
५. कुमारकरक्षके -ग
६. महानभूत -क

इतो दक्षिणतो रम्या बालुकेति नदी शुभा।
ततोऽग्रे गोमती चास्ति[1] लोकानां पापनाशिनी।।२९।।

तयोस्तीरे कुरु क्रीडां सैन्यैः सह महामते।
सूत उवाच–
तथेत्युक्त्वा मुनेर्वाक्यं रामो जग्राह सस्मितम्।।३०।।

नमस्कृत्य मुनेः पादौ रामाद्याः रघुपुङ्गवाः।
जग्मुर्वनान्तरं सर्वे गुहेन दर्शिताध्वना[2]।।३१।।

वनाद् वनान्तरं जग्मुः क्रीडार्थं ते[3] च राघवाः।
वृक्षान् नानाविधान् फुल्लानृतुराजेन सर्वतः।।३२।।
ददर्श रामो भगवान् कुर्वन् क्रीडामनेकधा।।३३।।

इति श्रीसत्योपाख्याने सूतशौनकसंवादे
चतुःचत्वारिंशोऽध्यायः।४४।



१. वाति-ग
२. दर्शिताधुना-ग
३. हिं-ग

पञ्चचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः

श्रीसूत उवाच-

रामो दृष्ट्वा वसन्तं तु समैक्षत विदूषकम्।
रामस्य चेङ्गितं ज्ञात्वा वर्णनं चैत्रमाधवौ[१]।।१।।

चकार वर्णनं सोपि तोषयन्[२] सर्वदेहिनाम्।

विदूषक उवाच-

आजगाम वसन्तस्तु कुसुमैस्त्वामिव सेवितुम्।।२।।

कामेन सदृशं ज्ञात्वा रूपेण विभवेन च।
मलयाद्रिं परित्यज्य हिमवन्तं च गच्छति।।३।।

चक्रवाके कृपां कुर्वन् दिननाथः शनैः शनैः।
प्रभाति[३] तुहिनाश्च्युताः निर्मलाः हिमनिग्रहात्।।४।।

कुर्वन् याति दिशं सूर्य उत्तरां च हिमालयम्।
श्रूयतां च वसन्तस्य क्रमेणागमनं मया।।५।।

आदौ जन्म च पुष्पाणां पल्लवानां ततोऽभवत्।
कूजितं कोकिलानां षट्पदानां तदा ह्यभूत्।।६।।

ऋतुराजः क्रमेणैव[४] विचचार[५] वनस्थलीम्।
कामस्यापि च जन्तूनां मनोवेपनहेतवे।।७।।

---

१. साधषोः -क, साधयोः-ग

२. तनेषाय -ग

३. प्रभातं च दिनानां तु निर्मलं हिमनिग्रहात् -ग

४. कूर्मोगैवं -क

५. ततार च -क

सहकारलता चैत्रे द्विरेफैः परिसेव्यते।
कोकिलाश्चैव नारीणां नायकान् वशमानयत्[1]।।८।।

यथा दूती युवानं च युवत्याः वशमानयेत्।
वासन्तिकायाः कुसुममशोकस्य च पल्लवम्।।९।।

मादकं वर्तते यूनां[2] युवत्याः श्रवणार्पितम्।
काशारांश्च समायान्ति पक्षिणो भ्रमराः मधौ।।१०।।

पुष्पितांश्च यथा भूपानर्थिनोऽर्थेन हेतुना[3]।
सङ्घाः[4] कुरवकानां तु वसन्तेन च पुष्पिताः।।११।।

ययुः कारणतां सर्वाः मधुपानां[5] रवे मधौ।
चैत्रे कुसुमजालं च राजते किंशुके तरौ।।१२।।

प्रियवक्षःस्थले[6] चिह्नं युवत्येव नखैः कृतम्।
किंशुकस्य च पुष्पं तु वनराज्यां सुशोभितम्[7]।।१३।।

युवतीकुचयोर्चिह्नं नायकेन कृतं यथा।
मालिन्यमगमद्रामं[8] भ्रमरः किंशुके पतन्।।१४।।

अग्न्यङ्गारकबुध्या तु मरणार्थं तु निश्चितम्।
तिलकस्य तु पुष्पं तु षट्पदैरतिसेवितम्[9]।।१५।।

वसन्तस्य ऋतोर्हास्यं सुगन्धमिव चेप्सुभिः।
सुगन्धं ललनानां च वदनस्यैव धारकम्[10]।।१६।।

---

१. च समानयत् -क
२. पूस्यां -क
३. आर्थहेतवे -ग
४. शाखाः -ग
५. मधुपानं -ग
६. वक्षःप्रियस्थले -ग
७. वनराज्यामशोभत -ग
८. मालत्यपगाद्राम -ग
९. सेवितुम -ग
१०. तारकम् -क

आकुलं बकुलं चक्रुर्मधुपाः निजपङ्क्तिभिः।
रेणुश्च कुसुमानां तु आचच्छाद[1] वनस्थलीम्।।१७।।

प्रावारं[2] कामदेवस्य वातैः किन्नु[3] प्रसारितम्।
वनराज्यां वसन्ते तु श्रूयते कोकिलध्वनिः।।१८।।

नवोढायाः यथा वाक्यं श्रूयते विरलं जनैः।
भ्रमराः भ्रमरीभिस्तु तिलकानां तु मस्तके।।१९।।

कलगानं प्रकुर्वन्ति मन्दिरे कामिनो यथा।
वसन्ते नायकैः सार्द्धं दोलामारुरुहुः स्त्रियः।।२०।।

प्रियकण्ठे निधायाथ भुजं रज्जुपरिग्रहे।
मानं त्यक्त्वा रमध्वं भो वसन्ते युवतीजनः।।२१।।

नागमिष्यति यातं च योषितां नवयौवनम्[4]।
इत्युत्प्रेक्ष्य गिरं कान्तां प्रियस्य नायकैः सह।।२२।।

रमते निर्ज्जने धाम्नि प्रियं कृत्वा स्ववक्षसि[5]।
दययेव[6] तु नारीणां पथिकानां च शर्वरी।।२३।।

आत्मनो लघुतां चक्रे कथमेता नयन्ति माम्।
अशोकस्य लताशोकं माननीनां मनोद्भवम्[7]।।२४।।

चकार माधवे मासि यासां भर्त्ता[8] गृहे नहि।
मञ्जरी सहकारस्य दूरे चक्रे च क्रोधताम्।।२५।।

नायकेषु समुत्पन्नां स्वयं यान्ति प्रियाश्च तान्।
लतायाः वाटिकायास्तु भ्रमरैरुपनृत्यते।।२६।।

फाल्गुने च यथा बालैर्युवतीनां च सन्मुखे।
चन्द्रमाश्चन्द्रिकाभिश्च कामराज्यमतेजयत्।।२७।।

---

१. चाचवाद -क

२. शरीरं -क

३. किं तु -क

४. चलयौवनम् -ग

५. सुवक्षसि -क

६. दैत एव -क

७. मनोद्गतम् -क

८. भर्तृ -ग

समये ऋतुराजस्य चैत्रे वा माधवेपि वा।
कर्णकारं[1] तु यत्पुष्पं युवत्यः कर्णयोर्दधुः।।२८।।

अलकेषु च तद्राम[2] राजते ह्यद्भुतोपमम्।
वनस्थलीं च तिलकः[3] शोभते स्म प्रियामिव।।२९।।

तिलकं मृगनाभीनां ललाटे सखिभिः सह।
पत्यथा[4] युवती सीधुं प्रापयन्ति च माधवे।।३०।।

मदनोद्दीपनं[5] तूर्णं सटानामपि वाञ्छितम्।
तां पीत्वा मदिरां मत्ताः वसन्ते च ऋतौ[6] स्त्रियः।
न गोपयन्ति चाङ्गानि पश्यन्ति सुरतौ[7] पतीन्।।३१।।

विलासिनां मनो नूनं मदयन्ति नवमल्लिका[8]।
भारेण स्तनयोर्यूनां मनांसि[9] युवती तथा।।३२।।

तनुतां च यथा याति खण्डिता नायकेन या।
तथेयं रजनी भाति माधवे मधुना कृता।।३३।।

कर्णस्थैः युवतीनां च मोहिताश्च यवाङ्कुरैः।
युवानो माधवे मासि ह्यवलकैरसाः कृताः।।३४।।

मञ्जरी तिलकस्यापि भ्रमरैः ह्ययं जिता[10]।
मुक्तायष्टिः[11] कपोले च ग्रथिता[12] ह्यल्कैरिव।।३५।।

---

१. स्वर्णाकारं -ग
२. तद्भास्तु -ग
३. तिलः -क
४. पतेयोः -ग
५. मदनोद्दीपिनी -ग
६. क्रतौ -क
७. सुत्रमृतौ -ग
८. मादयान्नवमल्लिका -क
९. 'मतांसि---युवतीनां च-' इत्ययं भागः ग-मातृकायां न प्राप्यते।
१०. भ्रमरैरुपरंजिता -ग
११. मुक्ताद्बाष्टिः-क
१२. ग्रंथिता-क

वसन्ते[१] विशदं चन्द्रं करोति[२] सुखमारुतम्।
पिकानां च कदम्बं च द्रुमाणां विपिनं तथा।।३६।।

शिशिरापगमात् सर्वे त्वमृतस्योपमां[३] ययुः।

सूत उवाच-

हास्याय च कुमाराणां पुनर्वव्रे विदूषकः।।३७।।

श्रूयतां[४] रामचन्द्र त्व सैन्यानां मस्तकेषु च।
पतिताः सहकारस्य कामाग्नेर्वर्धनाय च।।३८।।

अग्रे किंशुकजालं ते फुल्लं वीक्ष्य च सैनिकाः।
मेनिरे सर्वतो दीप्ताः वैश्वानर शिखामिव।।३९।।

पुष्पितां कुन्दशाखां च दृष्ट्वा हास्यं पुनर्ययुः।
ऊचुस्ते सैनिकाः सर्वे पश्यन्नाम्रं[५] च पुष्पितम्।।४०।।

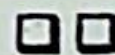
सैनिकाः ऊचुः-

इयं च सहकारस्य मादकाः भ्रामरैर्युता।
शाखाः कुसुमिताः नूनमस्माकं मोहनाय च।।४१।।

इति श्रुत्वा तदा वीरः सैन्यमोहस्य कारकः।
दण्डमुद्यम्य हस्तेन तताड सहकारकम्।।४२।।

अयं मद[६]करोस्माकं सैन्यानां युवती विना।
जहसु राघवाः सर्वे हास्यकारस्य कर्मणा।।४३।।

इति श्रीसत्योपाख्याने सूतशौनकसंवादे
पञ्चचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः।४५।



---

१. वश्यन्त -क
२. करकं -ग
३. ह्यमृतस्योपमतां -ग
४. शारेमं -क
५. सैन्यानां हास्यकारकः -ग
६. माद-ग

षट्चत्वारिंशोऽध्यायः

सूत उवाच-

अथ रामोपि धर्मात्मा वसन्तोत्सवमन्वभूत्।
मृगयायां रतिं चक्रे सखिभिः सह बुद्धिमान्।।१।।

श्वगणेन[1] समायुक्तं तदा[2] च भ्रातृभिर्वृतम्[3]।
वनं विवेश रामो हि गुहेन सखिभिस्तथा।।२।।

मौलौ निबध्य वेगेन वनमालां च पाणिना।
तुरङ्गं[4] नर्तयामास रेज च चलकुण्डलः[5]।।३।।

आविश्य तरुशाखां च षट्पदैर्नेत्रतां गतैः[6]।
ददृशुः वनदेव्यश्च[7] रामं कन्दर्पसन्निभम्।।४।।

इन्द्रचापसमे[8] चापे[9] सज्जं कृत्वा च लीलया।
रवेण क्षोभयामास[10] सिंहान्वनगतान् प्रभुः।।५।।

गगनं छादयामास हयस्य[11] खुररेणुभिः।
चललक्ष्यनिपाते च रामोभ्यासं चकार ह।।६।।

---

१. स्वगणेन -ग
२. तथा-ग
३. चानापिभिर्वृतम्-ग
४. तुरगं-ग
५. रेजेवं चुलकुण्डले-क
६. षट्पदा नृततां गतैः-क
७. वनदेवाश्च-ग
८. समं-ग
९. चापं-ग
१०. रवसा क्षोभयामस--क
११. चाश्वस्य-ग

अग्रे रामस्य यूथं च मृगानामाबभूव ह।
शार्वैर्व्याहन्यमानं च मृगीनां स्तनपायिभिः।।७।।

तदग्रे कृष्णसारं च गतं दीर्घविषाणिनम्।
हास्यार्थं सर्वसैन्यानां रामस्यापि विदूषकः।।८।।

द्रावयामास वेगेन मृगयूथं च वाजिना[१]।
पपात[२] मृगयूथं तु वनेषु बहुधा तदा।।९।।

जहसुः सैनिकाः सर्वे दृष्ट्वा पङ्क्तिं वनौकसाम्।
लक्ष्यं कृत्वा मृगं रामो दृष्ट्वा तस्य प्रियां मृगीम्।।१०।।

व्यवधाय स्थितां देहे न चक्रे बाणमोचनम्।
पुनरन्यं मृगं दृष्ट्वा न मुमोच शरं हरिः।।११।।

मुमोह तस्य नेत्राभ्यां गुणग्राही रघूत्तमः।
एतस्मिन्नन्तरे राजा निषादानां पतिः गुहः।।१२।।

समीपे रामचन्द्रस्य ह्याजगाम मुदा सुधी।

श्रीगुह उवाच-

भो श्रीराम महाबाहो श्रूयतां वचनं मम।।१३।।

मृगयूथवधेनैव ह्यस्माकं किं भविष्यति।
सिंहानां च गजानां च मृगयां क्रीयतां वने।।१४।।

एतस्मिन्नन्तरे चैव हासकोऽन्य समागतः।
अब्रवीद्रामचन्द्रं च मृगयार्थं महात्मनः[३]।।१५।।

श्रीविदूषक उवाच-

इतो विदूरे भो राम पल्लवं वर्तते वने।
कोलानां तत्र यूथानि वर्तन्ते बहुशः प्रभो।।१६।।

तेषां मुखाद् विकीर्णानि गुहारोहानि[४] पश्य भो।
गम्यतां तत्र भो वीर मृगयार्थं त्वया झटिति।।१७।।

---

१. गामिना-ग

२. ययौ तं-क

३. महामनाः -ग

४. मुरता -ग

श्रीसूत उवाच-

इति श्रुत्वा द्वितीयस्तु हास्यकारो ब्रवीदिदम्।
न मया तत्र गन्तव्यं वाराहानां च सन्मुखे।।१८।।

लीलया[१] नरनाशाय[२] तत्र गन्तुं न शक्ष्महे[३]।
इति वाक्यं तदाश्रुत्य जहसू[४] राजपुत्रकाः।।१९।।

रामो जग्राह मार्गं तु कोलानां च गुहाज्ञया।
आगच्छन्तं वाराहं[५] तु रामो विव्याध चेषुभिः।।२०।।

प्राणान् ग्रहीत्वा ते बाणाः शुष्काः पेतुर्महीतले।
एवं हत्वां वराहं तु जगामाग्रे रघूत्तमः।।२१।।

पल्वलाच्च महाखड्गी चोतस्थौ सैन्यसम्मुखे।
तं दृष्ट्वा सैनिकाः[६] सर्वे हाहाशब्दं प्रचक्रमुः।।२२।।

केचिद्बाणैर्भुशुण्डीभिः केचित् खड्गैर्व्यदारयन्।
एवं हत्वा तदा तं तु जगामाग्रे च वाहिनी।।२३।।

हेषा[७]रवं तु वाजीनां श्रुत्वा सिंहो विनिर्ययौ।

श्रीरामभद्र उवाच[८]-

को हन्ता[९] ह्यस्य[१०] सिंहस्य गृह्णातु वीर[११]वीटिकाम्।।२४।।

गुहो जग्राह वेगेन हन्तव्योयं मया हरिः।
यथाज्ञापय तथा हन्मि सिंहं बाणेन वासिनाम्।।२५।।

---

१. लोलुपा-ग
२. नरनाशानां -क
३. नशद्महे -क
४. जहसू -क
५. वराहं -ग
६. सैन्यकाः-ग
७. तेषां-ग
८. राम उवाच-ग
९. हन्ति -क
१०. चास्य -ग
११. वर-ग

राघवेण तदा प्रोक्तो बाणेनैव च हन्यताम्।
राघवस्य तु तद्वाक्यं श्रुत्वा बाणं च सन्दधे।।२६।।

जघान शिरसो मध्ये सिंहस्यैव तदा गुहः।
उत्पपात तदा सिंहो ननाद[१] च पुनः पुनः।।२७।।

सखापि रघुनाथस्य प्रतापी नाम नामतः।
जघाना[२]त्यन्तवेगेन कण्ठदेशे महाहरेः[३]।।२८।।

हत्वा सिंह प्रतापी तु ननाम[४] रघुपुङ्गवम्
राघवः परमप्रीतः सखायं परिषस्वजे।।२९।।

निषादाधिपतिं प्रीतो ददौ दायद्वयं[५] प्रति।
तस्मिन्काले पदातिस्तु चाजगाम वनान्तरात्।।३०।।

वर्तते च महासिंहो वनेऽस्मिन् रघुनायकः।
इति श्रुत्वा तदा वाक्यं भरतो राममब्रवीत्।।३१।।

श्रीभरत उवाच-

मया सिंहोऽपि हन्तव्यो वने एकाकिना[६] प्रभो।
मम सिंहस्य युद्धं तु सर्वे पश्यन्तु सैनिकाः।।३२।।

श्रीरामकुमार उवाच-

भो भो भ्रातः शृणुष्वेदं न योगमीहसे[७] हरौ।
क्षत्रियस्यैव शूरत्वं[८] रणे चैव यशो नहि।।३३।।

गम्यतां सखिभिः सार्द्धं हन्यतां चैव केशरीम्।
आज्ञप्तो रघुनाथेन जगाम भरतो हरिम्।।३४।।

---

१. ननर्त -ग
२. जघानो -ग
३. महासरे -क
४. नाम-क
५. देयं -क
६. हये-ग
७. योग्यसाहसं -ग
८. सूरस्य -क

सैनस्या[1]वरणं चक्रे हननार्थं तु वै हरेः।
सिंहो दृष्ट्वा जनान् सर्वान् [2]जगर्जोत्क्षिप्य केशरम्।।३५।।

नरावरणमध्ये तु केशरी भरतं प्रति।
उच्चचाल तदा हृष्टो भीषयन् वाजि[3]मण्डलम्।।३६।।

चापमाकृष्य वेगेन विव्याध तस्य मस्तके।
बाणस्य स्पर्शमात्रे न ममार स तु केशरी।।३७।।

दिव्यदेहधरो जातस्तुलसीदाममण्डितः।
शङ्खचक्रधरो धीमान् विष्णुपार्षदसन्निभः।।३८।।

चतुर्भिर्बाहुभिर्युक्तो मुकुटी कुण्डलान्वितः।
भरतस्य ननामाथ पादपद्मे महात्मना।।३९।।

पुनरुत्थाय प्रेम्णा तु तस्थौ प्राञ्जलिरग्रतः।

श्रीभरत उवाच-

कथं चरसि सिंहस्य रूपेण त्वं वने वने।।४०।।

केनैव कर्मणा प्राप्तः सिंहयोनि वदस्व मे।
पुनस्त्वं दिव्यरूपो हि मद्बाणस्य[4] स्पर्शमात्रतः।।४१।।
इति मे संशयं छिन्धि सर्वेषामपि शृण्वताम्।।४२।।

इति श्रीसत्योपाख्याने सूतशौनकसंवादे
षट्चत्वारिंशोऽध्यायः



---

१. सैन्येरा-ग
२. गज-क
३. गज-ग
४. मद्वासा-क

सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः

श्रीसिंह उवाच-

श्रूयतां मे कथां वीर पूर्वजन्मसमुद्भवाम्।
कलिङ्गदेशसम्भूतो नाम्नाहं शङ्करो द्विजः।।१।।

दुष्टसङ्गप्रभावेण ब्रह्मत्व नाशितं मया।
सर्ववर्णाश्रमाणाञ्च निन्दकोऽहं पुराभवम्[१]।।२।।

वैष्णवद्विजदेवानां निन्दने तत्परोभवम्[२]।
एकदा भ्रममाणेऽहं पृथिव्यां च यदृच्छया[३]।।३।।

भारद्वाजं मुनिवरं[४] प्रयागाश्रमवासिनम्।
हवनं च प्रकुर्वन्तमग्नौ प्रज्वलिते मुदा।।४।।

घृतं शर्करया सार्धं तिलेन सह पायसम्।
अन्यैः मिष्टफलैः[५] साकं क्षिपन्तं जातवेदसि।।५।।

तं दृष्ट्वा महदाश्चर्यमगमं[६] तस्य सन्निधौ।
कृतं मया महाभाग हास्यार्थं तस्य वै मुनेः।।६।।

उक्तो मया द्विजवरः किं त्वया क्रियते मुने।
एवं तु पायसं विप्र किमग्नौ पात्यते मुधा।।७।।

मह्यं देहि महाभाग येनाहं बलवत्तरः।
भवामि न चिरात् ब्रह्मन् त्वादृशानां च पातने।।८।।

---

१. पुराभवेत् -क
२. संरतोभवत् -ग
३. दिदृक्षया -क
४. वनचरं -क
५. अन्यैरिष्टफयैः -ग
६. गमनं -ग

अग्नौ यत्पात्यते वस्तू तत्सर्वं भस्मतां व्रजेत्।
अन्नस्योपद्रवं ह्येतत् प्रमादेन[1] त्वया कृतम्।।९।।

मां च[2] भोजय भो विप्र प्रभविष्ये सिंहवद् बली।
इदं वाक्यं मदीयं च श्रुत्वा विप्रश्चुकोप सः[3]।।१०।।

श्रीभरद्वाज उवाच-

ब्रह्मबन्धो किमेतत् ते व्याहृतं वेदनिन्दनम्।
वेदो नारायणः साक्षात्तेनैवाराध्यते हरिः।।११।।

हृदयं तव सिंहत्वे तस्मात् सिंहो भविष्यति।
शप्तोऽहं तेन विप्रेन वेपथुर्मे तदा ह्यभूत्।।१२।।

प्रावोचं प्राञ्जलिं कृत्वा कदा मुक्तिर्भविष्यति।
सिंहयोनेर्द्विजश्रेष्ठ पापिनो मे महामुने[4]।।१३।।

भरद्वाज उवाच-

त्रेतायुगे दाशरथिः साक्षादीशो[5] भविष्यति।
अयोध्यायां महापुर्य्यां नाम्ना रामो महीपतिः।।१४।।

कनीयान् भरतस्तस्य भ्राता शूरो भविष्यति।
मृगयार्थं रामचन्द्रः[6] ससखिभिः परिवारितः।।१५।।

यत्र त्वं सिंहरूपेण यास्यसि विपिने घने[7]।
भरतस्तत्र चागत्य चेषुणा त्वां वधिष्यति।।१६।।

बाणस्य स्पर्शमात्रेण[8] दिव्यदेहो भविष्यसि।
अधुना तस्य वाक्यं तु सत्यं जातं तवाग्रतः।।१७।।

नमस्ते राजपुत्राय भरताय नमो नमः।
नमस्ते रघुवर्य्याय नमस्ते सत्त्वमूर्तये।।१८।।

---

१. प्रमोदं न -क
२. मम -क
३. ह -ग
४. महामते -ग
५. साक्षाच्छ्रीशो -ग
६. रामचन्द्रेण -ग
७. वने -ग
८. बाणाघातस्य मात्रेण -क

आज्ञां देहि महाराज गमनार्थं[1] रामसन्निधौ।
नत्वा रामस्य पादौ तु गमिष्यते परमं पदम्।।१९।।

श्रीभरत उवाच-

मयापि तत्र गन्तव्यं त्वमप्यागच्छ भो द्विज।
इत्युक्त्वा सखिभिः सार्द्धं तेन वै[2] भरतो मुदा।।२०।।

आजगाम हरेः पार्श्वं रामस्य परमात्मनः।
दृष्ट्वा तथागतं[3] देवो लेभे कौतूहलं तदा।।२१।।

सोऽपि चागत्य रामस्य ववन्दे चरणौ मुदा।
तस्य वृत्तं तु रामाय सखायो भरतस्य ये।।२२।।

ऊचुः श्रुत्वा च रामोऽपि ह्याश्चर्यमिव चाब्रवीत्।
आज्ञप्तो रामचन्द्रेण किङ्किणीजालमालिना।।२३।।

विमानेन दिवं यातो रामचन्द्रप्रसादतः।
यत्र[4] गच्छन्ति धर्मिष्ठाः विष्णुभक्ताः सुसाधवः।
न[5] व्रजन्ति ह्यधर्मिष्ठाः शठाः भूतद्रुहः खलाः।।२४।।

इति श्रीसत्योपाख्याने सूतशौनकसंवादे मृगयाविहारोनाम सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः।४७।



---

१. जगाम -क

२. तेनैव -ग

३. रामोऽपि तं-ग

४. यन्त गच्छन्त्यधर्मिष्ठाः सठाः भूतद्रुहरवलाः -क

५. इदं वाक्यं क-मातृकायां नास्ति। सम्भवतः पूर्ववाक्ये एव अस्य समावेशोऽभवत्।

अष्टचत्वारिंशदध्यायः

श्रीसूत उवाच-

सेना जगाम चाग्रे वै गोमत्यास्तीरसम्भवम्।
वनं बहुमृगाकीर्णं झिल्लीझङ्कारनादितम्।।१।।

यामे चतुर्थे रामस्तु गुहं प्रोवाच धर्मवित्।

श्रीरामभद्र उवाच-

निषादाधिपतेर्ह्यत्र वस्तव्यं विपिने मया।।२।।

गोमत्याः पुलिने रम्ये मुनिसङ्कुलशोभिते।
सैनिकाः श्रमिताः नूनं दिनान्तश्चापि वर्तते।।३।।

[1]वनस्थाः ऋषयः सन्ध्यां पश्चिमां समुपासते।
सूर्यश्चास्तगिरिं प्राप्तो वयं चात्र वसेमहि।।४।।

एते मयूराः संयान्ति निवासाय द्रुमान् प्रति।
न गच्छन्ति जनाः नूनं ज्ञात्वा संध्यामुपागताम्।।५।।

ऋषीणामाश्रमे[2] ह्यत्र जायते[3] धूमदर्शनम्।
धेनवः शीघ्रगामिन्यः ऋषीणामाश्रमं प्रति।।६।।

मञ्जरीभिः शुकैः कीर्णं गोधूमानां महीतलम्।
शुकाः वसन्ति वृक्षाणां कोटरेषु समन्ततः।।७।।

एते मृगाः समायान्ति मुनेराश्रमवासिनः।
इत्येवं वदतस्तस्य सेना प्राप्ताश्रमान्तिके।।८।।

मेधावी नाम सः ऋषिः ज्ञात्वा रामं समागतम्।
शिष्यैः परिवृतो मुख्यैः फलपुष्पकरैर्मुदा।।९।।

---

१. वनस्थाः ऋषयः सर्वे पश्चिमां सन्ध्यामुपासते-ग

२. ऋषीणामाश्रमं -ग

३. ज्ञायते -ग

रामचन्द्रोऽपि धर्मात्मा[१] वाहनादवरुह्य च।
भ्रातृभिः सखिभिः सार्द्धं ववन्दे चरणौ तदा[२]।।१०।।

बभूव तीर्थं गोमत्याः पापदारेति विश्रुताम्।
यत्र स्नातेन दानेन पापं नश्यति वै नृणाम्।।११।।

स्तुत्वा रामं मुनिस्तत्र निनाय चाश्रमं प्रति।
पूजयामास विधिवत् फलमूलसमित्कुशैः।।१२।।

सेनानिवेशस्तत्रासीदृषेराज्ञामवाप्य च।
ऋषेराज्ञामनुप्राप्य कृत्वां सन्ध्यां यथाविधिः।।१३।।

तदारामस्तु पक्वान्नं भ्रातृभिः सखिभिः सह।
कौशल्याप्रेषितं चान्नं बुभुजे प्रीतिमानसः।।१४।।

तथा च सैनिकाः सर्वे बुभुजुः कदलीदले।
अश्वाः गजाः तथा चोष्ट्राः यवसैस्ते च[३] तर्पिताः।।१५।।

रात्रौ प्रजज्वलुः दीपाः वृक्षे वृक्षे समर्पिताः।
गजग्रैवेयकं तत्र वृक्षस्कन्धे समर्पितम्।।१६।।

सैनिकाश्च तदा निद्रां लेभिरे परया मुदा।
अर्द्धरात्रे व्यतीते च सर्वे निद्रां च लेभिरे।।१७।।

पृतनायास्तदा[४] रक्षां रक्षकाश्च प्रचक्रिरे।
शत्रुघ्नोऽपि महावीरो[५] निद्रां त्यक्त्वा महामना।।१८।।

रजन्याः पश्चिमे यामे धनुर्बाणधरः स्वयम्।
ररक्षे बन्धून् प्रेम्णा वै सौभ्रात्रामनुदर्शयन्।।१९।।

एतस्मिन्नतरे तत्र महोत्पातो[६] बभूव ह।
सेना गजाः पलायन्ते मुक्त्वा पादैश्च शृंखलाम्।।२०।।

---

१. तं दृष्ट्वा -ग
२. मुदा -ग
३. यवसैरन्नैश्च -ग
४. प्रयत्नयास्तदा -क
५. तदा -ग
६. महानुत्पातो -ग

मदं जिघ्राय करिणो वन्यस्य वनवासिनः।
विशृङ्खलं शृङ्खलकाः[1] पलायनपराः ययुः।।२१।।

मतङ्गस्य[2] भयादश्वाः कीलमुत्पाट्य वेगतः।
स तु मत्तो हि मातङ्गो गन्धमाघ्राय दन्तिनाम्।।२२।।

सेनायाः प्रययौ पार्श्वं युद्धाय किल दन्तिभिः।
यस्मिन् वृक्षे गजाः बद्धाः सेनायाः किल नागराट्।।२३।।

तं तं बभञ्ज वेगेन शुण्डेनाकृष्य वीर्यवान्।
मानिनोऽत्र[3] मदोन्मत्तान् सहन्ते[4] खलु वैरिणाम्।।२४।।

गन्धं परमसामर्थ्याद्[5] व्रणनाय[6] किलोद्यताः।
भ्रमद्भिर्भ्रमरैर्युक्तः कण्ठस्थमदपायिभिः।।२५।।

धूलिधूसरसर्वाङ्गो वन्यो नागो[7] हि ददृशे।
महामात्रास्तदानीं तु ह्यश्वपालास्तथैव तु[8]।।२६।।

उष्ट्रपालास्तथा चान्ये चक्रुः कोलाहलं महत्।
शत्रुघ्नस्तु तदोत्थाय पप्रच्छाखिलसेवकान्।।२७।।

किं किं किमिति भो लोकाः सेनायां श्रूयते ध्वनिः।
एतस्मिन्नन्तरे तं तु हस्तिपा वाक्यमब्रवीत्[9]।।२८।।

[10]हस्तिपा ऊचुः -

कुमाराः श्रूयतां वाक्यं नागोऽयं च बलाद्भवः।
समायति गजैः साकं युद्धाय कृतनिश्चयः।।२९।।

---

१. शृङ्खलिकाः -क
२. 'मतङ्गस्य-दन्तिनाम्' पर्यन्तं ग-मातृकायां नास्ति
३. हि -ग
४. हसन्ते -ग
५. परभयामर्षा -ग
६. घननाद्ये -ग
७. वन्यनागो -ग
८. च -ग
९. वाक्यमब्रूवन -ग
१०. अयं क-मातृकायां नास्ति

एतस्मिन्नन्तरे राजा निषादादधिपतिर्गुहः।
उवाच वचनं योग्यं[1] जनानां शृण्वतामिदम्।।३०।।

हन्यतां हन्यतामेष उल्मुकैस्तु मतङ्गजः।

श्रीशत्रुघ्न उवाच-

कुत्र चास्ति गजो वन्यो द्रष्टुं चेच्छामि भो जनाः।।३१।।

सज्जं कृत्वा धनुर्बाणं गुहेन सह जगाम च।
तदा गजो मदोमत्तो दूराद् दृष्ट्वा जनान् बहून्।।३२।।

गन्तुं समीपे सः पापः शत्रुहा यत्र तिष्ठति।
जनाः पलायिताः सर्वे दृष्ट्वा पपातं मतङ्गजम्।।३३।।

हास्यं कृत्वा हि शत्रुघ्नः चापमाकृष्य वेगतः।
तताड[2] मस्तके बाणं स्वर्णपुङ्खं शिलासितम्।।३४।।

स तु बाणो गजं भित्वा प्राणामाकृष्य तस्य तु।
गुरद्वारेण निर्धाम भूम्यां च विविशे पुनः।।३५।।

गजदेहं परित्यज्य देवदेहो[3] बभूव ह।
शङ्खचक्रधरो देवो वनमालापरिष्कृतः।।३६।।

श्रीसूत उवाच-

तं दृष्ट्वा महदाश्चर्यं शत्रुघ्नो विस्मितोऽभवन्।
पप्रच्छ कारणं तं तु गजदेहस्य तं प्रति।।३७।।

श्रीशत्रुघ्न उवाच-

कारणं ब्रूहि भो देव गजदेहस्य मां प्रति।
केन त्वं कर्मणा जातो गजरूपो महामतिः।।३८।।

श्रीदेव उवाच-

श्रूयतां रघुशार्दूल कारणं मे गजस्य भो।
पुराहं ब्राह्मणो मद्यपानरतः सदा।।३९।।

साधुनिन्दाकरो नित्यं तथा विष्णुविनिन्दकः।
मत्तोहं मदपानेन वीथ्यां गच्छन्नितस्ततः।।४०।।

---

१. -वेगाज् -ग

२. तप्तास्तु -क

३. देवदेवो -ग

माहिष्मत्यां निवासो मे पूर्वजन्मनि राघव।
आजगाम ऋषिः कश्चिन्नामोऽपि[1] सुदर्शनः।।४१।।

विष्णुभक्तो महाबुद्धिः साधुसेवी जितेन्द्रियः।
स्नात्वा सरोवरे दिव्ये पूजां चक्रे हरेः शुभाम्।।४१।।

घण्टानादः कृतस्तेन शङ्खनादस्तथैव च।
तं श्रुत्वाहं जहासोच्चै बृंहितेन गजो यथा।।४३।।

शप्तोहं तेन मुनिना गजस्त्वं भव दुर्मते।
घण्टानादं शङ्खनादं हरिगीतं तथैव च।।४४।।

श्रुत्वा हसन्ति ये पापास्ते स्युर्नरकगामिनः[2]।
निन्दां कुर्वन्ति ये विष्णोः हरस्य तत्परस्य वा।।४५।।

तेषां मुखं च द्रष्टव्यं सङ्गतिस्तु कुतस्तरां।
इत्येवं ब्रुवतस्तस्य पादेहं पतितोऽभवम्।।४६।।

कथं मे शापतो मुक्तिर्मया पुष्टो मुनिः पुनः।
सोऽप्युवाच दयां कुर्वन् श्रूयतां वाच्यं[3] तत्त्वतः।।४७।।

श्रीसुदर्शन उवाच-

त्रेतायुगे ह्ययोध्यायां राजा दशरथो किल[4]।
भविष्यति महाप्राज्ञस्तस्य पुत्रो हरिः स्वयम्।।४८।।

रामलक्ष्मणभरतशत्रुघ्नाः इति संज्ञया।
खेटकार्थे कुमारास्ते गमिष्यन्ति वने वने।।४९।।

गोमत्याः पुलिने रम्ये वासस्तस्य भविष्यति।
गन्धमाघ्राय सेनायाः गजानां त्वं गमिष्यसि।।५०।।

त्वदीय गन्धमाघ्राय विद्रविष्यन्ति ते गजाः।
अर्द्धरात्रे[5] महाघोरे जाग्रतः शत्रुघातिनः।।५१।।

---

१. कश्चितान्मासोऽपि -क
२. नराः -ग
३. वच्मि -ग
४. बली -ग
५. अर्द्धरात्रै -ग

तस्य बाणप्रहारेण गजत्वं त्वं त्यजिष्यसि।
अङ्घ्री स्पृष्ट्वा तदा तस्य प्रयास्यसि परं पदम्।।५२।।

श्रीदेव उवाच-

इदानीं तस्य वाक्यं तु सत्यं जातं तु राघव।
नमस्ते चक्ररूपाय रघुवर्याय ते नमः।।५३।।

नमस्तेस्तु महावीर पाहि मां शरणागतम्।
वने रणे महाघोरे सङ्कटे शत्रुसङ्गरे।।५४।।

ध्यानं तव करिष्यन्ति तेषां कालभयं[१] नहि।
इत्युक्त्वा पादयोर्नत्वा जगाम परमं पदम्।।५५।।

तत् शत्रुघ्नादयः सर्वे विस्मयं लेभिरे तदा।
रामस्य निकटे तस्थौ गुहेन स महामतिः।।५६।।

निद्रां विहाय रामस्तु चोत्थितो रजनीक्षये।
गुहोपि कथयामास मतङ्गहननं सुधी।।५७।।

रघुनाथोपि तच्छ्रुत्वा भ्रातरं परिषष्वजे।
लज्जमानं महाबाहु हृदा[२] सम्मेल्य प्रेमतः।।५८।।

श्रीराम उवाच-

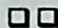
अस्मिन् वने महाघोरे निद्राया परिमोहिताः।
गुहेन भवतां चैव मतङ्गाच्चभिरक्षिताः[३]।।५९।।

गुहमित्रेण भ्राता च सनाथाः विचरेमहि।

सूत उवाच-

एवं प्रब्रुवतस्तस्य मार्तण्डो ददृशे जनैः।
प्रातर्सन्ध्यामुपास्यार्थं गन्तुं चक्रे मनो हरिः।।६०।।

इति श्रीसत्योपाख्याने सूतशौनकसंवादे
अष्टचत्वारिंशदध्यायः।। ।४८।



---

१. वाल -ग

२. हृदि -ग

१. मातङ्गाच्चापि रक्षिताः-ग

३

एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

श्रीसूत उवाच-

मेधाविनं च विज्ञाप्य प्रणम्य चरणौ पुनः।
आरुरोहं रथं रामो नानारत्नपरिष्कृतम्।।१।।

तथैव भ्रातरः सर्वे सखायो निजवाहनात्।
चचाल ध्वनिनीवेगगोमत्याः पुलिनाच्छुभात्।।२।।

खेटकं बहुधा कुर्वन् जीवानां वनवासिनाम्।
राघवस्तु रथारूढो ददर्श मृगपुङ्गवम्।।३।।

उवाच राघवो वाक्यं सूतं प्रति महात्मना।।४।।

श्रीरामभद्र उवाच-

रथं प्रापय मे सूत मृगपृष्ठे न संशयः।
हनिष्यामि मृगं ह्येनं यदि नास्ति तपस्विनः।।५।।

श्रीसूत उवाच-

इत्युक्तो रघुनाथेन प्रेरणामास वाजिनः।।६।।

वायुवेगेन ते वाहाः हर्षाच्चैव प्रदुद्रुवुः।
पुनराह तदा रामः सूतं गम्भीरया गिरा।।७।।

श्रीरामभद्र उवाच-

स्यन्दनोयं महावेगाद् वायुवेगेन गच्छति।
मया न दृश्यते सम्यग् भूभागश्च इतस्ततः।।८।।

यद्वने[१] दृश्यते[२] ह्यग्रे पश्चाद् भवति तत्क्षणात्।
अग्रे या दृश्यते भूमिः ह्यापतन्तीव लक्ष्यते।।९।।

---

१. यद्वनं -ग
२. पश्यते -ग

पलायती रथं पृष्ठं[1] मया सूत विलोक्यते।
एते रथ्याः महावेगाद्वहन्ति रथमोजसा।।१०।।

सूर्यरथ्या यथा व्योम्नि वहन्ति रविस्यन्दनम्।
वाहाद्रवन्ति वेगेन धूलिपातभयादिव।।११।।

रथशिक्षाप्रवीणोसि[2] गृह्यतामङ्गदं त्विदम्।
श्लाघामेवं प्रकुर्वाणो विरराम महामतिः[3]।।१२।।

श्रीसूत उवाच-

मृगं दृष्ट्वा पलायन्तं पुनः प्रोवाच राघवः।
पश्य त्वं सारथे ह्येन मृगो धावाति वेगतः।।१३।।

क्वचिद् ग्रीवा च सङ्कुच्य नभो गच्छति[4] वेगतः।
स्वल्पं गच्छति भूपृष्ठे बहुधा याति चाम्बरे।।१४।।

बाणपातभयाच्चैव नितम्बं सङ्कुच्यते मुहुः।
स्यन्दने ददति दृष्टिं ग्रीवाभङ्गं विधाय च।।१५।।

क्वचिद् याति प्रकाशं च क्वचिद्याति निलीय[5] च।
धूर्तोयं मृगराजस्तु ह्याश्रमस्थो न संशयः।।१६।।

सूत उवाच-

इत्येवं ब्रुवतस्तस्य रामस्य परमात्मनः।
प्राप्ता सेना तदा वेगाद्रामचन्द्रस्य सन्निधौ।।१७।।

दुन्दुभीनां प्रणादं तु श्रुत्वा मुनिवरैः तदा।
बालखिल्यौ महाबुद्धी रामपार्श्वमुपागतौ।।१८।।

श्रीबालखिल्यौवाच (ऊचतुः)-

न हन्तव्यो न हन्तव्यो मृगोऽयं वनवासिनाम्।
भविष्यति महादोषो[6] वधो ह्यस्य कुमारकः।।१९।।

---

१. रथपृष्ठे -ग
२. प्रवीणासि -ग
३. श्लाघां स्वमेव प्रकुर्वन् सोऽपि राम महामतिः। -क
४. धावति -ग
५. विलय -क
६. महान् दोषो -ग

श्रीसूत उवाच-

आरुरोह रथाद्रामो दृष्ट्वा तौ मुनिपुङ्गवौ।
पपात चरणोपान्ते नम्नो भूत्वा स्थितः पुनः।।२०।।

श्रीरामकुमार उवाच-

क्षम्यतामपराधं मे बालकस्य महामती।
अजानता[१] मया चैव युवयोर्द्रावितो मृगः।।२१।।

बालखिल्यावूचतुः-

अजानतां न दोषोऽस्ति चेश्वराणां च किं पुनः।
मर्यादा पालिता राम त्वया वै धर्मभीरुणा।।२२।।

आशीर्वादं प्रदास्यावः श्रूयतां तच्च राघवः।
जनकस्य गृहे सन्ति कुमार्यः वेदसंख्यया।।२३।।

विवाहो [२]भवताद्वीर कुमारीणां किलैकदा।
ताभ्यामुक्तस्तदा रामो रथमारुरुहे पुनः।।२४।।

आज्ञाप्य तौ मुनी रामो गम्यतामाश्रमं प्रति।
चचाल सेनया सार्धं राघवः प्रहसन् मुदा।।२५।।

वर्णयन्नृषिसङ्घानामाश्रमानि इतस्ततः[३]।
ततोर्द्धदिवसे याते मध्यं प्राप्तो दिवाकरे।।२६।।

प्राप्ता सेना मुनेः स्थानमृषिशृङ्गस्य वेगतः।
फेनान्वमंतिवाहाश्च[४] सूर्यरश्मिप्रपीडिताः।।२७।।

एतस्मिन्नन्तरे जीवाः सेनानादप्रपीडिताः।
व्याघ्राः सिंहवराहाश्च महिषाः ऋक्षवानराः।।२८।।

शशाः मृगास्तथा चान्ये परिपेतुरनेकशः।
तेषां पलायितं दृष्ट्वा ऋषिशृङ्गः प्रतापवान्।।२९।।

उवाच शिष्यान् मेधावी पश्यतां कः समागतः।
राजा वा राजपुत्रश्च मृगयार्थं समागतः।।३०।।

---

१. 'अजानता---वुचतुः' पर्यन्तं भागः -क-मातृकायां नास्ति।
२. भवता वीर कुमाराणां किल चैकदा-ग
३. यत -ग
४. फेनान् मुचंति -ग

संवेष्ट्य पादवल्लीश्च विद्रवन्ति वने गजाः।
एते पतन्ति चारण्याः मृगाः वै सरयूजले॥३१॥

प्लवन्ति शतशो जीवाः प्राणरक्षार्थहेतवे।
गम्यतां तत्र शीघ्रं वै वार्यतां मृगपार्थिनः॥३२॥

श्रीसूत उवाच-

इत्याज्ञप्तश्च मुनिना निर्जगाम महामतिः।
दृष्ट्वा राममुवाचाशीर्विधाय करसम्पुटम्॥३३॥

प्रणम्य लक्ष्मणो वाक्यमुवाच तं मुनिं प्रति।

श्रीलक्ष्मण उवाच-

वर्तते मुनिशार्दूलो ऋषिशृङ्गो निजाश्रमे।
दर्शनं च करिष्यामः वयं तस्य महामुने॥३४॥

श्रीमहामति[१] उवाच-

वर्तते मुनिशार्दूलो अग्निहोत्रं विधाय च।
श्रीमतां सङ्गमं चास्ते प्रतीक्षन् शान्तया सह॥३५॥

सूत उवाच-

विश्राव्य वचनं रामः जगाम मुनिसन्निधौ।
कथयामास वृत्तान्तं रामचन्द्रं समागतम्[२]॥३६॥

सैनिकाः सह रामेण विज्यं कृत्वा च कार्मुकम्।
आश्रमं विविशुः वेगाद्दर्शनार्थं महामुनेः॥३७॥

शान्तापि भगिनी तस्य रामस्य परमात्मनः।
पाद्यं अर्घ्यं विधायाथ चक्रे नीराजनं ततः॥३८॥

अञ्चलेन ममार्जाथ[३] रामस्य मुखपञ्कजम्।
सहोदराणां च सर्वेषां वदनानि ममार्ज[४] च॥३९॥

ऋषिशृङ्गोपि चागम्य चाशीर्वादमुवाच च[५]।
रामादयस्तु ते सर्वे जगृहुः पादपङ्कजम्॥४०॥

---

१. महाराति -क

२. एतां गति-क

१. ममाजीषु-क

२. प्रमार्ज -क

३. ह-ग

संपरिष्वज्य प्रेम्णा तु रामादीन् राजपुत्रकान्।
आश्रमे निवेशयामास सैन्यान् सर्वान् महामतिः।।४१।।

योगमायाप्रभावेण ह्यन्नानि ससृजे पुनः।
भोजयामास प्रेम्णा च सैन्यान् सर्वान् मुनीश्वरः।।४२।।

उषुस्ते सरयूतीरे रात्रौ सर्वे जनास्तदा।
योगिना ऋषिशृङ्गेण ह्याज्ञप्ताः शतशोप्सराः।।४३।।

सिषेविरे तदा सैन्यान् वात्सल्यादनुरूपतः[१]।
एवं विलसतां तेषां गता रात्री महामुने।।४४।।

स्नानं कृत्वा च ते सर्वे विविशुर्मुनिसन्निधौ।

सूत उवाच-

तदा विदूषकः कश्चिद् वाक्यमूचे मुनीश्वरम्।।४५।।

विदूषक उवाच-

भगवन् योगिनां श्रेष्ठ पृच्छामस्त्वां महामते।
एताश्चाप्सरसो दिव्याः भगिन्यो मातरस्तव।।४६।।

एताभिर्ल्लालिता नूनं वयं सुप्ताः नदी तटे।
उचिता परिचर्य्या नो भगिनीभिर्मुनीश्वरः।।४७।।

इत्येवं ब्रुवतस्तस्य जहसू सूरपुङ्गवाः।
मुनीश्वरो महासंज्ञ एवमेवमुवाच ह।।४८।।

श्रीरामकुमार उवाच-

आज्ञां च क्रियतां स्वामिन्नयोध्यागमनं प्रति।
मनो मे त्वरितो नाथ पित्रोः दर्शनकांक्षया।।४९।।

श्रीऋषिशृङ्ग उवाच-

गम्यतां रघुशार्दूल मम कार्यं विधाय च।
ग्राहो हि वर्तते राम सरय्वां निर्मले जले।।५०।।

यदा कदाचिद् भीषयते नरान् निर्णेतुमागतान्[२]।

श्रीरामभद्र उवाच-

हन्तव्यो हि मया नाथ ग्राहो जनभयङ्करः।।५१।।

१. वातः स्पर्शानुरुपतः-क
२. नरान्निर्नेतुमागतः -क

इत्युक्त्वा रघुनाथश्च जगाम सरयूतटे।
सशरं चापमादाय निषसाद नदीतटे।।५२।।

एतस्मिन्नन्तरे ग्राहः श्रुत्वा कोलाहलं नृणाम्।
उत्ततार नदीतोयात् ग्रहणार्थं निमज्जताम्।।५३।।

रामोऽपि बाणमाकृष्य जघान तस्य मूर्द्धनि।
बाणस्पर्शनमात्रेण[1] देहं त्यक्त्वा दिवङ्गतः।।५४।।

मुनीश्वरस्तमालिङ्ग्य विसृ॰र्ज रघूत्तमम्।
गजमारुह्य रामस्तु भ्रातरस्तु तथा गजान्।।५५।।

सखायस्तु तथा ह्यश्वान् जग्मुस्तेऽपि प्रहर्षिताः।
शकटासु[2] समारोप्य हतान्वन्याननेकशः।।५६।।

जगाम सेना सावेगादृषिशृङ्गं प्रणम्य च।
दुन्दुभीनां प्रणादस्तु श्रूयते बहुशो जनैः।।५७।।

अयोध्यानिकटं प्राप[3] कुमाराणां च सा चमूः।
नर्तयन्ति[4] तथा ह्यश्वान् भटाः नानाप्रकारतः।।५८।।

अयोध्यावासिनः सर्वे ढक्कानादं प्रश्रुत्य च।
निर्जग्मुः सहसा सर्वे युवावृद्धकुमारकाः।।५९।।

हर्म्याण्यारुरुहुर्नार्यः कुमाराणां दिदृक्षया।
उत्कण्ठितो बभूवाथ राजा दशरथो मुदा।।६०।।

चचालासनात्तूर्णमुत्थाय[5] खलु तिष्ठति।
कौशल्याद्याः मातरः[6] सर्वाः पुत्रदर्शनकांक्षया।।६१।।

प्रासादं रुरुहुः सर्वाः सखिभिः परिवारिताः।
एतस्मिन्नन्तरे रामो गजारूढो निजां पुरीम्।।६२।।

---

१. बाणस्य स्पर्शमात्रेण -ग
२. सकटास्व -क
३. अयोध्यानिकटे शेनं -क
४. भत्स्र्यन्ति -क
५. हर्षबानासतना -क
६. कौशल्याद्येतरः -क

विवेश भ्रातृभिः साकं नन्दयन् सुहृदः सखान्।
युवत्यो राममालोक्य नेत्रैः[१] हृदि निवेश्य च।।६३।।

परिष्वजिरे गाढं ब्रह्मानन्दपरिप्लुताः।
क्षणं युगशतमिव यासां येन विनाभवत्।।६४।।

अनिमेषैर्नेत्रपुटकैः पपुस्ताः मुखपङ्कजम्।
अतसीपुष्पसंकाशं रामस्य वदनाम्बुजम्।।६५।।

श्रमबिन्दुसमायुक्तं कुण्डलाभ्यां विराजितम्।
अलकैः धूसरैर्युक्तं वक्रैः वदनछादकैः।।६६।।

स्वर्णपट्टिकया युक्तमुष्णीषं रत्नगुच्छकम्।
कञ्चुकञ्च महादिव्यं स्वर्णसूत्रेण शीलितम्।।६७।।

रत्नकण्ठिकया युक्तं कण्ठं चातिमनोहरम्।
गजासने विराजन्तं ददृशुः पुरुषाः स्त्रियः।।६८।।

पञ्चमे दिवसे प्राप्तं रामं प्राणसमप्रियम्।
राजमार्गेण गच्छन्तं ययुः दर्शनकाङ्क्षया।।६९।।

राजद्वारं समागत्य भ्रातृभिः सखिभिः सह।
अवतीर्य गजाद्रामो [२]गुहहस्तावलम्बितः।।७०।।

भ्रातृभिः सखिभिः सार्द्धं ननाम चरणौ पितुः।
आलिङ्गत तदा राजा पुत्रान् सर्वान् महामतिः।।७१।।

पुत्रदर्शनजो मोदः शरीरेण मतौ तदा।
आनन्दजाश्रुरूपेण नेत्राभ्यां च बहिर्ययौ।।७२।।

रामाज्ञप्तस्तदा राजा गुहः[३] परमधार्मिकः।
दर्शयामास वन्यान्वै हताः ये च कुमारकैः।।७४।।

दृष्ट्वा दृष्ट्वा वन्यान् सः[४] प्रशशंशुपुर्नः पुनः।
साधु साध्विति सर्वान् सः ददौ देयं प्रहर्षितः।।७५।।

---

१. नयनैः -ग
२. गुरु -क
३. गुरुः -क
४. वन्यासः -क

गुहाय खड्गं रम्यं स प्रायच्छत् कनकत्सरुम्।
रामोऽपि भ्रातृभिः सार्द्धं मातुरन्तः पुरं ययौ।।७६।।

मातरस्तु समालिङ्ग्य रामादीन् राजपुत्रकान्।
नीराजनं ततश्चक्रुः ममृजुः वदनं मुहुः।।७७।।

ददुः दानं द्विजातिभ्यः पुत्रमङ्गलहेतवे।
एवं लीलानरवपू रमयन् सुतरां जनान्।।७८।।

स्थापयामास कीर्तिं च यया लोकस्तरष्यति।
इदं हि चरितं पुण्यममंगलनिवारणम्।।७९।।

यः पठेत् शृणुयाद्वापि स याति परमां गतिम्।
य इदं शृणुयान्नित्यं या स क्षणमनन्यधी।

रामे भक्तिर्भवेत्तस्य रामस्तस्मै प्रसीदति।
देवता पितरस्तस्य प्रसीदन्ति न संशयः।।८०।।

धान्यं[1] यशस्यमारोग्यं पुंसामायुर्विवर्धनम्।
शत्रुक्षयकरं शीघ्रं ग्रहशान्तिकरं तथा।।८१।।

यः पठेत् शृणुयाद्वापि भुक्तिं मुक्तिं च विन्दति।
वाचकाय प्रदातव्यं वस्त्ररत्नहिरण्यकम्।।८२।।

वाचके परितुष्टे च सन्तुष्टाः सन्ति देवताः।
इदं चातिरहस्यं तु गोप्यं परमदुर्लभम्।।८३।।

श्रीरामकृपया लभ्यं नान्यथा श्रवणं भवेत्।
किं मया बहुधा वाच्यं सर्वपुण्यफलं त्विदम्।
व्यासप्रसादाः जानामि श्रीरामकृपया तथा।।८४।।

इतः परं महारम्यं विवाहचरितं शुभम्।
वर्णयामि महापुण्यं श्रोतृणाघमोचनम्।।८५।।

इति श्रीसत्योपाख्याने श्रीसूतशौनकसंवादे
एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः।।४९।।
(क-मातृकायाम् पुष्पिका)

---

१. धन्यं -ग

पूर्वार्द्ध सम्पूर्णम्। शुभम्।
श्रीजानकीवल्लभार्पणमस्तु। श्रीरामजन्मनवमी दिने पूर्णं।
संवत् १८९९।
श्रीगुरस्वपठनार्थं निजलिपिकृतं जानकीजीवनसरनवर्मनेति।
श्रीशुभं भवतु।
(ग-मातृकायां पुष्पिका)

इति श्री सत्योपाख्याने सूतशौनकसंवादे एकोनपंचाशत्तमोऽध्यायः सवंत् १८८७

।।सत्योपाख्यानपूर्वार्द्धः समाप्तः।।



सत्योपाख्यानम्

(उत्तरार्धः)

पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

श्रीगणेशाय नमः। श्रीसरसुतो परमगुरवे नमः।
श्रीमते रामानुजाय नमः।

श्रीशौनक उवाच-

सूत सूत महाबुद्धे श्रीरामचरितं वद।
यस्य श्रवणमात्रेण भवेन् मुक्तो न संशयः॥१॥

उत्पन्ना च कथं सीता साक्षाल्लक्ष्मीः क्षितेस्तलात्।
कारणं वद मे विद्वन् रामेणोद्वाहिता पुनः॥२॥

श्रीसूत उवाच-

एकदा सुखमासीनः श्रिया सार्द्धं श्रियः पतिः।
वैकुण्ठे परमे दिव्ये पार्षदैः परिसेव्यते॥ ३॥

वसन्ति यत्र पुरुषाः नित्यमुक्ताः हरेः पदे।
यत्र नैश्रेयसं नाम वनं कामदुघं नृणाम् ॥४॥

परिक्रामन्ति वैकुण्ठं देवास्तु युवतीगणैः।
गायन्ति चतुरो वेदान्[1] नृत्यन्ति च हरेः पुरः॥५॥

न माया प्रभुता तत्र जनानां भयकारिणी।
इन्दिराप्रभुता तत्र रजःसत्त्वतमांसि नो[2]॥६॥

यत्र लक्ष्मीर्महाराज्ञी जगतां पालने क्षमा।
लसन्ति मणयो यत्र मुक्तानां दामभिः सह॥७॥

पार्षदास्तत्र शोभन्ते विष्वक्सेनादयः सदा।
नृत्यन्त्यपसरसो[3] यत्र उर्वश्याद्याः सहस्त्रशः॥८॥

---

१. वेदो-क

२. नः-क

३. नृत्यन्य-क

ऋतुराजश्च गन्धर्वस्तत्र याति नित्यशः।
तस्य कन्या महारूपा नाम्ना वासन्तिका मता॥९॥

सा नृत्यति हरेरग्रे सा लक्ष्म्या सह तिष्ठति[१]।
नृत्ये गाने प्रवीणा[२] च भावेऽभिनये तथा॥१०॥

भावः कटाक्षाः हेतुश्च शृङ्गारे बीजमादिमम्।
प्रेम मानप्रणयश्च[३] स्नेहो रागश्च संस्मृतः॥११॥

अनुरागः स एव स्यादङ्कुरः[४] पल्लवस्तथा।
कलिकाकुसुमानीति मूलं भोगः स एव च॥१२॥

काटाक्षस्त्रिविधः श्यामः श्वेतः श्यामस्तथा सितः।
हासोपि विविधस्तत्र मिथो यूनोः शशिप्रभः॥१३॥

आङ्गिको वाचिकस्तद्वदाहार्य्यः सात्त्विकोऽपरः।
चतुर्धाभिनयश्चेति विष्णोरग्रे[५] च नाटके॥१४॥

इति कर्त्तव्यता तस्य द्विविधा कथिता पुनः।
चित्तवृत्यर्पिका काचिद् बाह्यवस्त्वनुकारिणी॥१५॥

इति भेदद्वयं प्रोचुर्लोकधर्म्याः सनातनाः।
नाट्यधर्माः अपि द्वेधा भेद उक्तो हि ब्रह्मणः॥१६॥

जवत्व[६]स्थिरतारेखा[७]भ्रमरी[८]दृष्टिरश्रमः ।
प्रीतिर्मेधा च यो[९] गीतिः पात्रप्राणाः दश स्मृताः॥१७॥

कायस्थितिर्मनोनेत्रहारी रेखा प्रकीर्तिता।
संप्रदायानुसरणं मुद्रा हृदयरञ्जनी[१०]॥१८॥

---

१. तिष्ठतः-ग
२. नृत्यगानप्रवीणा-ग
३. मानः -ग
४. एवस्या कुन्दरः-क
५. विष्णुरग्रे-ग
६. जवत्वं-ग
७. रेषा-ग
८. भ्रामरी-ग
९. 'च चो' इति ग-मातृकायां नास्ति।
१०. सदय -क

आङ्गिकाभिनयैरेव भावानेव व्यनक्ति यत्।
तन्नृत्यं मार्गशब्देन वाल्मीकिर्मुनिरब्रवीत्॥१९॥

गात्रविक्षेपमात्रं तु सर्वाभिनयवर्जितम्।
आङ्गिकोक्तप्रकारेण नृत्यं ब्रूते समीरजः॥२०॥

अर्थशून्यं सुरेखाकं नृत्यं काललयाश्रितम्।
शिरोनेत्रकरादीनाभङ्गानामेलने सति[1]॥२१॥

यत्र[2] मध्येन सञ्चेन[3] नैरन्तर्य्येण वर्तनम्।
प्रमाणरेखया[4] युक्तं मदनृत्यं प्रचक्षते॥२२॥

यतो हस्तस्ततो दृष्टिर्यतो दृष्टिस्ततो मनः।
यतो मनस्ततो भावो यतो भावस्ततो रसः॥२३॥

अङ्गेनालम्बयेद्गीतं हस्तेनार्थं प्रदर्शयेत्।
चक्षुर्भ्यां भावमित्याहुः पादाभ्यां तालनिर्णयः[5]॥२४॥

भानवी[6] मैनवी चान्या गजलीला तरङ्गिणी।
हंसी मृगी खञ्जरीटी गतयः सप्त च त्विमाः॥२५॥

लावो हंसो मयूरश्च हयः कुञ्जर एव च।
तित्तिरः[7] कुक्कुटो मीनो गतयो लास्यहेतवः॥२६॥

इत्यादिनृत्यभेदैश्च तोषयामास सा हरिम्।
वासन्तिका स्वकीयैश्च हावभावैर्मनोरमैः॥२७॥

हावभावं च तस्यास्तु स्मरन् प्राह जनार्दनः।
वरं ब्रूहि प्रवीणे[8] त्वं मत्तः प्राप्स्यसि निश्चितम्॥२८॥

इत्थं सा प्रेरिता बाला हरिणा लोकधारिणा।
लज्जिता सा ब्रवीन्नैवं लक्ष्म्याः मुखं च पश्यति॥२९॥

---

१. सरि–क

२. 'कायस्थिति-रञ्जनी' ॥१८॥ श्लोकोऽयं ग-मातृकायामस्मात् श्लोकात् पूर्वं प्राप्यते।

३. सञ्चेत–ग

४. रेषया–क

५. निर्भयः–क

६. भाववी–ग

७. तित्तिरीः–क

८. प्रवीणो–क

अस्या हार्दं तु विज्ञाय लक्ष्मीः प्रोवाच सादरम्।
भविष्यति मे पतिस्तेपि[1] कृष्णावतारे च द्वापरे॥३०॥

त्वं चापि लक्ष्मणा राज्ञी अष्टमध्ये[2] भविष्यसि।

श्रीसूत उवाच-

लक्ष्म्याः पादौ प्रणम्याथ प्रोवाच वरवर्णिनी॥३१॥

श्रीवासन्तिकोवाच-

कथं त्रेतायुगेनाहं भविष्यामि हरेः प्रिया।
रामचन्द्रावतारेहं का भविष्यति शोभने॥३२॥

श्रीलक्ष्मीः ऊचुः[3]-

त्रेता युगे च श्रीरामो भविष्यति पतिर्मम।
एक पत्नीव्रतं तस्य न विहन्येत् कथंचन॥३३॥

तत्र चाहं भविष्यामि नाम्ना सीता च भूतलात्।
तत्र त्वं सुभगा नाम्ना सखीत्वं मे प्रयास्यसि[4]॥३४॥

आवयोः किङ्करत्वं च ब्रह्मप्राप्तिकरं तव।
भूमेर्भारावताराय रावणस्य वधाय च॥३५॥

भूलोकं च व्रजिष्यामि पत्या[5] सह सुलोचने।
अयं मम पतिः श्रीमान्[6] शेषेन चैव[7] शङ्खेन च॥३६।

सुदर्शनेन[8] त्वयोध्यायां[9] गृहे दशरथस्य च।
रामलक्ष्मणशत्रुघ्नभरता इति संज्ञया॥३७॥

अहं कन्या भविष्यामि जनकस्य महीतलात्।
शैषी शक्तिरुर्मिला च जनकस्यैव ह्यौरसी॥३८॥

---

१. यस्ते -क
२. अष्टौ मध्यै -ग
३. श्री रमोवाच -ग
४. व्रियामसि -क
५. पतिना -ग
६. श्री -क
७. च -ग
८. सुदर्शन -क
९. ह्ययोध्यायां -ग

पत्नी पाञ्चजनस्यापि माण्डवीति प्रकीर्तिता।
श्रुतिकीर्त्तिः तु चक्रस्य कुशध्वज सुते इमे॥३९॥

उत्पत्स्येते महाभागे विमले प्रस्तुते जनैः।
भविष्यन्ति च मे सख्यो अणिमाद्याः विभूतयः॥४०॥

वाक्यं निशम्य लक्ष्म्यास्तु मुमुदे वासन्तिका तदा।
वैकुण्ठवासिनः सर्वे सहवासार्थं मनोदधुः॥४१॥

देवलोकं परित्यज्य ह्ययोध्यायांजन्म लेभिरे।
अणिमाद्याः श्रियः सख्यो मिथिलायां जन्म लेभिरे॥४२॥

इति ते कथितं ब्रह्मन् जानक्याः जन्मकारणम्।
अतः परं महादिव्यं श्रूयतां जन्मसम्भवम्॥४३॥

इति श्रीसत्योपारख्याने सूतशौनकसंवादे
पञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥५०॥



एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

श्रीसूत उवाच-

एकदा जनको राजा मिथिलामावसन् पुरीम्।
यज्ञार्थं मानसं चक्रे समाहूय च ब्राह्मणान्॥१॥

पार्थिवांश्च समाहूय तथा जानपदान् जनान्।
ऋषीन् सर्वान् समाहूय सम्भारान् स्थाप्य भूरिशः॥२॥

लाङ्गलं[1] च विधायाथ शातकौम्भमयं शुभम्।
शतानन्दं पुरस्कृत्य समारेभे क्रतूत्तमम्[2]॥३॥

मासोत्तमे महापुण्ये वैशाखे माधवप्रिये।
कुजवारे शुक्लपक्षे नवमी पुष्यसंयुता॥४॥

पृथिव्याः पूजनं कृत्वा जनकस्तु नरेश्वरः।
हलने कर्षणं चक्रे सर्वेषां पश्यतां शताम्॥५॥

लाङ्गलस्य[3] मुखग्रात्तु रमाकन्या विनिर्गता।
भित्वा क्षितितलं सद्यः सीता नाम्ना बभूव सा॥६॥

ततो दुन्दुभयो नेदुः खात्ये तु पुष्पवृष्टयः।
गन्धर्वाश्च जगुः सर्वे ननृतुश्चाप्सरसो गणाः॥७॥

सम्बोध्य जनकं[4] वाणी देवैः प्रोक्ता[5] ब्रवीदिदम्।
पाल्यतां च त्वया राजन् कन्येयं कन्यका यथा॥८॥

भविष्यति परं श्रेयो ह्यनया कन्यया तव।
मुमोद जनको राजा श्रुत्वा वाक्यं गिरेरितम्[6]॥९॥

---

१. लाङ्गूलम् -क
२. कृततमम् -क
३. लाङ्गूलस्य -क
४. जनको -क
५. देवरोक्ता -क   ६. वाकां गिरे रतम् -क

नारदस्तु तदागत्य शिक्षयामास भूपतिम्।
तदा तु जनको राजा निजाङ्के समारोहयत्॥१०॥

पत्न्यै समर्पयामास सुनेत्रायै च भूपतिः।
तया संरक्षिता सीता ववृद्धे पितृवेश्मनि॥११॥

शुक्लपक्षे यथा नित्यं द्विजराजस्य कौमुदी।
ततः कन्या सुनेत्रायामुर्मिला नाम नामतः॥१२॥

कुशध्वजस्य या पत्नी कन्याद्वयमजीजनत्।
श्रुतकीर्तिर्माण्डवी च ध्यानात् पापनाशिनी॥१३॥

वासन्तिका पुरा प्रोक्ता जनकस्य मन्त्रिणः।
सुभगा नाम विख्याता सीतायाः सा सखी मता॥१४॥

सिद्धयोऽष्टाः च सम्प्रोक्ता निधयश्च नव स्मृताः।
सखीभावं प्रयाताश्च जानक्याः जनकालये॥१५॥

यदा प्रभृतयः सीता तु जाता जनकवेश्मनि।
लोकपालनिभाः सर्वे धनधान्यचयैर्बहुः[1]॥१६॥

ववृद्धे जानकी नित्यं ह्यात्मनस्तु सखीगणैः।
चिक्रीडु परमां क्रीडां जगदानन्ददायिनी॥१७॥

षट्वर्षापि च वैदेही रूपातिशयतया बभौ।
श्यामे च लक्ष्यते पौरेरवबोधैश्च मातृभिः॥१८॥

शृङ्गारे हावभावे च देहवृद्धौ तथैव च।
विजहार स्वयं सीता सखिभिः परिवारिता॥१९॥

यं यां[2] विलोकते सीता स्वभावात् पुरुषं स्त्रियम्।
अमज्यातानन्द[3]ह्रदे[4] स्वं भाग्यं मन्यतेधिकम्[5]॥२०॥

स्नानार्थं सा[6] कदाचित्तु सरो याति सखीगणैः।
तदा विलोक्यते लोकैरात्मजेव[7] [illegible][8] धर्मतः॥२१॥

---

१. [illegible] -क   २. यं यं -क

३. अमथांतानन्द -क   ४. कृते -क, हृदे -ग

५. सोऽपि भाग्याधिक्यं करोति स्वम् -क

६. क-मातृकायां नास्ति   ७. आत्मजो -क

८. बहि -क

कदाचित् वाटिकां याति[1] पूजामादाय भूयसीम्।
पूजनार्थं च गौर्यास्तु नियुक्ता मातृणां गणैः॥२२॥

कृत्वा कदाचित् पाकं तु ब्राह्मणान् भोजयति स्वयम्।
ब्राह्मणैर्वेदतत्त्वज्ञैर्ज्ञायते चरमा त्वियम्॥२३॥

अस्या कटाक्षमात्रेण सम्पदा पूर्यते जगत्।
क्वचिद् गायति[2] सा सीता ह्येकान्ते च सखीगणैः॥२४॥

क्वचिद् वादयते वीणां मृदङ्गमुरजादिकान्[3]।
आलिकानां क्वचिन्नृत्यं पश्यति प्रेमतत्परा॥२५॥

मालां पुष्पमयीं कृत्वा देवताभ्यो प्रयच्छति।
सुनेत्रा जननी तस्याः दृष्ट्वा चातुर्यमीदृशम्॥२६॥

रूपेणाप्रतिमां दृष्ट्वा तथा श्यामायति[4] सुताम्।
विवाहार्थं मनश्चक्रे जानक्याः किल चैकदा॥२७॥

श्रीसूत उवाच-

सीरध्वजं महाराजमेकान्ते हरितत्परम्।
दृष्ट्वा राज्ञी सुनेत्रा च प्रत्युवाच[5] महीपतिम्॥२८॥

श्रीसुनेत्रोवाच[6]-

इयं कन्या महीपाल सीता नाम्नी महाशुभाः।
विवाहं क्रियतामस्याः पतिना सदृशेन वै॥२९॥

ज्ञातीनां च महानन्दो विवाहेन भविष्यति।

श्रीजनक[7] उवाच-

चिन्ता ममास्ति भो भद्रे जानक्याः परिणये शुभा॥३०॥

---

१. वाटिकायां तु -क
२. गायन्ति -क
३. मृदङ्गसुखिरादिकान् -ग
४. तथास्यामायन्ति -क
५. मत्युवाच-क
६. श्रीसुमित्रोवाच -क
७. शौनक -क

स तु भाग्येन[१] कन्यायाः परिपूर्णो[२] भविष्यति।
इति विश्राव्य[३] स्वां पत्नीं निनाय निजमन्दिरे[४]॥३१॥

स्वयं कुशासने राजा सुष्वाप निश्चिन्तया।
स्वप्ने साक्षात् महादेवो राजानं वाक्यमब्रवीत्॥३२॥

श्रीरुद्र उवाच-

श्रूयतां वचनं राजन् कन्यापरिणये मम।
धनुर्मदीयं ते गेहे पूजितं तव पूर्वजैः॥३३॥

तस्य प्रतिज्ञा त्वया कार्या भङ्गाय तोलनाय च।
तोलयित्वा च यो भङ्गं कारयेद् धनुषो मम॥३४॥

तस्मै देया त्वया कन्या ह्येवमुक्त्वा गतो हरः।
जनकस्तु तदा राजा श्रावयामास स्वं प्रणम्॥३५॥

पृथिव्यां सर्वलोकेषु नरदेवेषु भूरिशः।
तच्छ्रुत्वा भूभुजः सर्वे ह्याजग्मुर्मिथिलां पुरीम्॥३६॥

धनुषस्तोलनार्थं हि तथा भङ्गं विवाहयोः।
मिथिलापरिसरेः[५] सर्वे ध्वजिन्या सह ते स्थिताः॥
धनुषो रङ्गभूमिस्तु निर्मिता बहुरत्नकैः॥३७।

तत् पिनाकस्थलं रम्यं मानितं सर्वराजभिः।
ब्राह्मणा क्षत्रियास्तत्र वैश्याः शूद्रास्तथा स्त्रियः॥३८॥

प्राकृताश्च तथा सर्वे नागराः[६] देशवासिनः।
मुनयश्च तथा सर्वे शिष्यैः परिवृताः स्थिताः॥३९॥

जनकस्य तथा पत्न्यो नानावेशधराः स्थिताः।
मागधाश्च तथा सर्वे सूताः वैतालिकास्तथा॥४०॥

अन्ये च नागराः सर्वे पौराः जानपदास्तथा।
समास्थिताः[७] यथान्यायं सर्वे कौतूहलान्विताः॥४१॥

---

१. भाग्यस्याः -क
२. परिपूर्णा -ग
३. विश्राव -क
४. निजमन्दिरम् -ग
५. परिसरैः -क
६. नगराः -क
७. समुत्थिता -क

सचिवो रावणस्यैव प्रहस्तो नाम नामतः।
सोप्यास्थितः समामध्ये रावणेन च प्रेषितः॥४२॥

बलेः पुत्रो महावीर्यो बाणो नाम महामतिः।
सहस्त्रबाहुबाधेन[१] यः शिवं समतोषयत्॥४३॥

सोप्यास्थित[२] सभामध्ये कन्या हेतोः महात्मना।
सुधन्वा नाम भूपालः शांकाश्यायाः पराक्रमी॥४४॥

शिवभक्तिरतः सश्वन्[३] महत्या सेनया युतः।
आस्थितः सः समामध्ये कन्यार्थं सोऽपि दुर्मतिः॥४५॥

एवं जाते समाजे तु वाद्येषु प्रणदत्सु च।
कन्या समागता तत्र सीता नाम्नी सखीगणैः॥४६॥

तत्र शृङ्गारचेष्टा च राज्ञां जाता सहस्त्रशः।
कश्चित् करं किरीटे च कलयामास भूपतिः॥४७॥

पद्मं च भ्रामयामास पाणिना च नराधिपः।
ददार पद्मपत्राणि नखैः किञ्चित् स्मयन्निव॥४८॥

कश्चन् वार्ताप्रलापं च सख्या[४] चक्रे महामनाः।
कश्चन् मुक्तामयीं मालां गणयामास पाणिना॥४९।

केनचित् कारणेनैव जहास कोऽपि भूपतिः।
खड्गं कोशाद् विकृष्यैव दर्शयामास चापरान्॥५०॥

ताम्बूलभक्षणं कश्चिद् चकार च महामना।
हस्तमुत्क्षिप्य वेगेन रत्नमुद्रा विदीपितम्॥५१॥

बभाषे च समामध्ये दर्शयन् पाणिभूषणम्।
जहसे कश्चन भूपालो दन्ताः सन्दर्शयन्निव॥५२॥

ममार्ज्ज श्मश्रूणि भूपालः पाणिना स्वेन निर्भयः।
एवं बभूव शृङ्गारो जनानां रङ्गवासिनाम्॥५३॥

---

१. वाद्येन -ग
२. सोप्य -ग
३. सश्वत् -ग
४. संख्या -ग

आजगाम तदा सीता धनुषो निकटे मुदा।
पूजयित्वा पिनाकं तु जगाम मातृ[1]सन्निधौ॥५४॥

इति श्रीसत्योपाख्याने सूतशौनकसंवादे
एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः।



१. मत्र -क

द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

श्रीसूत उवाच-

मागधास्तु प्रणं सर्व[१] जनकस्य च भूपतीन्।
श्रावयामासुः ते सर्वे बाहूनुक्षिप्य संसदि॥१॥

तच्छ्रुत्वा भूभुजः सर्वे व्यायामं चक्रिरे मुदा।
पश्चात् परिकरं बध्वा धनुषो निकटं ययौ॥२॥

सर्पाकारं च तं दृष्ट्वा वेपमानो बभूव ह।
उपविश्यासने सोप्यजगादान्यान्महीपतीन्॥३॥

धनुर्मिषेण सर्पोऽयमस्मान् दंष्टा[२] न संशयः।
पुनरन्योपि भूपालः जगाम धनुषोऽन्तिके॥४॥

अन्धो बभूव सस्तत्र चापं नैव तु ददृशे।
हस्तौ प्रसार्य[३] पप्रच्छ क्वास्ति चापो हि भो जनाः॥५॥

जहसुश्चेति ते लोकाः ज्ञाता शक्तिस्तवोत्तमाः।
धनुषो दर्शनं नास्ति तोलने भञ्जने किमु॥६॥

इत्येवं हसिते सर्वैः विविशे स्वस्य[४] चासने।
अन्यः कश्चन भूपालश्चचाल निजासनात्॥७॥

सिंहगत्या महागर्वात् श्मश्रो स्वस्य करं दधन्।
तमेव दर्शयामास चापः सैंहीतुनं निजाम्॥८॥

सिंह दृष्ट्वा पपातोर्व्यां विवेश चाशनभयात्।
किं किं किमिति लोकैस्तु पृष्टः प्रोवाच भूपतीन्॥९॥

---

१. सर्वे -ग
२. दृष्ट्वा -क
३. प्रासार्य -ग
४. स्वात्म -क

सिंहोयं चापरूपेण जनकेन निवेशितः।
धूर्तोयं जनको राजा घातयिष्यति[1] भूपतीन्॥१०॥

पुनरन्य समुत्थाय पिनाकनिकटं ययौ।
धनुषस्तोलनार्थं[2] हि तथा भङ्गाय वीर्यवान्।
ददर्श शिवरूपं च ननाम च पुनः पुनः॥१८॥

उवाच न सभामध्ये शिवरूपं धनुस्त्विदम्।
गम्यते च मया गेहं नास्ति मे योग्यता त्विह॥१९॥

तदा प्राह प्रहस्तस्तु सर्वेषां शृण्वतामिदम्।

श्रीप्रहस्त उवाच-

रे मूढ शृणु मे वाक्यं हितार्थं तव वच्म्यहम्॥२०॥

रावणो नाम पौलस्त्यो राक्षसेन्द्रो महाबली।
स लङ्काधिपतिः[3] श्रीमान् साक्षाद् वैश्रवणानुजः॥२१॥

तस्मै देहि निजां कन्यां श्रेयस्तेऽति भविष्यति।
रावणस्तु महावीर्यो देवदानवदर्पहा॥२२॥

तुभ्यं दास्यति जित्वा तु पृथ्वीं सागरमेखलाम्।

श्रीजनक उवाच-

यदि सोऽपि समागत्य धनुषस्तोलनं बलात्॥२३॥

कुर्यात्तस्मै प्रदास्यामि नान्यथा प्रददाम्यहम्।

श्रीप्रहस्त उवाच-

चन्द्रमौलेरयं चापस्तस्मान्नेच्छति रावणः॥२४॥

कदाचिदन्यदेवस्य तत्क्षणाच्चूर्णतां नयेत्।
इत्युक्त्वा सहसोत्थाय गमनाय मनो दधे॥२५॥

हरिष्यति रावणो वै कन्यामेतां सुनिश्चितम्।

श्रीजनक[4] उवाच-

हरणं यदि कन्यायाः रावणस्तु करिष्यति॥२६॥

---

१. घातयन् यस्मान् -क
२. धनुषं तोलनार्थं -क
३. लंकायाधिपतिः -क
४. श्री शौनक -क

नाशाय दशकण्ठस्य सीता चैव भविष्यति।
श्रीसूत उवाच-
एवं ब्रुवाणं जनकं राक्षसस्तमभर्त्सयत्॥२७॥

जगाम दुर्मना सोऽथा लंकामेव च पापधीः।
राक्षसे तु गते लंकां सुधन्वा नाम भूपतिः॥२८॥

उवाच जनकं वाक्यं श्रूयतां भो नरेश्वर।
श्रीसुधन्वा उवाच-
मह्यं च दीयतां सीता धनुषा सा भूमिपः॥२९॥

न दास्यसि चेद्राजन् लुण्ठयिष्यामि ते पुरीम्।
निर्गच्छ रङ्गभूमेस्त्वं पतिष्यसि महीतले।
तडितो मम दासैश्च पादैर्मुष्टिभिरेव च॥३०॥

एवं कोलाहले जाते जनकस्य च पक्षिणः।
खड्गचर्मधराः सर्वे तस्थुर्जनकसन्निधौ॥३१॥

विवेकिनस्तु ये भूपाः द्वौ निवार्य यतस्ततः।
रङ्गभूमेर्विनिर्गत्य सुधन्वा क्रोधमूर्छितः॥३२॥

रुरोध मिथिलां दर्पात्[१] सेनया सह भूमिपैः।
युयुधे जनको राजा परैः सार्द्धं महामनाः॥३३॥

बहवश्च हताः तत्र रणे तस्मिंश्च मानवाः।
बभूव दुर्गमा भूमिर्मृतवैश्च भयावहाः॥३४॥

युद्धतामेव तेषां तु गतः संवत्सरो द्विजः।
निरुद्धा नगरी तैश्च तृणधान्यं न[२] चापतेत्॥३५॥

ततश्च दुःखितो राजा सस्मार च सदाशिवम्।
शिवेन प्रेषिता सेना देवानां च बलीयसाम्॥३६॥

देवसेनां तदा प्राप्य युयुधे जनको नृपः।
सुधन्वा निहतो युद्धे जनवेन महात्मना॥३७॥

अन्ये पलायिता सर्वे लुंठमानास्तदा जनैः।
सांकाश्या नगरी तस्य भ्रातरं च कुशध्वजम्॥३८॥

---

१. रुरुधे मिथुलां क्ष्यात् -क

२. धान्वं न -क

विदधे तत्र राजानमिक्षुमत्यास्तटे नृपः।
पुनर्यज्ञं समारेभे जनकस्तु महामतिः॥३९॥

आकारयामास नृपान् नानादेशपतीन् भृशम्।
समागताः पुनस्तेपि चापतोलनभञ्जने॥४०॥

समाजस्तु महानासीन्नराणां च दिदृक्षताम्।

इति श्रीसत्योपाख्याने सूतशौनक संवादे
द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ५२॥



त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

श्रीसूत उवाच-

महेश्वर[1]समाज्ञप्तो विश्वामित्रो महामुनिः।
सिद्धाश्रमाच्चचालाशु रामार्थं मुनिपुङ्गवः॥१॥

साकेतनगरं दृष्ट्वा मुमुदे कौशिको मुनिः।
राजद्वारं समागत्य ददर्श महतीं श्रियम्॥२॥

द्वारपालाः समागत्य प्रणेमुः शिरसा मुनिम्।
मुनिना प्रेषिताः सर्वे राजानं च विजिग्ययुः॥३॥

राजा दशरथः श्रुत्वा वशिष्ठा[2]दिभिरन्वितः।
पूजा[3]मादाय महतीं निर्जगाम सभासदैः॥४॥

आगत्य चरणौ राजा जगृहे शिरसा मुनेः।
आलिङ्गितस्तु मुनिना वशिष्ठेन महामुनिः॥५॥

राजानं च समालिङ्ग्य विवेशान्तःपुरं वशी।
पाद्यमर्घं ददौ राजा वार्त्तां चक्रुः परस्परम्॥६॥

श्रीदशरथ उवाच-

आज्ञाप्यतां हे[4] भूदेव आज्ञाप्योहं तवानघ।
तन्मया क्रियते सर्वं प्राणैरर्थैः सुतैस्तव॥७॥

श्रीसूत उवाच-

वाक्यं श्रुत्वा नरेशस्य जहर्ष मुनिपुङ्गवः।
प्रत्युवाच महाराज[5] कौशिको मुनिसत्तमः॥८॥

---

१. महेश्वरेण -ग
२. विचिष्टा -क
३. प्रजा -क
४. च -ग
५. महाधीरः -ग

श्रीविश्वामित्र उवाच-

दीयतां राजशार्दूल रामचन्द्रस्त्वया च हि।
त्वयोक्तं च सुतैः प्राणैरर्थैर्कार्यं च साधये॥९॥

श्रीदशरथोवाच-

यथेष्टं गृह्यतां पुत्रं कार्यार्थमात्मनस्त्वया॥१०॥

याचना च रघूनां हि व्यर्था जाता न कस्यचित्।
कृच्छाल्लब्धो महापुत्रस्तुभ्यं दास्यामि भो मुने॥११॥

वसिष्ठं च समामन्त्र्य कौशल्यां च महामना।
राममाहूय विधिवल्लक्ष्मणेन समन्वितम्॥१२॥

मुनये चार्पयामास ह्याशिषा सह[1] भूमिपः।
पुष्पवृष्टिर्महत्यासीदयोध्यायाश्च वीथिषु॥१३॥

पितुराज्ञाकरौ तौ च पादयोः पेततुस्तदा।
प्रवत्स्यतोश्च[2] मूर्द्धानौ न्यपतनश्रुबिन्दवः॥१४॥

नेत्राभ्यां राजराजस्य चचाल मुनिसत्तमः।
लक्ष्मणानुचरं रामं परिगृह्य[3] मुदा युतः॥१५॥

आशिषा[4] युयुजे[5] राजा वाहिनीं न च रक्षिणः।
आशीरेव क्षमा तत्र वाहिन्याः न प्रयोजनम्॥१६॥

पितुर्नेत्रभवै[6]स्तोयैरीषदार्द्रशिखण्डकौ[7]।
गच्छन्तौ धन्विनौ तौ च मुनेः पश्चात् पदातिनौ॥१७॥

पौराणां नेत्रजालैश्च मार्गे च कृततोरणौ।
रेजतु सुतरां[8] तौ च गाधेः मार्गानुसरिणौ॥१८॥

---

१. ह्याशिरवाह हि -क
२. प्रकृस्यतोश्च -क
३. प्रगृह्य -क
४. आशिषं -ग
५. युयुधे -क
६. पितुनेत्रतवै -क
७. शिखण्डिनौ -क
८. सुतरौ -क

मातृपादान् प्रणम्याथ जग्मतुः पुरुषर्षभौ।
भास्करेण यथा भासौ शोभाते चैत्रमाधवौ॥१९॥

तयोस्तु गमनं तत्र हस्ती[१]भ्यामप्य शोभनम्।
अयोध्यायाः विनिर्गत्य विद्यां प्रादात् महामुनिः॥२०॥

बलां चातिबलां चैव न म्लायते[२] यथा पथि।
विद्ययोश्च प्रभावेण मातुः क्रोडगताविव॥२१॥

इतिहासैस्तु पूर्वेषां मुनिप्रोक्तैश्च सानुजः।
शृण्वन् मार्गे व्यथां[३] नैव लेभेते[४] वाहने[५] यथा॥२२॥

वायुः शिषेवे तौ[६] बालौ[७] पङ्कजानां सुगन्धिभिः।
पतत्रिणश्च स्वैर्नादैर्जलदाः स्वस्य छायया॥२३॥

पश्यन् ग्रामान्ययौ रामो मुनिना लक्ष्मणेन च।
ग्रामीणवध्वस्तं रामं पश्यन्ति स्म सुलोचनैः॥२४॥

द्वारे निर्गत्य सहसा ह्यानन्दं लेभिरे बहुः।
पिबतो वारुणीं गोष्ठे गोपान् पश्यति राघवः॥२५॥

बलतो[८] मुहुरुत्थाय ग्राम्यान्यानेन मोहितान्।
तेषां पत्न्यो रमानाथं लोचनैः कर्णविस्तृतैः॥२६॥

हावभावं न जानन्त्यो ग्रामिण्यो राघवं ययुः।
जानुना चोभयेनैव पात्रं गृह्य[९] च गोपकान्॥२७॥

गावश्च[१०] दुहतो[११] वत्सान् लिहन्ती च ददर्श च।
ताश्च दृष्ट्वा तदा रामो मनसा च विचारयत्॥२८॥

---

१. हस्ता -ग
२. मम्लाते -ग
३. मार्गव्यथां -ग
४. लेभाते -ग
५. वाहनौ -ग
६. शिखेव तौ -क
७. चालौ -क
८. वल्गतो -ग
९. यरो ग्रह्यं -क
१०. गावाश्च -क
११. दुहितो -क

अहमप्येवं करिष्यामि द्वापरे कृष्णजन्मनि।
कैदारिकानां पत्नीस्तु शुकान् विद्रावयितुं गता॥२९॥

तावत्[1] मृगाश्च खादन्ति व्रीहिं तत्र पुनर्द्रुताः।
सहसा[2] मुनिना भ्रात्रा गोपिकाश्च विलोकयत्॥३०॥

ललाटे बिभ्रती पुष्पं बन्धूकस्य च गोपिका।
मृगान् विद्रावयितुं याता भुजमुद्यम्य वेगतः॥३१॥

कुचं विदधती पीनमञ्चलेन च सस्मिता।
गीतमाकर्ण्य वन्यानां[3] न खादन्ति मृगाः कृषीम्॥३२॥

इत्थं विलोकयन् रामो मुने पश्चाद् ययौ मुदा।
स्त्रियस्तु राघवं दृष्ट्वा कन्दर्पसदृशाकृतिम्॥३३॥

अतसीपुष्पसंकाशं व्यूढोरस्कं महाभुजम्।
धनुर्बाणधरं वीरं नानाभूषणभूषितम्॥३५॥

विधाय तर्ज्जनी चोष्ठे पृच्छति स्म स्त्रियो मुदा।
सत्यं ब्रूहि मुने मह्यं कस्य चेमौ कुमारकौ॥३६॥

शिष्यौ वा तव पुत्रौ वा मातानयोस्तु कुत्रचित्।
यया पुत्रौ त्वयि न्यस्तौ कठिना सा[4] तु निश्चयः॥३७॥

विश्वामित्र उवाच-

राज्ञो दशरथस्य तौ तनयौ रामलक्ष्मणौ।
रक्षणार्थं मया ह्येमौ[5] क्रतोश्च[6] खलु याचितौ॥३८॥

सिद्धाश्रमं च नीयेते पित्रा दत्तौ च प्रेमतः।

श्रीसूत उवाच-

एतस्मिन्नन्तरे गोपाः वनान्[7] प्राप्ताः अनेकशः॥३९॥

---

१. तावान् -क
२. सहास -ग
३. चान्यासां -ग
४. ककिनाशा -क
५. 'ह्येतौ -ग
६. कृतोश्च -क
७. वनात् -क

ते तान् वीक्ष्य मुदा नेमुर्दण्डवत् पृथिवीं गता।
ऊचुः परस्परं ते तु विश्वामित्रं पुनर्पुनः॥४०॥

अद्य न सफलं जन्म अद्य नः सफलं तपः।
यन्नो गृहं[१] भवान् प्राप्तः पुत्राभ्यां च[२] नृपस्य च॥४१॥

स्तुत्वैवं पूजयामासुर्मुनिं राजकुमारकौ।
सिद्धाश्रमं प्रजग्मुस्ते उषित्वा तत्र शर्वरीम्॥४२॥

मार्गे वनमहाभीमं दृष्ट्वा राजकुमारकौ।
अधिज्यौ[३] चक्रतुश्[४]चापौ ह्याज्ञया कौशिकस्य च॥४३॥

तयोर्निनादं तच्छ्रुत्वा चाजगामाथ ताडका।
वृद्धा भयानका सा च भाद्रमासक्षपाछविः[५]॥४४॥

कपालकुण्डला सा च वकपङ्क्ति यथा घने।
वेपयन्ती महावृक्षान् प्रेतचीराणि बिभ्रती॥४५॥

महानादं प्रकुर्वाणा महाधूलिं च वर्षती।
अभ्यभावित्तथा[६] रामः धूल्या[७] च पवनोत्थया॥४६॥

उद्यम्य भुजयष्टिं च आपतन्तीं च ताडकाम्।
पुरुषान्त्रमालया युक्तां न जघानेति किंवधू[८]॥४७॥

कौशिकेन समाज्ञप्तो सशरं धनुरुपाददे[९]।
घृणया सह तदा बाणं मुमोच ताडकोरसि॥४८॥

---

१. यत्नो ग्राहं -क
२. हि -ग
३. वाक्यमिदं क-मातृकायां 'स्तुत्वैवं ...राजकुमारकौ (श्लोक ४२) इति वाक्यस्य पश्चात् आयाति, किन्तु ग-मातृकायां इदं श्लोकस्य (४३) अधोभागे प्राप्यते। इदं स्थानं प्रसङ्गदृष्ट्या समीचीनं वर्तते।
४. चक्रतौ -क
५. भाद्रमासछाया -क
६. आम्यभावितया -क
७. धूल्ये -क
८. कंवधू -क
९. धनुपा ददे -क

विदीर्णहृदया सा तु पपात धरणीतले।
महानादं प्रकुर्वाणा देहं त्यक्त्वा च स्वर्गता॥४९॥

कौशिकस्तु समाहूय रामं राजीवलोचनम्।
मन्त्रान् समर्पयामास तस्याघातेन तोषितः॥५०॥

सूर्यकान्तो यथा सूर्यात्तथा मन्त्रेण द्योतितः।
कामाश्रमं पुनः प्राप्य कामरूपो बभूव ह॥५१॥

सिद्धाश्रमं समागत्य सिद्ध्यर्थं कौशिकस्य च।
उत्कण्ठितो बभूवात्र वामनो ह्यभवं पुरा॥५२॥

दीक्षितं[1] कौशिकं तत्र धनुर्बाणधरौ च तौ[2]।
ररक्षतुः सावधानौ मुनेर्यत्तं महौजसौ॥५३॥

सूर्यचन्द्रौ यथा लोकमन्धेन तमसावृतम्।
ततस्तु षष्ठे दिवसे आजग्मू राक्षसाम्बरे॥५४॥

रुधिरं ववृषुः सर्वे राम ऊर्ध्वं विलोकयत्।
निषङ्गाद् बाणमुद्धृत्य मरीचं दुधुवे[3] प्रभुः॥५५॥

पक्षिणो भोजयामास स[4] सुबाहोः पतनेन वै।
अन्येषु न प्रवृत्तस्तु किमेभिर्लघुराक्षसैः॥५६॥

राजिलेषु[5] यथा ताक्ष्यों न प्रवर्तेत गर्वतः।
विक्रमं तु तयोर्दृष्ट्वा सांयुगीनं[6] महामुनिः॥५७॥

ऋषयः पूजयांचक्रुः यज्ञपूर्तिं[7] प्रचक्रमुः।
मुनिं प्रणम्य तौ वीरौ मुमुदाते कुमारकौ॥
आशिषा योजयामास मुनिः पाणितलेन वै॥५८॥

इति श्रीसत्योपाख्याने सूतशौनकसंवादे
त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥५३॥



---

१. दीक्षान्तं -क
२. चितौ -क
३. हुषवे -क
४. क- मातृकायां नास्ति
५. राजलेषु -क
६. मां युगीनं -क
७. यज्ञमूर्तिं -ग

चतु:पंचाशत्तमोऽध्याय:

श्रीसूत उवाच-

तस्मिन् काले नरेशस्य जनकस्य महात्मनः।
प्रतीहारो महाबुद्धिराजगाम महामतिः॥१॥

प्रणस्य च मुनीन् सर्वान् यज्ञार्थं च विजिज्ञरे[१]।
श्रीदूत उवाच-
जनकस्य गृहे राज्ञो धनुर्यज्ञो हि वर्तते॥२॥

भवद्भिर्गम्यतां शीघ्रं दया च यदि क्रियते।
श्रीसूत उवाच-
तच्छ्रुत्वा मुनयः सर्वे कुमाराभ्यां समन्विताः॥३॥

जग्मुश्च मिथिलां सर्वे विश्वामित्रपुरःसराः।
कथाप्रसङ्गं शृण्वन्तौ देशनद्युपवर्णनम्॥४॥

आपतुः परमं हर्षं मुनिभ्यो रामलक्ष्मणौ।
तैर्विवेश[२] वसतिर्गौतमस्याश्रममण्डले[३]॥५॥

अगाह्यद्[४] दीर्घतपसः मिथिलायाः समीपमतः।
यत्राहल्या महेन्द्रस्य क्षणं पत्नी बभूव ह॥६॥

तेनाहल्या शिलां याता शापाद् वै गौतमस्य च।
इति[५] सर्वं कथयामास रामाय परमात्मने॥७॥

तच्छ्रुत्वा[६] रामचन्द्रस्तु शिलां द्रष्टुं प्रचक्रमे।
रामपादतलोद्भूता धूलिः प्राप्ता शिलोपरि॥८॥

---

१. विजिज्ञये -ग
२. तैर्निवेश -क
३. सवसति -ग
४. अधृगृह्यत -क
५. तत् -ग
६. तां श्रुत्वा -क

तस्याः स्पर्शनमात्रेण मुक्तशापा बभूव ह।
सुन्दरी सा भवेत् क्षिप्रं रामचन्द्रप्रसादतः॥९॥

संस्तूय रघुनाथं सा पत्या सह गता पुनः।
विश्वामित्रोऽपि रामेण लक्ष्मणेन तपस्विभिः॥१०॥

जगाम मिथिलां वेगात् धनुर्यज्ञदिदृच्छया।
मिथिलोपवने तत्र राजानो बहवः स्थिताः॥११॥

एकान्ते सर्वसुखदे उवास मुनिभिः सह।
राजदूतो मुनि दृष्ट्वा[1] गमनाय मनो दधे॥१२॥

गत्वा प्रणम्य राजानं मुनिं प्राप्तं निवेदयेत्।

श्रीसूत उवाच-

तच्छुत्वा जनको राजा मन्त्रिभिर्ब्राह्मणैः सह॥१३॥

अन्यैश्च नागरैश्चैव नानामङ्गलपाणिभिः।
दर्शनार्थं समायातः कौशिकस्य मुनेर्मुदा॥१४॥
आगत्य प्रणतिं चक्रे नागरैः मन्त्रिभिः सह।१५।

कौशिकोऽपि महायोगी उत्थाय परमासनात्।
बाहू प्रसार्य राजानं परिष्वङ्गं चकार ह॥१६॥

शतानन्दोऽपि चागत्य प्रणाममकरोत्तदा।
आलिलिङ्ग यथान्यायं शतानन्दं तु कौशिकः॥१७॥

निवेशयामास मुदा सन्मुखे स्वे महामनाः।
शतानन्दं च राजानं तथा चान्यान् समंन्त्रिणः[2]॥१८॥

श्रीविश्वामित्र उवाच-

कुशलं वर्तते राजन् सप्तस्वङ्गेषु तेऽधुना।
येषां कुशलतो राजा वर्तते च सदा सुखी॥१९॥

श्रीराजोवाच-

सर्वत्र कुशलं नाथ त्वयि तिष्ठति रक्षके।
येषां कुशलकामोऽसि कुशलं तेषु नित्यदा॥२०॥

---

१. पृष्ट्वा -क

२. तथान्यान्नसमन्त्रिणः -क

त्वं वै कुशलमूर्तिश्च तपसा दुष्करेण[1] वै।

श्रीसूत उवाच-

एतस्मिन्नन्तरे राजा ददर्श रामलक्ष्मणौ॥२१॥

तथा सर्वे जनाश्चैव ददृशुस्तौ कुमारकौ।
अतसीपुष्पसंकाशं रामं राजीवलोचनम्॥२२॥

काञ्चनाभं द्वितीयं च प्रफुल्लपङ्कजेक्षणम्।
कोटिमन्मथलावण्यं दधन्तौ निजविग्रहे॥२३॥

धनुर्बाणधरौ तौ च खड्गौ कनकत्सरौ।
दधन्तौ मस्तके दिव्यां काञ्चनीं पट्टिकां शुभाम्॥२४।

स्तवकं मणिमुक्तानां पुष्पाणां च तथाविधम्।
वेष्टनयोर्महादिव्यं दधन्तौ कर्णकुण्डले॥२५॥

नानारत्नमये दिव्ये ह्यलकैश्च विभूषितौ[2]।
तिलकं धारयन्तौ च रोचनाकुङ्कुमोद्भवम्॥२६॥

तथ्य चूर्णं हरिद्रायाः दधानौ परमाद्भुतौ।
मुखं मनोहरं रम्यं दन्तपङ्क्तिविराजितम्॥
नासां शुकस्य चञ्चुं च लज्जयन्तीं मुहुर्मुहुः॥२७॥

कण्ठे च कण्ठिकां[3] रम्यां नानारत्नसमुद्भवाम्।
केयूरश्च महादिव्यैर्बाहवः शोभितास्तयोः॥२८॥

वलयैश्च तथा दिव्यैर्नानारत्नविनिर्मितैः।
मुद्राभिः रत्नयुक्ताभिरङ्गुलीषु विराजितौ॥२९॥

दधन्तौ कञ्चुकं पीतं कट्या वै पीतमंशुकम्।
प्रावरं च तथा पीतं दधन्तौ मौक्तिकं स्त्रजः॥३०॥

इषुधी न महादिव्ये नानाबाणैः प्रपूरिते।
उपानहगूढपादौ[4] पादभूषणभूषितौ॥३१॥

---

१. लयसाद्वः करेण -क
२. विभूषिते -ग
३. कटिकां -क
४. उपानहौ गूढपदौ -ग

द्योतयन्तौ दिशः सर्वास्तेजसा भास्करोपमौ।
हलादकौ चन्द्रमसां कान्त्या कामेन सदृशावुभौ॥३२॥

बुद्ध्या बृहस्पतेस्तुल्यौ क्षमया पृथिवीसमौ।
मोहयन्तौ जनान् सर्वान् स्मितेन च निजान् परान्॥३३।

तथातिरूपौ[१] तौ दृष्ट्वा पप्रच्छ जनको मुनीम्।

श्रीजनक उवाच-

भगवन् योगिनां श्रेष्ठ कस्य चेमौ कुमारकौ॥३४॥

मोहयन्तौ जनान् सर्वान् कान्त्या रूपेण मां जनान्।

श्रीविश्वामित्र उवाच-

शृणु राजन् यथातथ्यं तव स्नेहात् ब्रवीम्यहम्[२]॥३५॥

इमौ कुमारौ राज्ञस्तु अयोध्याधिपतेः किल।
यज्ञसंरक्षणार्थाय मया नीतौ निजाश्रमे॥३६॥

दर्शने सुकुमारौ च बलेन बलवत्तरौ।
मारीचं भ्रामयामास बाणेनैकेन राघवः॥३७॥

सुबाहोर्निधनं चक्रे द्वितीयेन तु पत्रिना[३]।
अन्यान् जघान सौमित्रिरेवं यज्ञस्य रक्षकौ॥३८॥

अतसीपुष्पसंकाशो नाम्ना रामस्तु कथ्यते।
द्वितीयः काञ्चनाकारो लक्ष्मणेति च भण्यते॥३९॥

रामस्य पादरजसा पूता गौतमगेहिंनी।
इदानीं ते च धनुर्यज्ञं समायातो रघूत्तमः॥४०॥

वाण्या चाल[४] महाराज बलं वक्तुं न शक्यते।
समूहे भूभृता रंगे[५] चापे व्यक्तं भविष्यति॥४१॥

इति श्रीसत्योपाख्याने सूतशौनकसंवादे

चतुःपंचाशत्तमोऽध्यायः

□□

---

१. तथा रूपौ -ग २. तवस्ते हाद्रवीम्यहम् -क
३. यत्ततः -क ४. वाण्यालं च -ग
५. भूभृतामग्रे -क

पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

श्रीसूत उवाच-

उक्तैवं च समामध्ये विरराम महामुनिः।
जनकस्तु महाराज शृण्वन् लेभे परां मुदम्॥१॥

मुनिना प्रेरितौ तौ च राघवौ रामलक्ष्मणौ।
प्रणामं चक्रतुः किञ्चिन्नतेन शिरसा स्थितौ॥२॥

जनकाय महाराज्ञे ज्ञात्वात्मकुलसम्भवम्।
जनकस्तु समुत्थाय ज्ञात्वा दशरथात्मजौ॥३॥

राजाधिराजतनयौ परिरेभे मुदान्वितः।
घ्राणं चकार मूर्ध्नस्तु रामलक्षणयोस्तदा॥४॥

स्नापयामास[1] स तदा जलैर्नेत्राब्जसम्भवैः।
रामं दक्षिणजङ्घायां वामजङ्घायां[2] लक्ष्मणम्॥५॥

निवेश्य वक्त्रं पाणिभ्यां ममार्ज्ज जनकोनृपः।

श्रीजनक उवाच-

अद्य मे सफलं जन्म अद्य मे सफलं तपः॥६॥

अद्य मे सफलं राज्यं पुरीयं मिथिला[3] पुनः।
अद्य मे सफलो यज्ञः सुप्रभाता निशा मम॥७॥

यस्मादिमौ समायातौ राजराजकुमारकौ।
निमिस्तु पूर्वजोऽस्माकमिक्ष्वाकुतनयो भवेत्॥८॥

इक्ष्वाकुकुलजन्म[4]त्वादिक्ष्वाकुसदृशाविमौ।
कुले तस्मिन्निमौ जातौ पूजनीयौ न संशयः॥९॥

१. संस्नापयामास्म -ग
२. वामायां चैव -ग
३. यां पुरी मिथुलां -क
४. जन्य -ग

साधु साध्विति ते सर्वे सशंसुश्च[1] जनाः नृपम्।
रामरूपं समालोक्य मुमोह जनको नृपः॥१०॥

बुद्ध्या विचारयामास हृदये राजसत्तमः।
किमयं नारायणो देवो लक्ष्मीकान्तो न संशयः॥११॥

लक्ष्मी सीता समुत्पन्ना यज्ञभूमौ हलाग्रतः।
अयं नारायणो देवः स्वयं सीतां वरिष्यति॥१२॥

तावन्नेत्रसुखं[2] सर्वे लभन्तु किल नागराः।
गृहे मम नरा नार्य्यो पश्यन्तु रामलक्ष्मणौ॥१३॥

एवं विचार्य राजा तु हृदये पुनरब्रवीत्[3]।
गम्यतां मद्गृहे स्वामिन् कुमाराभ्यां तपोधनैः॥१४॥

इक्ष्वाकूणां गृहं चैतत् वयं तेषां च किङ्कराः।
भुज्यतां रमतां तत्र कृपां कृत्वा ममोपरि॥१५॥

श्रीसूत उवाच–

इति श्रुत्वा नरेशस्य वाक्यं मैथिलभूपतेः।
उवाच कौशिको धीमान् जनकं तु[4] महामना॥१६॥

कौशिक उवाच–

सम्यक् व्यवसिता बुद्धिस्तव राजर्षिसत्तम।
एवमेव महाराज यथा त्वं प्रब्रवीषि माम्॥१७॥
परन्तु सावकाशो च मुनीनां[5] रमते पुनः॥१८॥

अत्रैव स्थितिः कार्यास्तु[6] महानन्देन संयुताः।
आगमिष्यामि ते गेहं भोजनार्थं नराधिप॥१९॥

---

१. संससुः –ग
२. अस्मात् श्लोकात् पूर्वं इदं ग–मातृकायां प्राप्यते–
धनुषश्च प्रतिज्ञेयं निरर्था च कृता मया।
कन्या चास्मै प्रदेया मे प्रतिज्ञा स्यातु पातु वा॥१३॥
अयं नारायणो देवः धनुर्भङ्गं करिष्यति। –ग
३. मुनिमब्रवीत् –ग
४. प्रति –ग
५. महर्षीनां –ग
६. अत्रैवेषां स्थितिश्चास्तु –ग

मुनिभिश्चकुमाराभ्यां प्रातःकाले तवाज्ञया।
गम्यतां च महीपाल सन्ध्याकालो हि वर्तते॥२०॥

वयं चापि करिष्यामः सूर्योपस्थानं न संशयः[१]।

श्रीसूत उवाच-

विश्वामित्रेण चाज्ञप्तो जगाम जनको गृहम्॥२१॥

हृदि ध्यायन् रामरूपं लक्ष्मणस्य तथा मुहुः।
जानकी च[२] प्रदास्यामि रामाय रूपशालिने॥२२॥

ऊर्मिलां लक्ष्मणायैव कन्यकां रुचिराननाम्।
धनुषो भञ्जनं चैव राम एव करिष्यति॥२३॥

मनोरथो मदीयस्तु पूर्णोभून्नात्र संशयः।
मिथिलायां जनाः सर्वे आनन्दं लेभिरे मुहुः॥२४॥

राजा रामाय कन्यां तु लक्ष्मणाय प्रदास्यति।
हर्षेन ज्ञायतेऽस्माभिर्जनकस्य महात्मनः॥२५॥

एवं वदन्ति रात्रौ च नरनार्य्यः परस्परम्।
आनन्देनैव सर्वेषां सा रात्री व्यत्यवर्तत[३]॥२६॥

श्रीसूत उवाच-

राजा जनक उत्थाय प्रातःकालेऽन्नपाचकान्।
आज्ञापयामास मुदा क्रियतां व्यञ्जनानि च॥२७॥

भोजनार्थं मुनीनां तु तयोश्च राजपुत्रयोः।
सुनेत्रां नाम राज्ञीं च प्रोवाच नृपतिर्मुदा॥२८॥

सखी[४]सार्द्धं च भवती[५] राजपुत्रौ विलोकय।
सन्मानश्चापि कर्तव्यः माननीयौ च तौ मतौ॥२९॥

तथास्त्विति च सा राज्ञी प्रत्युवाच नृपं तदा।
मिथिलायास्तदा राजा स्नात्वा हुतहुताशनः॥३०॥

---

१. उपस्थानं रवेरपि -ग
२. जानकीयं -क
३. व्यत्यंवर्तते -क
४. सख्या -ग
५. भवति -क

दूतं तु प्रेषयामास विश्वामित्रस्य सन्निधौ।
स दूतो मुनिसानिध्यं गत्वा वचनमब्रवीत्॥३१॥

शिरस्यञ्जलिमाधाय[1] ययाचे[2] तं मुनीश्वरम्।
गम्यतां भगवान् शीघ्रं जनकस्य गृहे त्वया॥३२॥

भोजनार्थं कुमाराभ्यां मुनिभिश्च महामते।

इति श्रीसत्योपाख्याने सूतशौनकसंवादे
पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः।५५।



१. मादाय -क
२. याचे -क

षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

श्रीसूत उवाच-

दूतवाक्यं निशम्याथ सर्वैः सह मुनिपुङ्गवः।
जगाम राजभवनं नरनारीभिरावृतम्॥१॥

श्रीरामागमनं श्रुत्वा नरनार्यो मुदं ययुः।
रामं निरीक्ष्य ते सर्वे नेत्रैरनिमिषैर्जनाः॥२॥

मिथिलाधिपतिर्धन्यरित्यूचुश्च परस्परम्।
जनकस्तु द्वारमागत्य ववन्दे मुनिपुङ्गवम्॥३॥

मुनींश्चापि प्रणम्याथ विनयावनतस्तथा।
रामोऽपि लक्ष्मणश्चापि विदेहं मिथिलाधिपम्॥४॥

दक्षिणं करमुत्थाय मूर्द्धिन कृत्वा प्रणेमतुः।
जग्राह राजा तौ बालौ कराभ्यां करयोर्मुदा॥५॥

अन्तःपुरं निवेशाथ ब्राह्मणान् वेदपारगान्।
पूजायां नाविदत् कृत्यं प्रेमवेगपरिप्लुतः॥६॥

सिंहासने महादिव्ये नानारत्नविचित्रिते।
निवेश्य बालकौ तत्र तयोर्मध्ये च गाधिजम्॥७॥

पीठानि मुनिमुख्येभ्यो दत्वा भुवि स्वयं स्थितः।
पाद्यमर्घ्यं स्वयं चक्रे नीराजनविधिं तथा॥८॥

मालापुष्पमयीं दत्त्वा चन्दनेन विलिप्य च।
सुनेत्रा नाम सा राज्ञी सीतया सखिभिः सह॥९॥

प्रणनाम मुनेः पादौ विनयेन च ह्रीमती।
अयोध्याधिपतेः पुत्रौ कोमलाङ्गौ महाबलौ॥१०॥

कोटिसूर्यप्रकाशौ च पश्यन्ती रामलक्ष्मणौ।
पुनः पुनश्च पश्यन्ती हर्षं प्राप मुदा सती॥११॥

सुनेत्रा शुभनेत्राभ्यां मुहुः रामं निरीक्षते[1]।
इन्द्रनीलमणिश्यामं कोमलाकृतिमव्ययम्॥१२॥

अचिन्त्यवैभवं राम कृपावार्द्धिं रमापतिम्[2]।
कट्या पीतं च कौशेयं दधन्तं घनविग्रहे[3]॥१३॥

विद्युल्लतोपमं दिव्यं कांच्या बद्धं सुरत्नया।
आजानुबाहुं श्रीरामं सुमुखं पङ्कजेक्षणम्॥१४॥

पूर्णचन्द्राननं रामं कर्णान्तं दीर्घलोचनम्।
घटितेन[4] मणीनां तु किरीटेन विराजितम्॥१५॥

तस्य कान्त्या चतुर्दिक्षु व्याप्तया सुमनोहरम्।
बिभ्रतं तु मनोजस्य[5] दिव्यचापाकृती भ्रुवौ॥१६॥

इन्दोरर्धसमं रुच्यं ललाटं [6]सुमनोहरम्।
ऊर्ध्वपुण्ड्रेण शुभ्रेण भालदेशे विराजितम्॥१७॥

नासया शुकनासायाः कर्षतं च महच्छविम्[7]।
अलकैश्च महानीलैः शोभयन्तं मुखाम्बुजम्॥१८॥

कुण्डलेन सुदीप्तेन मकराकारशोभिना।
राजन्तं तु कपोलेन हरिन्मणिनिभेन च॥१९॥

मुखामोदेन कर्षन्तं षडंघ्रीश्च यतस्ततः।
बिम्बाधरेण रक्तेन दन्तपङ्क्त्या विराजितम्॥२०॥

त्रिरेखया शोभमानं कम्बुकण्ठं[8] मनोरमम्।
निगूढजत्रुपीनांसं कण्ठे कौस्तुभधारिणम्॥२१॥

श्रीवत्समुरसा लक्ष्म[9] बिभ्राणं वामपार्श्वके।
भुजद्वयेन शोभन्तमङ्गदैर्वलयैरपि॥२२॥

---

१. निरीक्ष्यते -ग
२. महामतिम् -क
३. धनविग्रहम् -क
४. घटते न -क
५. मनोयस्य -ग
६. सम -क
७. महाछविम् -ग
८. कम्बुकण्ठे -क
९. लक्ष्मी -क

महत्या वैजयन्त्या च हारेणापि सुशोभितम्।
उन्नते सुयुग्मेन कुक्षिणा चापि मञ्जुलम्[1]॥२३॥

नाभ्यां गम्भीरया रम्यं विधेः यत्र निकेतनम्।
उत्तरीयेन शोभन्त[2] सन्ध्यामेघनिभेन च॥२४॥

कट्या सुसूक्ष्मया रम्यं नितम्बद्वय शोभया।
कदलीस्तम्भरुच्येन श्यामेनोरुद्वयेन[3] च॥२५॥

जानुयुग्मेन जङ्घेन रमया लालितेन च।
मुक्तिप्रदेन दासेभ्यः पादपद्मेन शोभितम्॥२६॥

मणि[4]निर्मितकोदण्डं दधन्तं वामपाणिना।
दक्षिणे च तथा बाणं स्वर्णपुङ्खं मनोहरम्॥२७॥

तूणद्वयेन शोभन्तं पृष्ठिभागं मनोहरम्।
कस्तूरीगन्धयुक्तेन चन्दनेन विलेपितम्॥२८॥

कोटिमन्मथलावण्यं सुन्दरं रघुनन्दनम्।
लक्ष्मणेनापि गौरेण भूषितेन तथैव च॥२९॥

सेव्यमानं सदा तेन शेषभूतेन बन्धुना।
परात्परं परं[5] ब्रह्म शरण्यं सर्वदेहिनाम्॥३०॥

शरणागतभूतानां पालनाय सदोद्यतम्।
सौशील्यादिगुणैर्युक्तं वात्सल्यगुणसागरम्॥३१॥

कोटिकन्दर्पलावण्यं स्मितपूर्वाभिभाषणम्।
एवं पश्यति[6] ताः सर्वा जनकस्य[7] पुरस्त्रियः॥३२॥

रामं लक्ष्मणं चैव जामातृसुखवाञ्छया।
मुहुः रामं निरीक्षन्ते सस्मिताश्च वराननाः॥३३॥

हावभावं कुर्वन्त्यो राममोहाय सत्वरम्।
काचिद्रामं निरीक्ष्यैव ध्यायमाना मुखाम्बुजम्॥३४॥

---

१. मङ्गलम् -क २. राजन्तम् -ग
३. स्यामोरुद्वयेन -क ४. मुनि -क
५. क- मातृकायां नास्ति। ६. पश्यन्ती -क
७. जनक -क

मुहुर्मुहुश्च निःश्वासं मुञ्चमानाः यतस्ततः।
काचिदेवं ध्यायमाना रामं दृष्ट्वा मनोरमम्॥३५॥

कामाकृतिकुमारोऽयं सुन्दरीयं[1] शुभानना।
एकान्ते सुखशय्यायां कृत्वा वक्षस्थले ह्यमुम्।
ओष्ठपानं करिष्यामि पाणिभ्यां गृह्य मध्यमम्॥३७॥

काचिद्रामं च पश्यन्ती[2] कर्णे चक्रे स्वकाङ्गुलीम्।
पयोधरं पीनतमं दर्शयन्ती मुहुर्मुहुः॥३८॥

मोहिता रामरूपेण काचिदेवं चकार सा।
अलकांश्च निरीक्ष्यन्ती नसिमुक्ता[3] पुनः पुनः॥३९॥

कञ्चुकं दर्शयामास स्वणसूत्रेण शीलितम्।
मुक्तामालां पुनः कण्ठे बाहू चोत्थाय सन्मुखे॥४०॥

लक्ष्मणस्य मुखं काचिदपि वक्र चक्षुषा।
उन्मुच्य नीवीं वध्नन्ती पाणिना लक्ष्मणाग्रतः॥४१॥

नूपुरं च बबन्धाप्य पादयोः रत्नशीलितम्।
करादर्शे निरीक्षन्ती दन्तपङ्क्तिसुरञ्जिता॥४२॥

काचित् कमलपुष्पं च पाटयामास पाणिना।
काचिदालिङ्गती बाल[4] कुचे सम्मेल्य पाणिना॥४३॥

एवं पश्यन्ति ताः सर्वाः किशोरौ रामलक्ष्मणौ।
सुनैना जानकीं चैव निरीक्ष्य मुदिताभवत्॥४४॥

विश्वामित्रादाशिषश्च लब्ध्वा जग्मुश्च मन्दिरम्।
भोजयामास राजापि बालकौ तौ मुनीनपि॥४५॥

रथ्यासु[5] राजमार्गेषु वीक्ष्य रामं मुदं ययुः।
नराः नार्य्यश्च शतशस्तथा वृद्धाः कुमारकाः॥४६॥

इति श्रीसत्योपाख्याने सूतशौनकसंवादे षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ५६॥

---

१. सुन्दरीहं-ग, सुन्दर्येहं -क
२. पश्यन्ति -क
३. नाशामुक्तां -ग
४. बाल्यां -क
५. अस्मात् श्लोकात् पूर्वमयं श्लोकः प्राप्यते-
ताम्बूलं च ददावाथ सर्वभ्यो राजसत्तमः।
स्वं निवेशं जगामाथ कुमाराभ्यां महामुनिः॥

सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

श्रीशौनक उवाच-

विवाहं रामचन्द्रस्य सूत ब्रूहि महामते।
धनुर्भङ्गं तथा शीघ्रं श्रवणान् मुक्तिदं नृणाम्॥१॥

श्रीसूत उवाच-

ततो राजा विदेहानां दिवसेऽन्ये समाह्वयत्[१]।
वन्दिनः कर्मकान्[२] सर्वान् वचनं चेदमब्रवीत्॥२॥

राज्ञां च शिविरान् गत्वा ब्रुवध्वं वचनान्मम्[३]।
रङ्गभूमिं त्व गच्छध्वं यत्रास्ति धनुरुत्तमम्[४]॥३॥

श्रीसूत उवाच-

ते गत्वा राजशिविरान् अब्रुवन् वचनं शुभम्।
गम्यतां राजशार्दूलाय यत्र चापो व्यतिष्ठति[५]॥४॥

तच्छ्रुत्वा भूभुजः सर्वे नागराश्च जनाश्च ये।
स्त्रियो बालास्तथा वृद्धाः प्राप्तास्ते चापसन्निधौ॥५॥

विश्वामित्रोऽपि मुनिभिः कुमाराभ्यां तथैव च।
मिथिलाधिपती राजा यथायोग्यं न्यवेशयत्[६]॥६॥

आगतेषु जनेष्वेवमुवाच वचनं नृपः।
श्रूयतां मे प्रणं[७] लोकाः धनुर्भङ्गं करोति यः॥७॥

---

१. समाहूयत्-ग
२. कर्मान्तिकान्-ग
३. ब्रदवं वचनामः-क
४. य नरोत्तमम् -क
५. च तिष्ठति -क
६. निवेशयत् -क
७. पणं -ग

तस्मै सीतां प्रदास्यामि अद्यैव विधिना ध्रुवम्[1]।

श्रीसूत उवाच-

इति श्रुत्वा जनाः सर्वे प्रत्यूचुर्नृपतिं तदा॥८॥

दृष्ट्वा पराक्रमो राजन् सर्वेषां भूभुजां नृपः।
अधुना दर्शनीयं[2] हि रामस्य च बलं दृढम्[3]॥९॥

तेषां तु वचनं श्रुत्वा विश्वामित्रो महामुनिः।
उवाच रामं सुप्रीतश्चापभङ्गं कुरुष्व भो॥१०॥

इति श्रुत्वा तदा रामः प्रणम्य मुनिपुङ्गवम्।
चापस्य निकटं गत्वा दृष्ट्वा वाक्यमथाब्रवीत्॥११॥

इदं धनुर्वरं दिव्यं[4] महादेवस्य विश्रुतम्।
पुराणं बहुकालीनं मध्ये जीर्णं न संशयः॥१२॥

इत्युक्त्वा वामहस्तेन गृहीत्वा धनुरुत्तमम्।
सुप्तनागमिव चोत्थाप्य[5] येन दक्षो हतः पुरा॥१३॥

ज्यां समारोप्य सदसि सर्वेषां पश्यतां नृणाम्।
बभंज मध्यतो शीघ्रं पुष्पचापमिवा स्मरः॥१४॥

तस्य शब्दो महानासीत् वधिरास्तेन वै जनाः।
केचिन्निपतिता भूमौ केचिच्चैव चकम्पिरे॥१५॥

दिवि[6] दुंदुभयो नेदुः पुष्पवृष्टिस्तदाभवत्।
तदा वाद्यानवाद्यन्त जनकस्य महात्मनः॥१६॥

तदा जयजयारावो जनैरुक्तो बभूव ह।
राज्ञा चाकारिता सीता वरमालां प्रगृह्य सा॥१७॥

राजहंसीव गच्छन्ती वादयन् भूषणानि च।
आगत्य रामकण्ठे च हस्ताभ्यां निदधे स्रजम्॥१८॥

---

१. युवम् -क
२. दर्शनार्थ -क
३. दृष्टम् -क
४. विप्र -ग
५. सुप्तनागसु चोत्थ्याय -क
६. दिव्य -क

नागराश्च तदा सर्वे बालवृद्धास्तथा स्त्रियः।
ज्ञात्वा विवाहं रामस्य सीतायाश्च मुदं ययुः॥१९॥
बभूवुर्मलिनाः दृष्ट्वा राजानो ये समागताः।
उत्थिताः आसनेभ्यस्तु गताः देशान् स्वकान् स्वकान्॥२०
राजापि जनको हृष्टः मुनिना रामलक्ष्मणौ।
गजमारोप्य नगरं प्रविवेश स्वसेनया[1]॥२१॥
ददौ दानं द्विजातिभ्यः दीनान्धकृपणेषु च।
गुणिभ्यो याचकेभ्यश्च ये च तत्र समागताः॥२२॥
गृहमागत्य राजा तु रामचन्द्रं मनोहरम्।
गजादवतारयद् भूमौ[2] दत्त्वा हस्तं स्वयं नृपः॥२३॥
निवेशयामास गृहे सत्कारैः पूजितोऽवसत्।
तद्दिनं तस्य रात्री च महानन्देन सागता॥२४॥

इति श्रीसत्योपाख्याने सूतशौनकसंवादे
सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५७॥



१. सुनैनया -क
२. भूयो -क

अष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

श्रीसूत उवाच-

ततः प्रभाते विमले सूर्ये च विमलोदिते।
मिथिलाधिपती राजा कृतपूर्वाह्निकक्रियः॥१॥

विश्वामित्रमुपागम्य वचनं चेदमब्रवीत्।
दूताः गच्छन्तु भो स्वामिन् वृद्धं दशरथं नृपम्॥२॥

आनयन्तु तवादेशात् सेनया सह भो मुने।

श्रीविश्वामित्र उवाच-

एवं भवतु भो राजन् गच्छन्तु त्वरिता हयैः॥३॥

आगमिष्यति राजा तु पुत्राभ्यां सह सैनिकैः।
तदैव प्रेषिताः दूताः जनकेन महात्मना॥४॥

अहोभिः कतिभिस्ते वै साकेतनगरं ययुः।
राजद्वारं समासाद्य नानारत्नविचित्रितम्॥५॥

अश्वारोहैर्गजारोहैः शिविकाभिः समावृतम्।
पत्तिभिर्नरनारीभिस्तोरणं[1] विविश्रुश्चराः॥६॥

द्वारपालैः समागम्य वृत्तमूचुः यथातथम्।
ते दूताः राजभवनं द्वारपालैः प्रवेशिताः॥७॥

प्रणम्य राजशार्दूलमूचुश्च वचनं त्विदम्।

श्रीदूताः ऊचुः-

भद्रं तेस्तु महाराज श्रूयतां वचनं हि नः॥८॥

जनकश्च शतानन्दो कुशलं कुशली त्वयि।
अब्रवीच्च महाराज विश्वामित्रेण संयुतः॥९॥

---

१. स्ततो रणं -क

रामलक्ष्मणयोः क्षेमं श्रूयतां नृपसत्तमः।
सन्देशं जनकस्येदं महाराजं निशामय॥१०॥
श्रीजनक उवाच-
पूर्वप्रतिज्ञा विदिता वीर्यशुल्का ममात्मजा।
गृहीता तव पुत्रेण रामेण चापत्रोटनात्॥११॥
भवानागत्य शीघ्रं तु सेनया बहुशोभया।
पुत्राभ्यां ऋषिभिः सार्द्धं गृह्णीष्व[1] तनया मम॥१२॥
इत्येतत् प्रियसंदेशं जनकस्य महात्मनः।
श्रीसूत उवाच-
दूतवाक्यं तदा श्रुत्वा मुमोद नृपसत्तमः॥१३॥
वशिष्ठं च समाहूय मन्त्रिणस्त्वब्रवीन्नृपः।
श्रीराजोवाच-
एते दूताः समायाताः जनकस्य पुराद् गुरो॥१४॥
सीतया रामचन्द्रस्य विवाहः प्रवदन्ति ते।
रोचते भवतामेतद् यदि योग्यं भवेदिह॥१५॥
श्रीसूत उवाच-
इति श्रुत्वा नरेशस्य वाक्यं परमशोभनम्।
ऊचुश्च[2] मन्त्रिणः सर्वे वशिष्ठश्च महामुनिः॥१६॥
विवाहं क्रियतां राजन् जनकेषु न संशयः।
तच्छ्रुत्वा राजशार्दूलः सेनाध्यक्षानुवाच ह॥१७॥
मतंगश्चापि सज्जतां रथाः पादातयस्तथा।
अश्ववारास्तथा चोष्ट्राः शिविकाः शतशस्तथा॥१८॥
आनकाः पटहाः ढक्काः भेर्यश्चापि तथैव हि।
काहलाः मर्दलाः सर्वैः मुरजाः वाद्यतां जनैः॥१९॥
मङ्गलानि प्रकुर्वन्तु गणनाथं प्रपूज्य वै।
इत्युक्त्वा राजशार्दूलः विविशे भवनं शुभम्॥२०॥
कौशल्यां च सुमित्रां च कैकेयीं च तथापराः।
प्रहसन् नृपतिः प्राह श्रूयतां वचनं मम॥२१॥

---

१. गृणीष्व -क २. कुचुश्च -क

जनकस्य पुरे राज्ञ वर्तेते रामलक्ष्मणौ।
विश्वामित्रेण मुनिना धनुर्भङ्गं च राघवः॥२२॥

चकार भूभृतां मध्ये पश्यतां सर्वदेहिनाम्।
जनकेन सुता दत्ता सीता परमसुन्दरी॥२३॥

तेनाहूतो विवाहार्थं गमिष्यामि च सेनया।
तच्छ्रुत्वा राजपत्न्यस्तु परमं हर्षमाययुः॥२४॥

पुनः पुनश्च पप्रच्छुः राजानं स्मिताननाः।
प्रहृष्टनरनारीकं राज्ञश्चान्तःपुरं[१] बभौ॥२५॥

काचित् गायन्ति सुभगाः[२] वादयन्त्यस्तथापराः।
नृत्यन्त्यः सुष्ठुनयनाः[३] चक्रुः कर्मान्यनेकशः॥२६॥

व्यञ्जनानि प्रकुर्वन्त्यः देवताः पूजयन्ति च।
महाराजाङ्गणे सर्वाः[४] चक्रुः कौतुहलं मुहुः॥२७॥

ददुर्दानं द्विजातीभ्यो[५] दीनेषु कृपणेषु च[६]।
दिवसे शुभनक्षत्रे प्रस्थानमकरोन्नृपः॥२८॥

शत्रुघ्नं च[७] भरतं च[८] प्रस्थाप्य पुरतो बहिः।
वशिष्ठं वामदेवं च तथा चान्यान् मुनीनपि[९]॥२९॥

आनकान् वादयन्तो वै[१०] जनाः सर्वे विनिर्गताः।
गजानामयुतेनैव वाजिनां प्रयुतेन[११] च॥३०॥

रथाः षष्टिसहस्राश्च[१२] दशलक्ष च पत्तयः।
नर्तकाः वारमुख्याश्च गायकाश्च सहस्रशः॥३१॥

---

१. राज्ञरन्तः पुरं -क
२. शुभगाः -क
३. सुष्ठु लपनाः -ग
४. महाराजं गणेशर्वाः -क
५. द्विजातीनां -ग
६. दीनान्धकृपणेषु च -ग
७. चैव -ग
८. ग- मातृकायां नास्ति
९. मुनीपति -क
१०. प्रवादयतो -क
११. प्रयुतानि -क
१२. षष्टिसहस्राणि -ग

कोशाध्यक्षाः प्रयाताः वै धनैः पुष्कलराशिभिः।
निष्क्रम्य नगरात् सर्वे जनाः मङ्गलपाणयः॥३२॥

पुरंध्र्यः शुभवस्त्राश्च कलशैर्मूर्ध्नि चास्थितैः।
गायन्त्यो ताः विवाहस्य मङ्गलानि पुनः पुनः॥३३॥

मध्ये जगाम राजा च छत्रचामरमण्डितः।
वीक्षितो नरनारीभिर्मङ्गलासंशिभिर्नृपः॥३४॥

एवं चचाल भूपालो सेनया गजशोभया।
पथिवासान् कतिपयान् कृत्वा कोशलभूमिपः॥३५॥

मिथिलां प्राप तेजस्वीजनैश्च परिवारिताः।
प्रासादैर्विविधैरन्यैः[1] ध्वजैश्च समलङ्कृताम्॥३६॥

इति श्रीसत्योपाख्याने सूतशौनकसंवादे
अष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः। ५८।



१. प्रासादैर्बहुभिः रम्यैः –ग

एकोनषष्टितमोऽध्यायः

श्रीसूत उवाच–

श्रुत्वा तु जनको राजा प्रजाभिर्ब्राह्मणैः सह।
निर्जगाम नृपं नेतुं स्वपुरं प्रति मैथिलः॥१॥

अश्ववारैर्मतङ्गैश्च शिविकाभिश्च नागराः।
निर्गम्य मिथिलायास्तु ददृशुः पार्थिवर्षभम्॥२॥

वृद्धं दशरथं दृष्ट्वा मुमुदे जनको नृपः।
गजादुत्तीर्य राजापि वशिष्ठादिभिरन्वितः॥३॥

तस्थौ भूम्यां महाराजः सैनिकैः परिवारितः।
जनकस्तु महाबुद्धिर्नृपस्य चरणान्तिके॥४॥

प्रेम्णा ननाम वै राजा कृत्वाञ्जलिं तु मस्तके।
तदा दशरथो राजा दोर्भ्यान्तं परिषस्वजे॥५॥

कुशलं परिपपृच्छ ह्यन्यानपि तथैव सः।
जनकस्तु तदा राजा रथे दशरथं नृपम्॥६॥

सारथ्यतां स्वयं चक्रे रथे स्थाप्य स्वयं नृपः।
गृहीत्वा ह्येव राजानं नृत्यवाद्यैः प्रहर्षितम्॥७॥

पुरं निवेशयामास नानासम्भारशोभितम्।
सेनां विवेशयामास[१] पुरस्य निकटे नृपः॥८॥

पटवेश्मानि शोभन्ते सहस्राणि ध्वजैः सह।
उवास तेषु धर्मात्मा सैन्यैः सह महामतिः॥९॥

जनकोपि तमामन्त्र्य पौरैः सह गृहं ययौ।
नानाविधानि चान्नानि दधिव्यञ्जनयुतानि च॥१०॥

---

१. निवेशयामास –ग

प्रेषयामास राजापि सैन्यानां[1] भोजनाय च।
सर्वास्तु सिद्धयस्तत्र चाज्ञया जनकस्य तु॥११॥
सेवन्ते सैनिकास्तत्र नानासम्भारभूतिभिः।
राजा दशरथस्तास्तु विस्मयं वीक्ष्य नागमत्॥१२॥
योगिनां दुष्करं नैव जनकोयं[2] तु योगिराट्।
एतस्मिन्नन्तरे विप्रो विश्वामित्रो महामुनिः॥१३॥
सौमित्रिणा च रामेण ह्यागतो नृपसन्निधौ।
सैनिकाश्च तदा मोदं लेभिरे परमाद्भुतम्॥१४॥
विश्वामित्रं मुनिं वीक्ष्य तदा तौ रामलक्ष्मणौ।
आयान्तं तु मुनिं वीक्ष्य तथा तौ च कुमारकौ॥१५॥
उत्थाय जगृहे पादौ विश्वामित्रस्य राजराट्।
भ्रातरौ राजराजस्य चरणौ जगृहतुर्मुदा॥१६॥
पुत्रौ संकृष्य राजा च दोर्भ्यां कृत्वा च वक्षसि।
स्नापयामास प्रेम्णा वै नेत्राभ्यां वारिबिन्दुभिः॥१७॥
मुनिं पुत्रौ समावेश्य जगाद नृपसत्तमः।
कृपया तव विप्रेन्द्र सम्बन्धो हीदृशोभवत्॥१८॥
परोपकारिणः सर्वे साधवः समदर्शिनः।

श्रीविश्वामित्र उवाच-

भाग्याद् भाग्यवतां भूतिः सर्वत्र किल जायते॥१९॥
पुत्रौ गृहीष्व राजेन्द्र न्यासभूतौ समर्पितौ।
सर्वे प्रमुदिताः लोकाः राजा चापि महामतिः॥२०॥
एतस्मिन्नन्तरे विप्रः शतानन्दो महामतिः।
जनकानुमतेनैव वाक्यं चेदमुवाच ह॥२१॥

श्रीशतानन्द उवाच-

राघवेन्द्र महाराज ह्यग्रे कृत्वा कुमारकान्।
गम्यतां मण्डपं राज्ञो विप्रैर्नागरिकैः सह॥२२॥

---

१. सैनिको -क
२. जनकायं-क

इति श्रुत्वा महाराजौ वादयामास दुन्दुभीन्।
ब्राह्मणान् क्षत्रियांश्चैव नैगमान् समनोदयत्॥२३॥

भूषितांश्च[1] कुमारांश्च भूषणैः रत्ननिर्मितैः।
वजारूढांश्च तान् कृत्वा चचाल नृपैर्हि तैः॥२४॥

मिथिलायां जनाः सर्वे नरनार्य्योऽमरप्रभाः।
आयातं तं[2] नृपं श्रुत्वा विवाहाय मुदं ययुः॥२५॥

दर्शनाय कुमाराणां नागरीणां यतस्ततः।
हर्षो बभूव तास्तूर्णं हर्म्याण्यारुरुहुर्मुदा॥२६॥

आलोकनाय रामस्य काचित् परमसुन्दरी।
केशपाशं[3] न बध्नाति पुष्पाण्यपतन् ततः॥२७॥

अङ्घ्रिप्रसाधिकायास्तु करा दाक्षिण्यसत्वरम्।
गवाक्षापव्रजन्ती सा[4] पावकचिह्नां क्षितिं[5] नयत्॥२८॥

काचिन्नेत्रं च संभाव्य ह्यञ्जनेन शलाकया।
द्वितीयं वञ्चयित्वा तु वातायनमुपाययौ॥२९॥

वातायने ददौ दृष्टिं नीवीं नापि बबन्ध सा।
अवलम्ब्य करेणासौ तस्थौ रामं च वीक्षती॥३०॥

रशनां[6] न बबन्धां च काचिद् बाला प्रसर्पती।
पदे पदे तु भूम्यां सा पातयामास घंटिकाम्[7]॥३१॥

तासां मुखैश्च चन्द्राभैर्गृहगवाक्षाः पूरिताः[8]।
पश्यन्त्यस्तु[9] रमानाथं कोटिकन्दर्पसन्निभम्॥३२॥

---

१. भूषयामास -ग
२. आपतन्तं -ग
३. महूरघमिल्लं च बबंधाथ पुष्पानि न्यपतंस्ततः।
४. तां -क
५. सृती -क
६. रसनां -क
७. पिटिकाम् -क
८. चन्द्राभैर्गवाक्षाः पूरिताभवन् -ग
९. प्ररसस्तु -क

गन्धर्वराजप्रतिममिन्द्रनीलमणिप्रभम्।
मस्तके मणियुक्तानां बिभ्रन्तं मौलिमुतमम्॥३३॥

दीर्घे ललाटदेशे च ऊर्ध्वपुण्ड्रं मनोहरम्।
कुण्डलं मकराकारमलकाभ्यां च शोभितम्॥३४॥

ग्रैवेयं मणिमुक्तानामुरसा च महामणिम्।
केयूरं किल रत्नानां दधतं भुजयोर्द्वयोः।
प्रकोष्ठयोर्महादिव्यं कङ्कणं रत्नशीलितम्॥३५॥

अमूल्यैरंगुलीयैश्च नानारत्नैः च शोभितम्।
कञ्चुकं च महादिव्यं दधतं श्यामविग्रहे॥३६॥

उपानहोश्च युग्मेन शोभितं पादपङ्कजम्।
ददृशुस्ताश्च श्रीरामं लोचनैः कर्णविस्तृतैः॥३७॥

इति श्रीसत्योपाख्याने सूतशौनकसंवादे
एकोनषष्टितमोऽध्यायः।५९।

□□

षष्टितमोऽध्यायः

श्रीसूत उवाच-

ऊचुः परस्परं बालाः रामे संलग्नमानसाः।
जनकेन कृतं यज्ञं धनुषस्तु पिनाकिनः॥१॥

कथं रामः समायाति यदि यज्ञो न जायते।
रामो नारायणः साक्षात् सीता लक्ष्मीः प्रिया सती[1]॥२॥

रामचन्द्रस्य[2] सीतायाः विवाहो नैव जायते।
मूर्खत्वं ब्रह्मणो लोके जायते बहुकालिकम्॥३॥

नागरीणां तु वाक्यं च श्रृण्वन् याति कुमारकः।
भ्रातृभिः सखिभिः सार्द्धं पित्रा दशरथेन च॥४॥

कथं वृणोति सीतान्यं प्राकृतं तु नरं वृथा।
रोहिणीव शशांकेन तथा राममनुव्रता॥५॥

नृत्यमानां नटीं सर्वे पश्यन्तो यान्ति राघवाः।
नटी सा गायतिं गीतं तथा श्रृण्वन्ति ते जनाः॥६॥

रामस्याग्रे भ्रमन्तीनां[4] जनाः हास्यं प्रकुर्वन्ते।
राममायाबलेनैव स्वयं नित्यं भ्रमन्ति च॥७॥

इत्थं दशरथो राजा राघवैस्तनयैः सह।
सम्बन्धिनो जनकस्याशु द्वारं प्राप महामना॥८॥

शोभितं मङ्गलैः सर्वैर्वेदपाठैस्तथा शुभैः।
द्वारदेशे विनिर्गत्य जनकस्तु[5] नरेश्वरः॥९॥

---

१. सति -क
२. कथं वृणोति सीतान्यं प्राकृतं तु नरं वृथा।
३. गायती -क
४. भ्रमंतीमां -ग
५. जनकस्तं -क

महत्या पूजया रामं पूजयामास दारकान्।
जनकस्य च पुत्रो वै नाम्ना लक्ष्मीनिधिर्महान्॥१०॥

हस्तावलम्बनं दत्त्वा गजाद्राममरोपयत्।
तथैवान्यान्[१] कुमारान् वै तथा दशरथं नृपम्॥११॥

जनकेन विनिर्दिष्टं चतुरस्का:[२] कुमारका:।
विविशुर्भूषितास्तेस्तु प्रणम्य गुरुदेवता:॥१२॥

पीठे निवेशितो रामो नानारत्नविभूषिते।
जग्राह मधुपर्कं च राज्ञा दत्तं च राघव:॥१३॥

वस्त्रद्वयं च श्रीरामो वनितानां विलोकने[३]।
जग्राह मण्डपे दत्तं भूपेनैव महामना॥१४॥

पुरोधास्तु विदेहानां शतानन्दं महामति:।
रघूनां च वशिष्ठस्तु तथैवान्ये द्विजातय:॥१५॥

अग्निमाज्यादिभि: हुत्वा स तं वै साक्ष्ये निधाय च।
सीतां कन्यां समानीय विदेह: ग्राह राघवम्॥१६॥

इयं सीता वरारोहा लक्ष्मीस्तेस्तु प्रतिग्रह:।
भवान् नारायणो देव: पत्न्यर्थं प्रतिगृह्यताम्॥१७॥

हस्तेन हस्तं श्रीराम: जानक्या जग्रहे तदा।
शुशुभे च तदा राम: कामो रत्येव मण्डपे॥१८॥

स्पर्शेन किल सीताया: रागो[४]द्गमस्तु राघवे।
राघवस्य करस्पर्शात् सीतायाश्च बभूव ह॥१९॥

तयोर्विलोचनान्यैव लज्जां प्रापु: परस्परम्।
व्याजेन होमधूमस्य चोन्मेषणनिमेषणम्॥२०॥

बभूव वरवध्वोश्च मण्डपे जनसन्निधौ।
पश्चाद्रामस्य सीता च ह्यग्निं चैव प्रदक्षिणम्॥२२॥

---

१. तथान्यान् -क
२. चतुष्कान्तं -ग
३. विलोकनै -ग
४. रोमो-ग

चक्रतुर्ब्राह्मणानां तु रेजाते च मुहुर्मुहुः।
शतानन्देन सा प्रोक्ता जानकी पतिदेवता॥२३॥

हुताशने च लाजानि जुहावेन्दुमुखी[१] तदा।
हविषां[२] पल्लवानां च गन्धमिश्री[३] बभूव ह॥२४॥

धूमः कर्णोत्पलस्येव[४] प्राप शोभां च सन्मुखे।
वदनं जानकीदेव्याः अञ्जनक्लेदमावभौ॥२५॥

ग्रहणाद् होमधूमस्य[५] ययौ पाटलतां तदा।
कन्यावरौ तदा सर्वे द्वौ[६] स्थाप्य कनकासने॥२६॥

ब्राह्मणाः नैगमाः देवाः[७] क्षत्रियाः पुरवासिनः।
अभिषेकं तदा चक्रुः वरवध्वोः सुमङ्गलम्॥२७॥

एतस्मिन्नन्तरे राजा आहूय लक्ष्मणं पुनः।
उर्मिलां च विधानेन लक्ष्मणाय स्वयं ददौ॥२८॥

भरतं पुनराहूय माण्डवीं दत्तवान्नृपः।
कुशध्वजसुतां रम्यां श्रुतकीर्त्तिं च विश्रुताम्॥२९॥

शत्रुघ्नाय ददौ राजा विधिना बलशालिने।
एवं दत्त्वा कुमारीश्च प्रीत्या तेभ्यो नराधिपः॥३०॥

पारिवर्हं ददौ पश्चादसंख्यं मिथिलाधिपः।
पश्चाद्रामं समुत्थाय शतानन्दस्य चाज्ञया॥३१॥

लक्ष्मीनारायणस्यापि[८] प्रतिमा यत्र विद्यते।
तं प्रणम्य यथान्यायं स्थितास्तत्र कुमारकाः॥३२॥

इति श्रीसत्योपाख्याने सूतशौनकसंवादे विवाहवर्णनं नाम षष्टितमोऽध्यायः।६०।

---

१. जुहावाधोमुखी -ग
२. हविषा -ग
३. गन्धमिश्रे -ग
४. कंजो सलस्येव -क
५. होमधूपस्य -क
६. सं -ग
७. नैगमादेवा -ग
८. विवेशान्तःपुरं वीरो भ्रातृभिः सह राघवः।
यत्र देवालयं राज्ञो नित्यपूजारतस्य च॥३२॥
ग -मातृकायामस्ताम् श्लोकात्पूर्वमयं श्लोको विद्यते।

एकषष्टितमोऽध्यायः

श्रीसूत उवाच-

आसनेषु च दिव्येषु रेजस्तत्र कुमारकाः।
राजदाराः समाजग्मुर्यत्र रामादयः स्थिताः॥१॥

ब्रह्माणी तत्र रुद्राणी इन्द्राणी शारदा तदा।
अन्या वै लोकपालानां स्त्रियस्तत्र समागताः॥२॥

गन्धर्वाप्सरसस्तत्र तथा नार्यो अनेकशः[1]।
दर्शनार्थं तु देवस्य रामचन्द्रस्य धीमतः॥३॥

गायन्ति गालिकास्तत्र वाद्यं चक्रुर्मनोरमम्।
नृत्यन्ति चापरास्तत्र रामाग्रे भावदर्शिकाः॥४॥

भोजयन्ति कुमारांश्च मधुपर्कं तथैव ताः।
तासां मध्यात् समुत्थाय राज्ञी लक्ष्मीनिधेस्तु या॥५॥

नाम्ना सिद्धिस्तु सा ख्याता सखी यस्याति शारदा।
वधू जनकराजस्य प्रिया लक्ष्मीनिधेः शुभाः॥६॥

रूपेणाप्रतिमा लोके सर्वाभरणभूषिता।
आगत्य रामचन्द्रस्य तस्थौ प्राञ्जलिरग्रतः॥७॥

उवाच सस्मिता रामं नर्तयन्ती विलोचने।
पीताम्बरं प्रकृष्याय पाणिना स्वेन निस्त्रिया[2]॥८॥

श्रीसिद्धिरुवाच-

राघवेन्द्र महाराज श्रूयतां वचनं मम।
ननन्दा मे गृहीता ते सीता नाम्नी वरानना॥९॥

---

१. गन्धर्वाप्सरसस्तत्र वाद्यं चक्रुर्मनोरमम्।
क-मातृकायामिदमेव प्राप्यते।

२. निस्त्रपा -ग

किञ्चित् पूजा ममापि स्याद् दीयतां राजपुत्रकः।
इत्युक्त्वा वीटिकां दिव्यां ददौ रामाय सुन्दरी॥१०॥

लक्ष्मणाय च शत्रूणां हन्त्रे वै भरताय च।
पुनश्च प्रार्थयामास मम पूजां प्रदेहि भो॥११॥

मार्जती वदनं तेषामञ्चलेन शुभानना।
जहसुस्ते कुमारापि स्पर्शाद् वदनस्य तु॥१२॥

दृष्ट्वा तु वदनं तेषां मोदमाप[1] वरानना।
जगाद सस्मिता वाक्यं देहि पूजां च मामकीम्॥१३॥

नो चेत् सङ्गे गमिष्यामि तव राम पुरीं प्रति।
भूत्वा च सेवको नो चेन्मदीयां नगरीं वस॥१४॥

ननन्दाः मे गृहीताः ते उर्मिलाद्याश्च भ्रातृभिः।
तस्याः वाक्यं समाकर्ण्य सस्मिताः राजयोषितः॥१५॥

श्रीराम उवाच-

उवाच रामचन्द्रोऽपि तव पूजा ददाम्यहम्।
सेवको न भविष्यामि वयं क्षत्रियपुङ्गवाः॥१६॥

योगिनो जनकाः सर्वे ऋद्धिसिद्धिह्युपासकाः[2]।
वयं तासां तु भोक्तारः सिद्धिं त्वां च नयाम्यहम्॥१७॥

श्रीसिद्धिरुवाच-

एवं भवतु भो राजंस्तव दासी भवाम्यहम्।
पूजां देहि मदीयां त्वं ननन्दा मे विवाहिता॥१८॥

श्रीराम उवाच-

वस्त्ररत्नहिरण्यादिभूषणं गजवाजिनः।
रथाश्च-शिबिकादिव्याः वाञ्छा स्वीया च[3] पूर्यताम्॥१९॥

इत्युक्त्वा राजपुत्रेण सिद्धिः प्रोवाच राघवम्।

श्रीसिद्धिरुवाच-

देहि भक्तिं महाराज मम भर्त्रे तथैव च॥२०॥

---

१. मोह -ग
२. ऋद्धिसिद्धीह्युपासकाः -क
३. प्र -ग

यया भक्त्या भविष्यावो त्वदीयौ तव किङ्करौ।
श्रीसूत उवाच-
तच्छ्रुत्वा शारदा देवी सखी तस्याः मनोहरा॥२१॥

उवाच रामसंलग्ना वीजयन्ती मुखाम्बुजम्।
श्रीशारदोवाच-
अहमपि गमिष्यामि सीतासङ्गे पुरीं तव॥२२॥

दर्शनार्थं च राज्ञीणां युष्माकं याश्च मातरः।
एता जनकपत्न्यस्तु सन्दिहानाः परस्परम्॥२३॥

गौरो दशरथो राजा कौशल्या श्रूयते तथा।
कथं श्यामो [1]भवान् जातः सन्देहं नो अपाकुरु॥२४॥

भवान्नारायणो देवो श्यामसुन्दरविग्रहः।
लक्ष्मणः शेषरूपश्च भरतः शङ्खमूर्तिभृत्॥२५॥

शत्रुहा चक्ररूपश्च[2] मया ह्येवं विलोकिताः।
एवं ता ब्रुवतीं[3] बालां कुमाराः सस्मिताननाः॥२६॥

अपाङ्गैर्वारयामासुस्तामेव जनसंसदि।
दृष्ट्वा रामं तु ताः सर्वा नात्मानं विविदुस्तदा॥२७॥

मोहिताः रामरूपेण ध्यानस्था इव लक्षिताः।
एतस्मिन्नन्तरे राजा विदेहो मिथिलाधिपः॥२८॥

विलोक्य रामचन्द्रं च देहं न बुबुधे नृपः।
पुनरुत्थाय राजा तु वेदीमध्ये च `तस्थिवान्॥२९॥

दशरथं महाराजं वशिष्ठादिसमन्वितम्।
रामाद्यैर्बालवैः सर्वैरघूनां प्रवरैः सह।
नैगमैः कुलवृद्धैश्च भोजयामास धर्मवित्॥३०॥

गायन्ति गालिकास्तत्र गन्धर्वोप्सरसस्तथा[4]।
चतुर्विधं सुधान्नं (च) बुभुजुः क्षत्रियर्षभाः॥३१॥

---

१. भवानाभातः सन्देहं मे च जायते -क

२. चक्ररूपी च -ग

३. तामेवं ब्रुवन्तीं -क

४. गन्धर्वोत्थरसस्तथा -क

भुक्त्वाचम्य यथान्यायं वस्त्राण्याधायविग्रहे[1]।
रामादयस्तु ते सर्वे शिविराय विनिर्ययुः॥३२॥

आगत्य शिविरे राजा वधूभिः सह पुत्रकैः।
ददौ दानं द्विजातिभ्यो याचकेभ्यः पुनः पुनः॥३३॥

इति श्रीसत्योपाख्याने सूतशौनकसंवादे
एकषष्टितमोऽध्यायः।६१।



१. वस्त्राण्याध्याय -क

द्विषष्टितमोऽध्यायः

श्रीसूत उवाच-

उषित्वा चैव राजा तु दिनानि कतिचिन्मुदा।
अयोध्यां पुनागन्तुं ययाचे जनकं नृपः॥१॥

तच्छ्रुत्वा जनको राजा गजानश्वान् समाहितात्।
कम्बलान् मणिमुक्तादीन् जामात्रे प्राहिणोन्नृपः॥२॥

रामो नृपाज्ञया प्राप श्वश्रूणां निकटे हरिः।
उवाच प्रणतौ भूत्वा श्वश्रूः सर्वाः समाहिताः॥३॥

श्रीराम उवाच-

आज्ञां देहि, महाराज[1] अयोध्यां गन्तुमीहते।
अहं चापि गमिष्यामि भ्रातृभिः सह तां पुरीम्॥४॥

एकाग्रमानसेनैव मम ध्यानं च क्रियताम्।
भवतीभिः सदा चित्ते उपकण्ठे वसाम्यहम्॥५॥

धर्मतस्तव पुत्रोऽहं विस्मरन् कर्त्तुमक्षमः[2]।
मां च ध्यायन्ति ये लोकास्ते कृतार्थाः न संशयः॥६॥

तच्छ्रुत्वा राजदारास्तु विचार्य मनसा त्विदम्।
चतस्रः कन्यकाः तास्तु संभूष्य[3] भूषणोत्तमैः॥७॥

आलिङ्ग्य मातरः सर्वाः जानकीं प्रेमतो मुहुः।
मोक्तुं नैक्षन्त कन्यां ताः वियोगभयकातराः॥८॥

वैदेहि तव जन्मेदमीश्वरैस्तु स्तुतं किल[4]।
देहान्तरेऽपि द्रष्टव्याः[5] इमाः मातृर्वराननने॥९॥

---

१. महाराज्ञि -ग

२. विस्मर्तुं न क्षमः क्वचित् -ग

३. सम्भूय -क ४. जन्मेदमाश्ंचरेण तु सं किल -क

५. देहान्तेऽपि द्रक्ष्यव्या -क

विश्वकर्तुरियं सृष्टिर्बन्धून् संयोज्य भिन्दत्[1]।
न च जानाति कस्यापि पीडां चापि वियोगजाम्॥१०॥

आत्मतुल्यः पति प्राप्तस्त्वया सीते न संशयः।
अस्माभिस्तु न शोच्यासि सर्वदा प्राणवल्लभे॥११॥

विरहं दुःसहं सीते ह्यस्माकं ते वियोगजम्।
सुदिनं वर्तते तेषां यत्र सीते गमिष्यासि॥१२॥

श्रीजनक उवाच-

मङ्गलं क्रियतां देव्यै सीतायै विधिपूर्वकम्।
इति श्रुत्वा तदा प्रोचुर्वैदहीं गद्गदा स्वरा[2]॥१३॥

चिरायुर्भव सीते त्वं कृपया श्रीधवस्य च[3]।
शिवगौरीप्रसादेन सौभाग्यं ते विवर्द्धतु[4]॥१४॥

वामभागे तु रामस्य सदा तिष्ठ वरानने।
इत्यादि चाशिषो दत्त्वा ऊचुः रामं च मातरः॥१५॥

मङ्गलानि प्रकुर्वन्त्यः प्रेम्णा चाश्रुविलोचनाः।
सुकुमारी च सीतेयं सुन्दरी च गुणान्विता॥१६॥

पित्रा च लालिता नित्यं परिचर्य्यां च करिष्यति।
यदि चेदपराधं तु चरेद् बालतया त्वियम्॥१७॥

हृदये न तु मन्तव्यं दासी ते चरणाब्जयोः।
जनकेन च ते दत्ता धर्मपत्नी सदा तव॥१८॥

कृपयैनां सदा सिञ्च[5] नित्यं सिञ्च नृपात्मज।
यदा यदावतारं ते जायते भुवि मानवे॥१९॥
तदा तदा त्वियं पत्नी जायते नृपनन्दन।२०।

वाक्यैरित्यादि सन्तोष्य रामं जामातरं तु सा।
दत्त्वा बहूनि रत्नानि रामाय प्रियकारिणे॥२१॥

---

१. मन्दतः -क
२. गद्गदस्वराः -क
३. श्रीराघवस्य च -क
४. निविवर्द्धतु -क
५. सदास्यां च -क

चतुरस्त्रां शुभां दोलां स्वर्णरत्नविनिर्मिताम्।
सीतामारोहयामासु रुदन्तीं ताश्च मातरः॥२२॥

अम्बवत्सेति नादोऽभूज्जनविप्लवकारकः।
उर्मिलां श्रुतिकीर्तिं च माण्डवीं चापि मातरः॥२३॥

यानेषु स्थापयामासुरालिङ्ग्य सादरम्।
सुभगादयस्तु सख्यस्ताः यानारुरुहुस्तदा॥२४॥

मिथिलाधिपती राजा वदान्यानां शिरोमणिः।
सर्वं दत्त्वा च रामाय रामं हृदि निवेश्य च॥२५॥

राघवेन्द्रं प्रणम्याथ गमनायादिदेश ह।
प्रयाणे चैव रामस्य मिथिलापुरवासिनः॥२६॥

पश्यं राममयं सर्वमश्रुकण्ठाः बभूविरे।
बालाः वृद्धाः युवानश्च तरुण्यो ध्यानतत्पराः॥२७॥

दुन्दुभीनां प्रणादेन गजानां बृंहितैस्तथा।
हेषितैश्चापि चाश्वानां शान्तिपाठैस्तथैव च॥२८॥

रुदितानि च शृण्वन्ति नराः नार्यः परस्परम्।
केचित् सीतेति हाचक्रुर्हा रामेति वदन्मुहुः॥२९॥

तथैव रामो धर्मात्मा भ्रातृभिः परिवारितः।
वशिष्ठाद्यास्तथा विप्राः नागराः क्षत्रियास्तु ते॥३०॥

एवं ब्रुवत्सु सर्वेषु प्रचचाल रघूद्वह।
नाम्ना शत्रुजयं नागमारुरोह नराधिपः॥३१॥

वधूनां[1] तानि[2] यानानि मध्ये कृत्वा प्रतस्थिरे।
तस्थुरमीलितं[3] नेत्रं मिथिलापुरवासिनः॥३२॥

महोत्सवं तु ध्यायन्तो वृतेनानेन रेमिरे।

इति श्रीसत्योपाख्याने सूतशौनकसंवादे द्विषष्टितमोऽध्यायः।६२।

---

१ तथैव रामो धर्मात्मा भ्रातृभिः परिवारितः।
वशिष्ठाद्यास्तथा विप्राः नागराः क्षत्रियास्तु ते॥
अस्य श्लोकस्य पाठः ग-मातृकायामस्मात् श्लोकात् पूर्वं वर्तते।

२. यानि -ग

३. तस्थु निमीलितं -क

त्रिषष्टितमोऽध्यायः

श्रीसूत उवाच-

अयोध्यां प्रति सा सेना जगाम परमा श्रिया।
दुन्दुभीनां प्रणादाश्च श्रूयन्ते तत्र भूरिशः[१]॥१॥

वधूनां तानि यानानि हैमानि प्रचकाशिरे।
मालेव काञ्चनी भूम्याः यानपङ्क्तिर्विराजते॥२॥

वितानानि तु मेघानां बभूवुर्व्रजतां पथि।
मङ्गलानि प्रदृश्यन्ते यत्र तत्र च भूरिशः॥३॥

जमदग्नेस्तदा पुत्रः क्षत्रियाणां कुलान्तकः।
नाम्ना परशुरामश्च रामदर्शनकांक्षया॥४॥

प्रोवाचागत्य रामं तु धनुर्बाणधरस्स्वयम्।

श्रीपरशुराम उवाच-

रामचन्द्र महाभाग धनुर्भङ्गस्त्वया कृतः॥५॥

विश्वासस्तेन मे जातः रामो नारायणं स्वयम्।
इदं धनुर्वरं राम विष्णोरमिततेजसः[२]॥६॥

गृह्णीष्व भो महाराज पादौ ते प्रणमाम्यहम्।
अथ राम प्रणम्याशु कार्मुकं जगृहे मुदा॥७॥

ऋषिप्रसादमाभाष्य रामो राममुदैक्षत।
रामं च सीतया सार्द्धं हृदि न्यस्य ययौ मुनिः॥८॥

रामोऽपि सेनया सार्द्धं राजा दशरथेन च।
अयोध्यां च जगामाथ नन्दयन् मण्डलं भुवः॥९॥

---

१. भूरिः -क

२. तेजसा -क

पुत्रैः सार्द्धं महाराजमायान्तं[1] मन्त्रिसत्तमाः।
पौरैर्निगत्य पुर्यास्तु पूजया तमपूजयन्[2]॥१०॥

मङ्गलानि प्रगायन्ति नराः नार्यस्तु भूरिशः।
वाद्यमानेषु तूर्येषु स्तूयमानेषु वन्दिषु॥११॥

वेदेषु पाठ्यमानेषु विप्रवर्यः समन्ततः।
पुरतो नृत्यमानाश्च वारमुख्याः सहस्रशः॥१२॥

अयोध्यां नगरं रम्यं नानारत्नैश्च मण्डितम्।
वैजयन्तीपताकाभिः राजितं बहुधोन्नतम्॥१३॥

उत्सार्य शिविकावस्त्रं भगिनीभिस्तु जानकी।
प्रणाममकरोत् प्रेम्णा वैकुण्ठेति हरेः पुरीम्॥१४॥

वीणावेणुमृदङ्गानां कर्कराणां च भूरिशः।
शंखदुन्दुभिनादं च गोमुखानां तथैव च॥१५॥

नादितं विविधैः नादैः पुरं देवपुरोपमम्।
बालवृद्धाः तरुण्यश्च हर्म्याण्यारुरुहुस्तदा॥१६॥

गजारूढं महाराजं राजराजं च राघवम्।
वृद्धं दशरथं दृष्ट्वा प्रशंसन्ति तदा जनाः॥१७॥

एरावतकुले[3] जातं गजेन्द्रं पर्वतोपमम्।
तमारुह्य समायातं छत्रचामरशोभितम्॥१८॥

कोटिकन्दर्पलावण्यं रामचन्द्रं मनोहरम्।
भूषितं वरवस्त्रैश्च तथैव वरभूषणैः॥१९॥

तथैव भरतं[4] वीरं मत्तमात्तङ्गगामिनम्।
लक्ष्मणं शत्रुहन्तारं नागनागे विराजितम्॥२०॥

राजपुत्रांस्तथा दृष्ट्वा स्त्रियो बालाश्च कन्यकाः।
मुक्ताभिरक्षतैः[5] पुष्पैः किरन्त्यो गीतमुज्जगुः।२१॥

---

१. मानम्य -क

२. तमपूजयत् -क

३. एरापतिकुले -ग

४. तथैवावरतं -क

५. रक्षितैः -ग

धन्या अभूवंस्ते लोकाः मिथिलापुरवासिनः।
शोभां विलोक्यते रामनयनैः कर्णाविस्तृतैः॥२२॥

धन्यास्ते मातरः सर्वाः कौशल्या भूरिदा सदा।
यासां पुत्राः भवन्त्यो हि मन्मथाधिकोपमाः॥२३॥

वयं धन्यतमास्तेस्तु मुखचन्द्रावलोकिनः।
एवं शृण्वन् शुभाः वाचाः प्रययुस्ते कुमारकाः॥२४॥

कौशल्याभवनं प्रापुः राज्ञा सह कुमारकाः।
तस्या उदभासितं सद्म मङ्गलैः गन्ध[1]वस्तुभिः॥२५॥

द्वारं चापि महादिव्यं मुक्तादामभिरावृतम्।
द्वारभित्तौ हरेः व्यूहाः सर्वे साधुनिरुपिताः॥२६॥

ब्रह्माद्याः सकलाः देवाः स्त्रियो वै कमलादयः।
द्वारे तस्मिन् विराजन्ते मङ्गलैर्हस्तपूरिताः॥२७॥

कौशल्या च सुमित्रा च कैकेयी राजयोषितः।
स्वर्णपात्रे महादिव्ये नानारत्नैश्च पूरिते॥२८॥

दीपं स्वर्णमयं तत्र गोघृतेन समन्वितम्[2]।
सीतया सहित रामं नीराजयन्ति सन्मुखे॥२९॥

विलोक्य गीतं गायन्ति रामचन्द्रं मुहुर्मुहुः।
राज्ञां सहस्त्रमध्ये[3] तु धनुर्भङ्गं त्वया कृतम्॥३०॥

तेषां मानमपाकृत्य सीता चोद्वाहिता त्वया।
पूरिता जनकस्यैव प्रतिज्ञा राजनन्दन॥३१॥

पूजितो भार्गवेनैव कीर्तिस्ते लोकविश्रुता।
स्वया पत्न्या चिरं जीव वर्द्धयस्व निजान् जनान्॥३२॥

एवं नीराजनं कृत्वा ददुर्दानान्यनेकशः।
अवतेरुर्गजेभ्यस्तु जननीभिस्तुपूजिताः[4]॥३३॥

---

१. मङ्गल -ग

२. नीराजनसमन्वितम् -क

३. सहस्रे समामध्ये -ग

४. पूजितः -क

यानेभ्यस्तु तथा वध्वः जानकाद्याः अवातरन्।
तासां मुखानि चालोक्य श्वश्रुवः[1]रत्नानि ताः ददुः।३४।

वधूभिः[2] सहितास्तास्तु देवागारं ययुः पुनः।
तं प्रणम्य यथान्यायं श्वश्रुभ्यश्च पुनर्न्नताः॥३५॥

प्रवराणां विशुद्धानां स्त्रीणां च कुलयोषिताम्।
प्रमुखारुन्धती यत्र गुरुपत्नीः मनस्विनीः॥३६॥

तासां पादौ प्रणम्याथ विविशुस्ताः वरासने।
एतस्मिन्नन्तरे राजा दत्त्वा दानानि भूरिशः॥३७॥

याचिकेभ्यो गुणिभ्यश्च जगामान्तःपुरं स तैः।
कुमारैः सह रंगस्य पादपद्मं प्रणम्य च॥३८॥

पक्वैरन्नैर्यथान्यायं विप्रवर्य्यानभोजयत्।
क्षत्रियांस्तु[3] तथा वैश्यान् तथैव परिचारकान्॥३९॥

स्वानि स्वानि गृहान्येव मुदास्ते प्रपेदिरे।
जनेभ्यः कथायामासुर्विवाहानन्दमद्भुतम्॥४०॥

इति श्रीसत्योपाख्याने सूतशौनकसंवादे
त्रिषष्टितमोऽध्यायः।



---

१. श्वश्रू -ग

२. वन्धूभिः -क

३. क्षत्रियांश्च -ग

चतुषष्टितमोध्यायः

श्रीसूत उवाच-

अथ रात्र्यां प्रवृत्तायां राजराजस्य सद्मनि।
इन्द्रेण प्रेषिताः सर्वाः रम्भाद्याप्सरसो मुदा॥१॥

नर्तनार्थं तु रामस्य विवाहे मङ्गलप्रदाः।
कौशल्याप्राङ्गणे दिव्ये दिव्यास्तरणशोभिते॥२॥

वितानैश्चापि रम्यैश्च छादिते चापि सर्वशः।
तत्र राजा महाबुद्धिः पत्नीपुत्रसमन्वितः॥३॥

तस्याग्रे ननृतुः सर्वाः रम्भाद्याः देवनारिकाः[1]।
हावभावप्रकुर्वन्त्यः कुर्वन्त्योभिनयान्मुहुः॥४॥

अन्तरिक्षाच्च शीघ्रं तु ह्यागत्य[2] नृपते पुरः।
तस्थौ सदसि देवर्षिः वीणापाणिः स्मयन्निव॥५॥

उत्थाय नृपतिः शीघ्रं पुत्रैः सार्द्धं महामतिः।
सम्पूज्य विधिवद् विप्रं दिव्ये पीठे न्यवेशयत्॥६॥

नारदं पूजयामासुः सर्वास्ताः राजयोषितः।
ननृतुः देववध्वश्च समाजे किल तादृशे॥७॥

नानावाद्यप्रणादेन[3] नानागीतेन हर्षितः।
नर्त्तनार्थं समुत्तस्थौ कौतुकी नारदो मुनिः॥८॥

दर्शयामास भावं च रामाग्रे कौतुकी मुनिः।
मध्ये ननर्त देवानां[4] रामाग्रे वैष्णवो ऋषिः॥९॥

---

१. नाटिकाः -ग

२. ह्यागते -क

३. प्रदानेन -क

४. देवीनां -ग

कौतुकानि बहून्येव दर्शयन् मुनिसत्तमः।
क्वचिद् दशरथस्याग्रे कौशल्या पुरतः क्वचित्॥१०॥

सुमित्राकैकेयीनां तु अन्यासामपि योषिताम्।
ननर्त नारदो योगी वीणास्कन्धे निधाय च॥११॥

जटाः पिशंगीः[1] विक्षिप्य कूर्च्चं विस्फार्य पाणिना।
तिलोत्तमा सुकेशी च तयोः स्कन्धे भुजौ निजौ॥१२॥

कृत्वा जगौ ननर्त्ताथ हास्याय कौतुकं[2] तथा।
प्रफुल्लं वायुना कृत्वा मुखं स्वं दर्शयन् मुदा॥१३॥

घूर्णयन् मंथरां विप्रो वानरीमिव भूषिताम्।
मंथरापि तदोत्थाय कैकेयीनिकटात् पुनः॥१४॥

वासो जग्राह विप्रर्षेः स्मयन्ती प्राह नारदम्।

श्रीमन्थरोवाच-

न त्वादृशो वरः क्वापि मादृशी क्वापि सुन्दरी॥१५॥

विधिर्निर्मितमेतत्तु सम्बन्धं भर्त्तृभार्ययोः।
तच्छ्रुत्वा जहसुः सर्वे नराः नार्यस्तु भूरिशः॥१६॥

नारदोऽपि महायोगी प्रहसन् प्राह मन्थराम्।
त्वादृशी कुत्र लक्ष्यामि त्रैलौक्ये सचराचरे॥१७॥

इदानीं परितुष्टोऽस्मि दृष्ट्वा ते कूबरं महत्।
इति श्रुत्वा जनाः सर्वेः हास्यं चक्रुः परस्परम्॥१८॥

उत्तमां चाशिषं दत्त्वा सर्वेभ्योः[3] नारदो मुनिः।
तिलोत्तमा सुकेशास्तु पूजां प्राप्य निजं पदम्॥१९॥

पूजां च महतीं प्राप्य स्वानि धिष्णानि[4] भेजिरे।
यत्र सीता स्वयं लक्ष्मी रामो नारायणः स्वयम्॥२०॥

---

१. जयः पिसंगीः -क

२. कुतुकं -ग

३. सर्वेषां -क

४. धिष्ठानि -ग

सिद्धयो विपुलास्तत्र निधयश्चापि भूरिशः।
ययोः कटाक्षमात्रेण विश्वं जीवति नित्यदा॥२१॥

इदं विवाहचारित्रं ये शृण्वन्ति नराः सदा।
तेषां भुक्तिश्च मुक्तिश्च मङ्गलानि भवन्ति हि॥२२॥

इति श्रीसत्योपाख्याने सूतशौनकसंवादे चतुषष्टितमोध्यायः।६४।



पञ्चषष्टितमोऽध्याय:

श्रीसूत उवाच-

अयोध्यापुरवासिन्यो दर्शनार्थं समाययु:।
तरुण्य: कन्यका: वृद्धा: पुरंध्र्यश्च पतिव्रता:॥१॥

दर्शनाय वधूनां च रामदीनां च ता: पुन:।
कौशल्यां च सुमित्रां च कैकेयीं च तथापरा:॥२॥

प्रणम्य प्राङ्गणे तस्थु: राज्ञीभिस्तास्तु सत्कृता:।
जानकीं माण्डवी चैव श्रुतकीर्तिं तथोर्मिलाम्॥३॥

दृष्ट्वा दृष्ट्वा पुनर्दृष्ट्वा ह्यानन्दं लेभिरे मुहु:।
राजलक्षणसंयुक्ता: वध्व: सर्वा: विलोकिता:॥४॥

धन्यो वै जनको राजा पुत्र्यो यस्य वरानना:।
सुभगा: सन्तु सर्वा: हि पतिवश्या: भवन्त्विमा:॥५॥

इत्युक्त्वा तु करे तासां रत्नानि प्रददु: स्त्रिय:।
कौशल्यापि[१] पुनस्ताभ्यो वस्त्ररत्नहिरण्यकम्॥६॥

पुत्राणां च विवाहेषु प्रीतिदानं ददौ मुदा।
गृहाणि ता: पुनर्जग्मुर्भुक्त्वान्नममृतोपमम्॥७॥

व्यतीताय महान् कालो मङ्गलेनैव शौनक:।

श्रीशौनक उवाच-

कथेयं महतीरम्या रामस्य परमाद्भुता[२]॥८॥

न तोषयेन्मन: कस्य श्रुत्वा येन शिवप्रिया।
विजहार कथं रामो जानक्या: सहितो हरि:॥९॥

---

१. कौशल्यादि -क

२. रमाद्भुता -क

भ्रातरस्ते कथं तस्मिन् वर्तेरन् वशवर्त्तिनः।
कथं दशरथः प्रीतः पुत्रानुद्वाह्य[1] राजराट्॥१०॥

ब्रूहि सूत महाभाग रघूनां चरितं त्विदम्।
श्रीसूत उवाच-
एकदा रामचन्द्रस्तु राजराजेश्वरात्मजः॥११॥

सीतया सह प्रासादमारुरोह मुदान्वितः।
पर्यङ्के तु महादिव्ये मुक्तादामपरिच्छदे॥१२॥

पयः फेणमयः[2] शुभ्रे निषसाद तया सह।
वीजयामास रामं सा चामरेण शुचिस्मिता॥१३॥

ताम्बूलं खादयामास पूंगीफलयुतं तदा।
उवाचात्मधवं[3] सीता गवाक्षात् पश्यती पुरीम्॥१४॥
श्रीसीता उवाच-

अयोध्येयं पुरी रम्या नानावृक्षैश्च शोभिता।
सरयू दृश्यते यत्र वैकुण्ठे विरजा यथा॥१५॥

वैकुण्ठाख्यमिदं क्षेत्रं कोटिपुण्यैश्च लभ्यते।
भवान्नारायणो देवो लक्ष्मी चाहं प्रिया तव॥१६॥

अत्रं वासाद् विजानीमो वैकुण्ठाख्या पुरी त्वियम्।
इत्येवं ब्रुवती सीता सूर्यश्चास्तगिरिं ययौ॥१७॥

प्रवृत्ता रजनी शुक्ला क्षणदा सर्वदेहिनाम्।
राम सीतामुवाचाथ दृष्ट्वा चन्द्रनिभाननाम्॥१८॥
श्रीराम उवाच-

सीते विलोक्यतां चन्द्रः प्राचीभागे मनोरमः।
उदेति सर्वलोकानां तापनाशाय सुन्दरी॥१९॥

वृन्दं कुमुदनीनां तु स्फोटयन् परितः प्रिये।
इत्युक्त्वा जानकीं राम आलिलिङ्ग प्रियां निजाम्॥२०॥

---

१. पुत्रां तूद्वाह्य -क

२. फेणामयः -क

३. उवाच माधवं -क

तयोर्भोगेन सञ्जातं[1] जगदेतच्चराचरम्।
पुनः प्रोवाच सीतां सः स्तुवन् वाक्यैः मुहुर्मुहुः॥२१॥

वदनं चन्द्रतो रम्यं सीते पश्यामि सुन्दरम्।
विलोक्य मुखचन्द्रं तु चन्द्रोऽयं तु नभो[2] गतः॥२२॥

मृगाः सर्वे वनं जग्मुः दृष्ट्वा नेत्रद्वयं तव।
कटिं दृष्ट्वा च ते सिंहाः भजन्ति गिरिगह्वरं[3]॥२३॥

गमनं ते न सम्प्राप्य मतङ्गाः दिग्गजाः भवन्।
पङ्कजानि जलं जग्मुर्नेत्रशोभां न लेभिरे॥२४॥

विलोक्य भुजगाः वेणीं जुगुपुर्देहं विले विले।
स्वर्णं ददाह चात्मानमग्नेर्देहं विलोक्यते॥२५॥

सतामिदं प्रिये योग्यं दूरे वासः पराजये।
इति श्रुत्वा शुभं वाक्यं रामवक्त्रात् समीरितम्॥२६॥

सस्मिता वीक्षती राममपाङ्गैश्चात्मवल्लभम्।

श्रीजानकी उवाच-

अहं दासी[4] महाराज यथेच्छसि तथा वद॥२७॥

परन्तु सुन्दरी सा हि पत्युराज्ञाकरी[5] च या।
पतिः वशे भवेद् यस्याः पतिवश्या च या भवेत्॥२८।

उभौ च सुखं[6]मेधेते एवं जानीहि भो प्रिय।

श्रीसूत उवाच-

भेजाते शयनं तौ च पर्यङ्के निजवेश्मनि॥२९॥

अरुणोदयवेलायां जहौ निद्रां च राघवः।
उत्थाय चाह्निकं कृत्वा जगाम पितुरन्तिके॥३०॥

तं प्रणम्य यथान्यायं राजकार्यं चकार ह।
तथैव जानकी देवी स्नाता हुतहुताशना॥३१॥

---

१ संयातं -क
२. तन्नभो -क
३. गिरिगह्वरे -क
४. वासी -क
५. पत्युराज्ञी करी -क
६. मुख -क

पूजनार्थं तु श्वश्रूणां जगाम गजगामिनी[1]।
श्वश्रूजनं सम्पूज्य कौशल्यानिकटे पुनः॥३२॥
प्रविवेशालिभिः[2] साकं सेवायै च सदोन्मुखी।
तस्याःप्राणसमा सा हि जनकस्य सुता सती॥३३॥

इति सत्योपाख्याने सूतशौनकसंवादे
पञ्चषष्टितमोऽध्यायः



१. जगामिनी -क
२. वेवेश सालिभिः -ग

षट्षष्टितमोऽध्यायः

श्रीसूत उवाच–

माता प्रोवाच रामस्य सीतां परमहर्षिता।
पाकं विधाय भो देवीः पुत्रैः सह नराधिपम्॥१॥

वसिष्ठं वामदेवं च जाबालमथकाश्यपम्।
अन्यान् विप्रवरांश्चैव भोजय त्वं वरानने॥२॥

तस्याः वाक्यं समाकर्ण्य सीता सर्वाङ्गशोभना।
भगिनीभिस्तदा सार्द्धं चक्रे पाकं चतुर्विधम्॥३॥

निवेद्य हरये चान्नं विधिपूर्वं तु जानकी।
आकारितास्तु गुरवः राजा पुत्रैः समन्वितः॥४॥

भोजनार्थं तु त सर्वे पाकशालां समाययुः।
हस्तौ पादौ च प्रक्षाल्य तस्युः पङ्क्तिं विधाय च॥५।

संगोप्य वदनं सीतां वस्त्रेणैव तथा तनुम्।
स्वर्णपात्रे विधायान्नं वसिष्ठाय ददौ ह्रिया॥६॥

तथैव विप्रवर्येभ्यो भूपाय च तदा ददौ।
ततश्च ह्रीमती बाला रामाय भरताय च॥७॥

लक्ष्मणाय तदा सुभ्रुः शत्रुघ्नाय तथैव सा।
अन्यानपि यथान्यायं प्रीत्या चान्नं न्यवेदयत्[१]॥८॥

गुरुणा प्रेरितो राजा सीतायै प्रददौ मणिम्।
इन्द्रेणैव पुरा दत्तौ यज्ञे वै चाश्वमेधके॥९॥

सैव चूडामणिर्ज्ञेयः सर्वलोकोषु विश्रुतः।
तं मणिं जानकी लब्ध्वा सुस्मिताभूद् वरानना॥१०॥

---

१. निवेदयत् –क

तदा तु भोजनं चक्रुः वसिष्ठाद्यास्तु राघवाः।
तदन्नं परमं स्वादुं रसैः षड्भिः समन्वितम्॥११॥

भुक्त्वा पीत्वा च पानीयं विविशुस्ते सभां शुभाम्[१]।
पुनस्तु भोजिताः श्वश्रूः[२] दास्यो दासाश्च सीतया॥१२।

प्रीताः सर्वे जनाः तस्यै मङ्गलानि प्रचक्रिरे।
स्वयं तु बुभुजे सीता भगिनीभिः समन्विता॥१३॥

सीतायाः पाकसदनं सदा पूर्णं विराजते।
प्रत्यहं पश्यतो गेहे ह्यन्नपूर्णा विराजते॥१४॥

यत्र सीता स्वयं लक्ष्मीः सिद्धयः सन्ति सर्वदा।
विलीयन्ते च पापानि दर्शनात् पाकसद्मनः॥१५॥

इति श्रीसत्योपाख्याने सूतशौनकसंवादे
षट्षष्टितमोऽध्यायः।६६।



१. सभासदि -क
२. भोजिताश्च श्री -क

सप्तषष्टितमोऽध्यायः

श्री शौनक उवाच-

सूत जीव चिरं साधो वदतो[१] वदतां वरः।
रामभद्रकथां पुण्यां श्रवणान्मुक्तिदायिनी॥१॥

श्रीसूत उवाच-

एकदा जानकी देवी रामं वचनमब्रवीत्।
सरव्यारुत्तरेतीरे विहाराय व्रज प्रिय॥२॥

भ्रातृभिः सखिभिः सार्द्धमहं चापि सखीजनैः।
गमिष्यामि महाभाग भगिनीभिः समन्विता॥३॥

श्रीसूत उवाच-

जानक्याः वचनं श्रुत्वा तथास्त्विति च राघवः।
प्रणम्य पितरं रामो वचनं चेदमब्रवीत्॥४॥

श्रीराम उवाच-

विवाहे ये जनाः राजन्नागताः मैथिलोद्भवाः।
दासाः दास्यस्तदा वध्वः प्रार्थयन्ति च मां सदा॥५॥

अयोध्यापरितो यानि तीर्थानि सकलानि च।
तास्तु मनो हि मे देव व्रजामस्तत्र राघवः॥६॥

श्रीसूत उवाच-

वाक्यं श्रुत्वा तु रामस्य ददावाज्ञां तदा नृपः।
द्वारपालान् समाहूय रामो वचनमब्रवीत्॥७॥

लक्ष्मणाय तदानुज्ञां भरताय तथैव च।
शुत्रघ्नाय तदा[२] वीरो नागरेभ्यस्तथैव च॥८॥

---

१. वदनो -ग

२. पुनर् -ग

सैनिकेभ्यो चान्येभ्यो रामश्चाज्ञां समादिशत्।
ते दूतास्त्वरितं गत्वा तेभ्यो वचनमब्रुवन्॥९॥

गम्यतां तीर्थयात्रार्थं कुमाराः यान्ति भार्यया।
इति श्रुत्वा वचस्तेषां गृहात् सर्वे विनिर्गताः॥१०॥

कोलाहलो महानासीत् सर्वेषां पुरवासिनाम्।
रामो गजेन्द्रमारुह्य सरयूतीरमाययुः[1]॥११॥

तथा ते भ्रातरः[2] सर्वे स्वं स्वं वाहमवस्थिताः।
जानकी शिविकारूढा माण्डव्यादिभिरन्विता॥१२॥

स्त्रियो बालास्तथा वृद्धाः नराः नार्य्यः सहस्त्रशः।
सरयूतीरमासाद्य हर्षेण परिपूरिताः॥१३॥

आज्ञया रामचन्द्रस्य नावाः सर्वाः समागताः।
धीवरैः[3] वाह्यमानास्तु धीवरीभिः समन्ततः॥१४॥

वाद्यन्ते तत्र वाद्यानि वाद्यकैस्तत्रभूषितैः।
आरुह्य नावस्ते सर्वे नद्याः पारं[4] ययुस्तदा॥१५॥

अश्वाः गजास्तथा उष्ट्राः[5] नरनार्यस्तु भूरिशः।
महापोते तदा रामः सीतया सह तस्थिवान्॥१६॥

पोते पोते स्वया पत्न्या भ्रातरस्तु तदारुहन्।
वाह्यमानासु नौकासु धीवरीभिः समन्ततः॥१७॥

उवाच लक्ष्मणो भार्य्यामुर्मिलां च शुभाननाम्।

श्रीलक्ष्मण उवाच-

इदं सहस्त्रधारेति ख्यातं तीर्थं वरानने॥१८॥

पश्चिमे राजतीर्थं तु तन्मध्ये पापमोचनम्।
पूर्वतः स्वर्गद्वारं च नानातीर्थोत्तमोत्तमम्॥१९॥

सुस्नानार्थमहं भद्रे आगच्छामि सदा प्रिये।
शेषरूपोऽहमत्रैव वसामि सरयूजले॥२०॥

---

१. मायर्यौ -ग

२. मातरः -क

३. पतमकिन्यस्तु ता नवो घण्टास्वनसमन्विता। नानाजीवमुखा तास्तु रक्तकम्बलछादिताः। अयं श्लोकः ग -मातृकायां प्राप्यते।

४. नद्यापरं -क ५. उक्षणः -ग

शेषयात्रा सदा कार्या वर्षे वर्षे नरैः सदा।
पूजनीयोहमत्रैव त्वया सार्द्धं मनीषिभिः॥२१॥

दानानि विविधानीह कर्तव्यानि सदैव हि।
शुक्ले श्रावणपञ्चम्यां वैशाखे च सदैव हि॥२२॥

नाम्नां ममैव ख्यातिं च लोके तीर्थं गमिष्यति।
इत्येवं कथयन् वीरस्तरण्या[1] राघवानुजः॥२३॥

सरव्यास्तु परे पारे जगाम प्रियया सह।
स्वर्गद्वारस्य माहात्म्यं रामचन्द्रस्तु जानकीम्॥२४॥

श्रावयामास धर्मात्मा वल्लभां चात्मनः प्रियाम्।

श्रीराम उवाच-

स्वर्गद्वारमिदं तीर्थं सर्वतीर्थाधिकं भुवि॥२५॥

स्वर्गद्वारसमं तीर्थं नास्ति ब्रह्माण्डगोलके।
दशकोटिसहस्राणि दशकोटिशतानि च॥२६॥

स्नानार्थं च समायान्ति देवाश्च[2] स्त्रीगणैः सह।
ऋषयो नागयज्ञाश्च गुह्यकाः पन्नगास्तथा॥२७॥

नानामूर्तिधराः सर्वे स्नानं कुर्वन्ति मुक्तये।
स्नातव्यं च वयस्याभिस्त्वया[3] मया च जानकी॥२८॥

धर्मावाप्तिं प्रपश्यामि पुर्य्याः वासे त्विदं फलम्।
इत्येवं कथयामास माहात्म्यं सरयूभवम्।
सरव्या चोत्तरे तीरे लग्नाः नावः सहस्रशः॥२९॥

इति श्रीसत्योपाख्याने सूतशौनकसंवादे
सप्तषष्टितमोऽध्यायः।६७।



१. तरुण्यां -क
२. देवास्व -ग
३. चैव यस्यां हि स्त्वया -क

अष्टषष्टितमोऽध्यायः

श्रीसूत उवाच-

नौकाभ्यस्ते समुत्तीर्य वाहनारुरुहुः पुनः।
जगाम सेनया रामो महत्या चतुरङ्गया॥१॥

यत्र यास्ते महादेवः पार्वत्या सह नित्यदा।
यत्र चास्ते सरो रम्यं पार्वती चेति विश्रुतम्॥२॥

पुण्डरीकैः सिताम्भोजैस्तथा रक्तसरोरुहैः।
कमलैः शतपत्रैश्च कुमुदैश्चापि मण्डितम्॥३॥

जलकुक्कुटकोयष्टिसारसैश्चापि[1] नादितम्।
जलजन्तुसमाकीर्णं पक्षिभिश्चापि नादितम्॥४॥

तदाश्रमं समालोक्य सुमन्त्रो राममब्रवीत्।

श्रीसुमन्त्र उवाच-

अत्रैव स्थीयतां राजन् सैनिकाः श्रमिताः[2] वयः॥५॥

फेणान् मुञ्चन्ति वाहाश्च सूर्यरश्मिप्रपीडिताः।
सूर्यो मध्यदिनं प्राप्तो वासमत्रैव क्रीयताम्॥६॥

देवखातमिदं रम्यं स्नानाद् बहुफलप्रदम्।
तच्छ्रुत्वा राघवः श्रीमान् स्थीयतामिति चाब्रवीत्॥७॥

तदा सर्वे जनास्तस्थुः रामचन्द्रस्य चाज्ञया।
द्रुमाणां चैव छायासु जनाः सर्वे विसश्रमुः[3]॥८॥

रामस्य च महादीर्घं पटवेश्म विराजते।
सौमित्रेर्भरतस्यापि[4] पटवेश्म मनोहरम्॥९॥

---

१. जलकुक्कुटयोषष्टी -क
२. श्रमितं -क
३. विसुश्रुमः -क
४. भर्न्ता तस्यापि -क

रेजिरे पटवेश्मानि तथैव पुरवासिनाम्।
दीर्घाभिः प्रतिसीराभिर्वितानैश्च समन्ततः॥१०॥

राघवानां स्त्रियस्तस्थुः[१] सखिभिः परिवारिताः।
परितः पटवेश्मानां पङ्क्तयो[२] बहुधा स्थिता॥११॥

मातङ्गास्तुरगाश्चैव वृषा उष्ट्राश्च गर्दभाः।
शृङ्खलैः परितो बद्धाः[३] राजन्ते तत्र भूरिशः॥१२॥

ध्वजाश्च विविधाकाराः पटवस्त्रैश्च शोभिताः।
हट्टाः वणिकजनानां तु नानावस्तुभिः पूरिताः॥१३॥

क्रयं च विक्रयं चक्रुः तदा सैन्याः सहस्रशः।
वृन्दानि किल वेश्यानां यत्र तत्र विरेजिरे॥१४॥

तडागे पार्वतीये च सस्नुः सर्वे च नागराः।
कुमाराः रामचन्द्राद्याः जानक्याद्याः पुरयोषितः[४]॥१५॥

कुड्यैस्तु[५] प्रतिसीराणां गोयितास्तु विजह्रिरे।
पुष्पाण्यादाय पद्मानामानर्चुश्च सदाशिवम्॥१६॥

पार्वतीसहितं तस्य चक्रुर्नीराजनं जनाः।
बुभुजुश्च जनाः सर्वे अन्नानि विविधानि च॥१७॥

रात्रौ जागरणं चक्रुर्नरा नार्यस्तथैव हि।
केचित् नृत्यन्ति गायन्ति वादयन्ति तथापरे॥१८॥

कथां शृण्वन्ति केचित्तु मिश्रितां हरिचर्यया।
अर्धरात्रे व्यतीते तु हरः साक्षाद् बभूव ह॥१९॥

पार्वत्या सहितो देवः गणैः सर्वैः समन्वितः।
उत्थाय पूजयामास शिवं रामस्तु सीतया॥२०॥

तथैव भ्रातरः सर्वे पत्नीभिः परिवारिताः।
महादेवो[६] ब्रवीद्रामं सर्वेषां चापि शृण्वताम्॥२१॥

---

१. स्तास्तु -क
२. पत्तयो -ग
३. पादाः -क
४. जानकया परयोषिता -क
५. कञ्जैस्तु -क
६. क-मातृकायां नास्ति

महादेव उवाच-

अहं पूजितो रामस्त्वया लोकहितैषिणा।
यद् यदाचरते श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरे जनाः॥२२॥

सः यत् प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्त्तते।
भवान्नारायणो देवः सीता लक्ष्मीस्त्वियं शुभा॥२३॥

जगतां तारणार्थाय युवां तु नररूपिणौ।
कीर्तिं वां पावनी लोके प्रसरिष्यति भूरिशः॥२४॥

श्रोष्यन्ति ये नराः नूनं वदिष्यन्ति सदैव ते[1]।
पारं ते च[2] गमिष्यन्ति भवाब्धेः प्रेमतत्पराः॥२५॥

श्रीरामेति च ते नाम देवानां सारमेव हि।
कथयिष्यन्ति ये नूनं मुक्तिं यास्यन्ति ये भुवि॥२६॥

श्रीराम तव नामेदं काश्यां दद्मि[3] सदैव हि।
येभ्यो ददामि ते मुक्ताः प्रयान्ति परमं पदम्॥२७॥

हे श्रीराम महाबाहो सीतया रमया सह।
मम हृत्कमले वासं कुरु दासोस्मि ते सदा॥२८॥

श्रीसूत उवाच-

इत्थमुक्त्वा च श्रीरामं रामेणैवाभिवादितः।
अन्तर्द्धानं ययौ देवः पार्वत्या च गणैः सह॥२९॥

आत्मनश्च[4] महद्भागं तदा मेने रघूत्तमः।
विस्मयं च तदा जग्मुः नराः नार्यः अनेकशः॥३०॥

श्रुत्वा रामं रमानाथं रमारूपां च जानकीम्।
भेजिरे शयनं सर्वे तदा स्वप्नं च लेभिरे॥३१॥

परं ब्रह्म परं धाम जगतां कारणं परम्।
नागशय्याशयानं च द्विभुजं रघुनन्दनम्॥३२॥

---

१. हि -ग
२. तेन -क
३. दश्मि -ग
४. स्तु -ग

शिवब्रह्मादिभिर्देवैरनन्तगरुडादिभिः ।
स्तूयमानं जगन्नाथं सीतां चापि तथाविधाम्॥३३॥

चरणौ रामदेवस्य पाणिभ्यां मृदुमर्दतीम्।
ह्रीया कीर्त्या च सावित्र्या भुवा[१] रत्या तथोमया।३४॥

स्तूयमानां च वैकुण्ठे साकेताख्ये नदीतटे।
तत्रैव तु तदात्मानं ददृशुः पुरवासिनः॥३५॥

इति श्रीसत्योपाख्याने सूतशौनकसंवादे
अष्टषष्टितमोऽध्यायः।६८।



१. भुव -क

एकोनसप्ततितमोऽध्यायः

श्रीसूत उवाच-

अर्द्धयामावशिष्टायां रात्र्यां ते वाद्यवादकाः।
आनकान् वादयामासुर्गमनाय तदोत्तराम्॥१॥

तच्छ्रुत्वा विजहुः सर्वे निद्रां तन्द्रां च सैनिकाः।
अन्नानि वाहनेभ्यस्तु[1] ददुस्ते परिचारकाः[2]॥२॥

घटिकैकावशिष्टायां रात्र्यां वन्दिगणास्तदा।
उदारवचसः सर्वे रामस्य स्तुतिपाठकाः॥३॥

जानक्या सहितं रामं बोधयन्ति पुनः पुनः।
पीवरांशं महाबाहुं कुण्डलद्वयशोभितम्॥४॥

विरलं ह्यङ्गरागं च सुप्रतीके यतस्ततः।
मर्दनेन तु शय्यायाः कुसुमानां पुनः पुनः॥५॥

सुशोणनयनं[3] रामं निद्रया नेत्रलग्नया।

श्रीसीतालिकाः ऊचुः-

मुञ्च निद्रां महाराज गता रात्रिः विशां पते॥६॥

निद्रावशेन भो देव त्वया नैव विलोकिता।
सुता जनकराजस्य सखिभिः परिवारिता॥७॥

नीराजनाय भो देव मङ्गलाभिमुखी तव।
मुखचन्द्रं विलोक्याशुः चन्द्रो गच्छति म्लानताम्॥८॥

उन्मिषस्व महाराज नेत्रयुग्मेन भूरिदः।
नेत्रसाम्याय ते राम पद्मानि स्फुटितानि च॥९॥

---

१. लतानवाहितेभ्यस्तु -क
२. परिचारिकाः -क
३. सुशोभननयन -ग

भ्रमराः कलगानैश्च रमन्ते यत्र च।
सखिनां पुष्पजालानि वायुनानि पतन्ति च॥१०॥

तारका इव नेत्राणां पद्मे पद्मे भ्रमन्ति च।
पुष्पैः[1] सम्मिश्रितो वायुः मुखश्वासं समीहते[2]ः॥११॥

हिमाम्भः पल्लवाग्रेषु पतन्ति[3] मौक्तिकैः समम्।
ओष्ठद्वये[4] तु नारीणां नासायां मौक्तिकं यथा॥१२॥

न यावदुदयं प्राप्य तमो हन्ति च भानुमान्।
तावदेवारुणेनैव तमो नीतं च दूरतः॥१३॥

युद्धाय ते पिता यावन्नायाति राघवो यथा।
तावत् त्वया क्षयं नीतं वैरिणां च बलं शरैः॥१४॥

वीतनिद्राः मतङ्गास्ते मत्ताः कर्षन्ति शृङ्खलाम्।
दन्तेषु येषां सूर्यस्य रक्ताः राजन्ति रश्मयः॥१५॥

अश्वाः कुर्वन्ति ह्रेषां वै[5] लेह्यार्थं पटवेश्मनि।
म्लानाः पुष्पोपहारास्ते शय्यायां रामनिर्मिताः॥१६॥

न प्रसर्पन्ति दीपानां रश्मयः परितः प्रभो।
पञ्जरस्थाः शुकास्ते च प्रबोधाय पठन्त्यमी॥१७॥

श्रीसूत उवाच-

वन्दिपुत्रौ कुमारास्ते त्यक्तनिद्रास्तदाभवत्।
कृत्वा चाह्निककर्माणि भूषिताः वस्त्रभूषणैः॥१८॥

यथोचितं तु[6] ते सर्वे वाहनारुरुहुः पुनः।
शिविकासु च सीताद्याः अवरोह्याः[7] रथेषु च॥१९॥

शंखदुन्दुभिनादोभूत् प्रयाणे[8] राघवस्य च।
मत्स्यध्वजैः गजाः सर्वैः प्रयाताः उत्तरां दिशम्॥२०॥

---

१. भ्रमराः कलगानैश्च रमन्ते यत्र तत्र च॥१०।
सखिनां पुष्पजालानि वायुनाानि पतन्ति च।
श्लोकोऽयं ग-मातृकायां प्राप्यते।

२. समाहितः -क ३. पतितं -ग

४. द्वयये -ग ५. ते -क

६. इत्याचिंतति -क ७. अवरोधा -ग

८. प्रियाने -क

तेषां पश्चाद्ययुः[1] सर्वे सैनिकास्ते प्रहर्षिताः।
शत्रुंजयगजे[2] रामो राजमानो यथा रविः॥२१॥

बन्धुना लक्ष्मणेनैव चामरेण सुशोभितः।

सुमन्त्र उवाच[3]-

हस्तियंत्ता सुमन्त्रस्तु रामं वचनमब्रवीत्॥२२॥

इयं पृथ्वी महाराज धनधान्यवती सदा।
अदैवमात्रको[4] रम्यो देशोऽयं प्रतिभाति मे॥२३॥

अत्रत्याश्च जनाः सर्वे धर्मशीलाश्च साधवः।
शालितण्डुलसम्पूर्णाः गोधूमेन तथैव च॥२४॥

क्षेत्राणि शस्य[5]पूर्णानि फलैः पूर्णाश्च शाखिनः।
वायुकोणे च गोशाला राज्ञो दशरथस्य च[6]॥२५॥

उत्तरे पर्वतो रम्यो नानाधातुविचित्रितः।
नद्यश्च विविधाः सन्ति पार्वतीयाः अघापहाः॥२६॥

वनानि रमणीयानि फलपुष्पयुतानि च।
इत्थं शृण्वन् तदा रामः प्राप दिव्यां मनोरमाम्[7]॥२७॥

दृष्ट्वा मनोरमां रामः प्रणाममकरोद् विभुः।
बलं निवेशयामास नद्यास्तीरे मनोरमे॥२८॥

पटवेश्मानि राजन्ते नद्यास्तीरे सहस्रशः।
सखीगणैस्तदा सीता स्नातुं प्राप्ता मनोरमाम्॥२९॥

मध्ये तु प्रतिसीराणां चिक्रीडे जनकात्मजा।
रामेण सह पद्माक्षी विजहार नदीजले॥३०॥

दृतिभिः षिच्यमानौ तौ यथैव रतिमन्मथौ।
सुशोणानयनाः सख्यो रामः सीता तथैव च॥३१॥

---

१. पश्चादियु -क
२. शत्रुंजये गजे -ग
३. क-मातृकायां नास्ति
४. अत्येव -क
५. तस्य -क
६. क-मातृकायां नास्ति
७. प्रोदिव्यां मनोरयाम् -क

स्मयित्वा[1] च तदा रामः जानकीं वचनमब्रवीत्।
मनोरमा यथा त्वं हि तथेयं मे मनोरमा॥३२॥

स्थानादुद्दालकस्यैव जातेयं परमाद्भुता।
मखस्थानं समावेष्ट्य सरव्या सङ्गमं गता॥३३॥

अस्याश्च[2] स्नानमात्रेण पुण्यवृद्धिश्च च जायते।
नद्यास्तीरं पुनर्गत्वा वस्त्राण्याधाय राघवः॥३४॥

ददौ दानं द्विजातिभ्यः भोजयित्वा यथाविधिः।
स्वयं तु बुभुजे रामः सैन्यैः सह महामनाः॥३५॥

यामे चतुर्थके रामः सीतां प्राह स्मयन्निव।
एतच्छालवनं रम्यं नानापुष्पैरलङ्कृतम्॥३६॥

पुष्पावचनयनं कर्तुं गच्छन्ति पुरवासिनः।
मया सार्द्धं त्वं मय्येव सखिभिः परिवारिता[3]॥३७॥

भरतो लक्ष्मणश्चैव शत्रुहा राघवास्तथा।
गच्छतु ते विहाराय स्वैः दारैः समन्विता॥३८॥

इति श्रीसत्योपाख्याने सूतशौनकसंवादे
एकोनसप्ततितमोऽध्यायः॥



---

१. सस्मयित्वा -ग

२. अस्याः वै -ग

३. श्लोकोऽयं क-मातृकायां नास्ति।

सप्ततितमोऽध्यायः

श्रीराम उवाच-

वनं विशोधितं सर्वं गुहेन सखिना मम।
दासैः पलायिता: जीवाः ढक्कानादेन सर्वतः॥१॥

इत्युक्त्वा राघवो रामः प्रस्थितः सीतया सह।
ते च सर्वे वनं जग्मुः विस्तरेण यतस्ततः॥२॥

षडेव ऋतवः प्रापुर्विहारार्थं[1] तु कानने[2]।
फलपुष्पदलैर्युक्तास्तारवस्तत्र तेऽभवन्॥३॥

अङ्गनाः समयं प्राप्य कर्षेभ्य इव मानसम्।
राघवानां पदं चक्रुर्मार्गतास्तु पुरोगताः॥४॥

काचिच्छीघ्रं प्रयाति स्म काचिन्मन्दं प्रगच्छति।
नूपुराणि प्रकर्षन्ती वादयन्ती च मेखलाम्॥५॥

मुखे स्वेदलवाः जाताः भारेण कुचयोर्द्वयो।
लज्जिता माण्डवी देवी मनस्येवं विचार्य च॥६॥

रामस्याग्रे कथं पुष्पं विचिनोमि यतस्ततः।
पश्चाद् दूरे ययौ मन्दं भरतेन सह भामिनी[3]॥७॥

लज्जया भरतस्यैव चोर्मिला पतिना सह।
ययौ वनान्तरं साध्वी सखिभिः परिवारिता॥८॥

लज्जया लक्ष्मणस्यैव श्रुतकीर्त्तिः वनान्तरम्।
पतिना च वयस्याभिः जगाम गजगामिनी॥९॥

विविशुस्ते वनं सर्वे नराः नार्य्यः सहस्त्रशः।

---

१. विंस्तारार्थं -क

२. कानने -क

३. भाविनी -क

श्रीसूत उवाच-

तदानीं सुभगा प्राह रामं राजीवलोचनम्॥१०॥

वीटकं खादयन्ती सा जानकीमनुगच्छती।
रामचन्द्र महाबाहो मा शीघ्रं गम्यतां त्वया॥११॥

अनुयान्तीं प्रियां पश्य हंसिनी[१] मिवगच्छतीम्[२]।
तस्याः वाक्यं समाकर्ण्य रामस्तु सस्मिताननः॥१२॥

बाहुं भुजङ्गभोगाभं प्रियाकण्ठे निधाय च।
जगाम दर्शयन् शोभां वन्यां बहुविधां तदा॥१३॥

वने गत्वा बदा सख्यः पुष्पाण्यानीय यत्नतः।
मालां कृत्वा तु रामाय प्रददुस्ताः वरस्त्रियः॥१४॥

धृत्वा कण्ठे तदा रामो मालां पुष्पमयीं शुभाम्।
तेभ्यो यच्छति सुप्रीतः मुदे तासां महामनाः॥१५॥

विना सूत्रेण मालां तु स्वयं कृत्वा तु राघवः।
सुस्मयन्तीं प्रियां प्राह गृह्यतामिति सादरम्॥१६॥

मालां पुष्पमयीं रम्यां सीता कण्ठे निधाय च।
कर्णयोः कर्णपुष्पं च रचयामास पाणिना॥१७॥

सा स्मयन्ती[३] तदा प्राह रामं मधुरभाषिणी।

श्रीसीता उवाच-

कर्णौ मे भूषितौ राजन् गुणरत्नैस्तवैव[४] च॥१८॥

तस्यैव भूषितौ कर्णौ यः शृणोति कथां तव।
इत्याभाष्य स्वयं सीता पुष्पाण्यानेतुं गता॥१९॥

जानक्याः मुखपद्मस्य गन्धमाघ्राय षट्पदः।
पुष्पाणि तु परित्यज्य ह्युड्डीनो[५] जानकीं प्रति॥२०॥

आयततन्तु तं दृष्ट्वा गुंकारेणाभिसन्मुखम्।
विधुन्वन्ती[६] करं सा च तदा दुद्राव राघवम्॥२१॥

---

१. गंच्छती -क
२. गच्छति -ग
३. स्मयन्ती सा-ग
४. स्तथैव -क
५. ह्यज्जीनो -क
६. विध्वन्वन्ति -क

सखेलं वादयन्ती च नूपुरानि पदे स्वके।
रामस्याङ्के तदा बाला ह्यापपात ससंभ्रमा॥२२॥

कुचद्वयेन रामस्य हृदयं स्पृशतीव सा।
कण्ठे लग्ना तदाभाति तमाले स्वर्णवल्लरी॥२३॥

प्रहसन् राघवः प्राह प्रियां प्रीतिपरायणाम्।
महत् सुखं त्वया दत्तं स्वयमालिङ्गनेन मे॥२४॥

सुस्मिता जानकी देवी वाक्यं पत्युर्निशम्य च।
तदा तु जानकी देवी पत्युरङ्गं च[1] सर्वशः॥२५॥

पुष्पैर्विभूषयामास स्मयन्ती सा सुलोचना।
एवं विहरतां तेषां राघवानां महात्मनां॥२६॥

सूर्यश्चास्तगिरिं प्राप्तः शिविराय[2] तदा ययुः।
रामादयः कुमारास्ते सीताद्यास्तु वरः स्त्रियः[3]॥२७॥

कृत्वा तु पश्चिमां सन्ध्यां शय्यायां पटवेश्मसु।
शयनं भेजिरे सर्वे नद्यास्तीरे मनोरमे॥२८॥
सुखेन सा गता रात्री राघवानां महात्मनाम्॥२९॥

श्रीसत्योपाख्याने सूतशौनकसंवादे
सप्ततितमोऽध्यायः।७०।



१. पत्युरङ्गानि -ग
२. शिव राम -क
३. श्रियः -क

एकसप्ततितमोऽध्यायः

श्रीसूत उवाच-

वादेन दुन्दुभीनां तु चोत्थिताः सकलाः जनाः।
कृत्वा चाह्निककर्माणि प्रतीक्षन्ते च राघवम्॥१॥

राघवो भ्रातृभिः सार्द्धं पूर्वां सन्ध्यामुपास्य वै।
आरुह्य गजराजं तु प्रयातो हि मखस्थलम्॥२॥

महत्या सेनया सार्द्धं सीतया सह वीर्यवान्।
तटे मनोरमायास्तु भूमिभागान् विलोकयन्॥३॥

ततो मध्याह्नवेलायां मखस्थानं समागतः।
समुत्तीर्य्य गजाद्रामो निवासमकरोद् बलैः॥४॥

तस्मिन् तीर्थे तदा स्नात्वा दत्वा दानानि भूरिशः।
वैष्णवाः न्यासिनश्चैव विप्राः वै ब्रह्मचारिणः॥५॥

भोजिताः परमान्नेन दक्षिणाश्च पुनर्ददौ।
उषित्वा तत्र शर्वरीं भुक्त्वा चान्नानि ते मुदा॥६॥

प्रातःकाले तदा रामो गमनाय मनो दधे।
चचाल सेना महती गजवाजि[१]रथैर्नरैः॥७॥

शिविकाश्चावरोधानां राघवानां मतङ्गजाः।
दक्षिणां दिशिमालोक्य प्रयाता महती चमू॥८॥

गच्छन् सरोवरं रम्यं ददर्श रघुनायकः।
पप्रच्छ मन्त्रिणां श्रेष्ठं सुमन्तं मन्त्रसत्तमम्॥९॥

देवखातमिदं रम्यं बहुपद्मैरलङ्कृतम्।
किं नामा च तडागोऽसौ मह्यं ब्रूहि महामते॥१०॥

---

१. गजवीज-क

श्रीसुमन्त्र उवाच-

अत्र उग्रतपा नाम ब्राह्मणो धर्मवित्तमः।
तपस्तेपे महाराज स्वर्गाय गमनं प्रति॥११॥

तपसस्तु विनाशाय रूपयौवनगर्विताः।
स्वर्वेश्याः प्रेषयामास पञ्चैव[1] अरिसूदन॥१२॥

समागतास्ततः सर्वा ऋषेराश्रममुत्तमम्।
आलिङ्गनं ददुस्तस्मै व्याकुलोऽभूद् ऋषिस्ततः॥१३॥

क्रोधेन महताविष्टः प्रत्युवाच वराङ्गनाः।
यूयं च बड्वा भूत्वा तडागे स्थी[2]यतामिह॥१४॥

पञ्चाश्वा च तडागोऽयं लोके ख्यातिः गमिष्यति।
यदा तु जानकी देवी रामपत्नी यशस्विनी॥१५॥

आगमिष्यति कालेन सह पत्या सखीजनैः।
दम्पतिसुन्दरौ दृष्ट्वा यूयं मुक्ताः भविष्यथ॥१६॥

तदा प्रभृति भो राम अश्वारूपाः वसन्ति ताः।
शापावमोचनं तासां कर्तव्यं करुणानिधे॥१७॥

इति श्रुत्वा तदा रामो दयावार्द्धि प्रियान्वितः।
निवासमकरोत् तत्र सीतया सह सेनया॥१८॥

सरोवरं तदा रम्यं वैदेह्या च सखीगणैः।
जगाम रमया[3] रामस्तटे तस्थौ तया सह॥१९॥

पञ्चैव बड्वास्तत्र प्रचरन्ति तृणान्यहो।
सीताकरं करेनैव गृहीत्वा वाक्यमब्रवीत्॥२०॥

श्रीराम उवाच-

पश्य प्रिये इमा देव्यः शापात् प्राप्ता इमां दशाम्।
त्वत्कटाक्षवशादेव प्रयान्तु त्रिदशालयम्॥२१॥

पतिना प्रार्थिता सीता चकार करुणां तदा।
सीता[4] कटाक्षमात्रेण अश्वारूपं विहाय च॥२२॥

---

१. बल-ग २. सूथी -क

३. रामया -क

४. 'सीता-महाबलः' पर्यन्तं श्लोकाः क-मातृकायां न प्राप्यन्ते।

सुन्दर्य्यस्ता पुनर्भूत्वा प्रणेमुस्तास्तयोः पदौ।
स्तुवांसं पूज्य विधिवत् विमानान्यारुरुहुः पुनः॥२३॥

पश्यतां सर्वलोकानां ययुः स्वर्गं वराङ्गणाः।
तडागस्तद्दिनात् तीर्थं बभूव पृथिवीतले॥२४॥

तत्र स्नानेन दानेन शापदोषैः प्रमुच्यते।
तदैव प्रार्थयामास पतिं सीता सुलोचना॥२५॥

अत्रत्यानां गवां नाथ महिर्षीणां तथैव च।
जलपानाय जीवानां कुल्या वै क्रियतां त्वया॥२६॥

तदा रामः समुत्थाय धनुष्कोट्या चकार ताम्।
नाम्ना लोके च विख्याता रामरेखा प्रकीर्तिता॥२७॥

यत्र स्नानेन दानेन पापहानिः प्रजायते।
तत्रैव न्यवसद् रामः शर्वरीं तां महाबलः॥२८॥

इति श्रीसत्योपाख्याने सूतशौनकसंवादे
एकसप्ततितमोऽध्यायः।



द्विसप्ततितमोऽध्यायः

श्रीसूत उवाच-

[1]उषित्वा शर्वरीं तत्र गमनाय मनो दधे।
महत्या सेनयाः सार्द्धं जगाम रघुनायकः॥१॥

सरयूं ते पुनस्तीर्त्वा नौकाभिश्च समन्ततः।
निवासमकरोत् तत्र यत्र बिल्वहरिः स्वयम्॥२॥

तत्रैव ग्रामवध्वश्च द्रष्टुं[2] सीतां समागताः।
नानावस्तून्युपादाय तथा मङ्गलपाणयः॥३॥

पूजां समर्पयामासुः जानक्याः पादपद्मयोः।
प्रणम्य चरणौ तस्याः तस्थुस्ताः पटवेश्मनि।
स्थित्वा तस्याः समीपे तु सुषमां[3] च ययुर्मुदा॥४॥

पश्यन्ति जानकीं सर्वाः भूदेव्याश्च सुतां शुभाम्।
गौरीं कनकवर्णाभां स्वर्णकौशेयशोभिनीम्॥५॥

चन्द्राननां चन्द्रप्रभां रामस्य महिषीं प्रियाम्।
चूडामणिं शिरोमध्ये धारयन्तीं वराननाम्॥६॥

नासायां मौक्तिकं रम्यं स्वर्णसूत्रेण निर्मितम्।
बिभ्राणां सुन्दरीं सीतां दिव्यां पङ्कजलोचनाम्॥७॥

कामचापनिभेनैव भ्रूयुग्मेन विराजतीम्।
कर्णयोर्मणिमुक्तानां ताटंकद्वयशोभिनीम्॥८॥

नीलनागाभया वेण्या मुक्तारत्नविचित्रया।
पुष्पैः सवलया रम्या पृष्ठभागे[4] मनोरमाम्॥९॥

---

१. १, २ श्लोकौः क-मातृकायां न वर्तेते।

२. दृष्टं -क

३. सषुनां -क, सुषुमां -ग

४. पृष्ठि -ग

दन्तैः छविं च मुष्णन्तीं बीजानां दाडिमस्य च।
ओष्ठद्वयेन गृह्णान्तीं बन्धूकस्य च रक्तताम्॥१०॥

स्वर्णादीनां मणीनां तु मालां कण्ठे च बिभ्रतीम्।
नक्षत्रमालां बिभ्राणां कञ्चुकीं स्वर्णनिर्मिताम्॥११॥

पीनस्तनतटामुच्चैः शाटीप्रान्तेन गोपतीम्।
तथैव भुजयोर्युग्मं कञ्चुक्या ह्यङ्गदेन च॥१२॥

प्रकोष्ठे वलयेनैव तथैव करमुद्रिकाम्।
नाभीह्रदं च गभीरं जघनं च मनोहरम्॥१३॥

नितम्बो परिराजन्तीं मेखलां स्वर्णनिर्मिताम्।
उरुद्वयेन रम्येण रम्भास्तम्भेन निर्मिताम्॥१४॥

पादयोः पादकटकं बिभ्राणां हंसकं तथा।
एवंभूतां च तां दृष्ट्वा राजलक्षणलक्षिताम्॥१५॥

सत्या[१]मयोनिजां सीतामिन्दिरां मेनिरे स्त्रियः।
प्रणेमुः पादपद्मे च भगिनीनां तथैव च॥१६॥

तासां मुखात्तु विज्ञाय नामगोत्रकुलादिकम्।
वार्त्तालापं तदा चक्रे सुशीली राघवप्रिया॥१७॥

ताभ्यो ददौ महाराज्ञी मण्डनानि तु भूरिशः।
भूरीणि च सुवस्त्राणि भूषणानि फलानि च।
मण्डनं तु तत् स्थानं लोके ख्यातं बभूव ह॥१८॥

श्रीसूत उवाच-

प्रदक्षिणीकृत्य[२] तां बालां प्रणम्य च पुनः पुनः।
ययुः सर्वाः गृहं तास्तु रामो रात्रिं निनाय च॥१९॥

स्नात्वा च सरयूतोये दत्त्वा दानानि भूरिशः।
नत्वा बिल्वहरेः पादौ सम्पूज्य विधिवत्तदा॥२०॥

जगाम नागरैः सार्धं नन्दिग्रामं तु राघवः।
मार्गे ग्रामाण्यनेकानि तथा तीर्थाण्यनेकशः॥२१॥

---

१. सत्य -क

२. दक्षिणीकृत्य -ग

पश्यन्नतियथौ श्रीमान् दत्त्वा स्नात्वा पुनः पुनः।
तसमासरयूमध्ये यत् किञ्चिद् विद्यते फलम्॥२२॥

तत्तोयं जाह्नवीतोयं सीतां प्राह रघूत्तमः।
पूर्वेषां च काकुत्स्थानां यज्ञयूपाननेकशः॥२३॥

प्रियायै दर्शयन् वीरो नन्दिग्रामे च तस्थिवान्।
तदा वै सैनिकाः सर्वे अन्नानि बुभुजुर्मुदा॥२४॥

नन्दिग्रामे महापुण्ये दर्शनात् पापनाशके।
जागरं[1] तत्र ते चक्रुर्गीतैर्नृत्यैः कथास्तवैः॥२५॥

माण्डवी भरतं प्राह भो स्वामिन् क्रियतां वचः।
अत्रैवं क्रियतां कुण्डं स्वनाम्ना चैव कीर्तये॥२६॥

तच्छ्रुत्वा भरतः श्रीमानाज्ञया राघवस्य च।
खनकैः खनायामास नाम्ना भरतकुण्डकम्॥२७॥

शोभितं जलकल्लोलैः पद्मैर्नानाविधैः शुभैः।
तथा पक्षिगणैः सर्वैश्चक्रवाकैरलङ्कृतम्॥२८॥

सीतारामौ च सम्पूज्य नानावस्त्रैश्च भूषणैः।
ब्रांह्मणाः भोजिता सर्वे वैष्णवाः न्यासिनस्तथा॥२९॥

पूजिताः दानमानाभ्यां तथा चान्ये समागताः।
तदाप्रभृत्य तत्तीर्थं लोके ख्यातं बभूव ह॥३०॥

यत्र स्नानेन दानेन सीता रामः प्रसीदति।
नन्दिग्रामद्दक्षिणे च गयाकूपात्तु चोत्तरे।
तीर्थं भरतकुण्डाख्यं राजते विमलप्रभम्॥३१॥

इति श्रीसत्योपाख्याने सूतशौनकसंवादे
द्विसप्ततितमोऽध्यायः।



---

१. जागरणं -ग

त्रिसप्ततितमोऽध्यायः

श्रीसूत उवाच-

तत्र स्नात्वा च दत्त्वा च राघवः सीतया सह।
प्रययौ सेनया सार्धं ततो रमणकं वनम्॥१॥

रमा सीता स्वयं यत्र रेमे रामेण सुन्दरी।
रमापाद इति ख्यातस्तत्र कश्चन् महामुनिः॥२॥

उवास जानकीं ध्यायन् जराजीर्णकलेवरः।
वासन्तिका सखी काचित् सीतायाश्च मनोहरा॥३॥

पुष्पाण्यानयितुं याता ददर्श मुनिपुङ्गवम्।
श्वेतैः शिरोरुहैर्युक्तं जराजीर्णकलेवरम्॥४॥

मनसा ध्यायमानं तु लक्ष्म्याः पादसरोरुहम्।
वासन्तिका च तं दृष्ट्वा प्रणम्य शिरसा पुनः॥५॥

आगत्य जानकीं प्राह दर्शनं क्रियतां मुनेः।
आलिभिः सह सोत्थाय रामेण रमणेन च[1]॥६॥

दर्शनार्थं ययौ सीता रमापादस्य वै मुनेः।

श्रीसूत उवाच-

नूपुराणां ध्वनिं श्रुत्वा नेत्रे चोन्मील्य योगिराट्॥७॥

ददर्शाग्रे महातेजा रामं नारायणं हरिम्।
सीतां लक्ष्मीं ततो दृष्ट्वा प्रणनाम मुनीश्वरः॥८॥

प्रणतः पूजितस्ताभ्यां सीतया राघवेन च।
तुष्टाव जानकीं देवीं प्रणम्य शिरसा मुनिः॥९॥

श्रीरमापाद उवाच[2]-

जय त्वं पद्मपत्राक्षि जय त्वं राघवप्रिये।
जय मातर्महालक्ष्मि संसारार्णवतारिणिः॥१०॥

---

१. रमणेनैव -क

२. रमापादा उवाच -ग

महादेवि नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं सुरेश्वरि।
रामप्रिये नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं दयानिधे॥११॥

पद्मालये नमस्तुभ्यं नमस्ते राघवप्रिये।
जगन्मातः नमस्तुभ्यं कृपावति नमोस्तु ते॥१२॥

दयावति नमस्तुभ्यं नमो विश्वेश्वरप्रिये।
नमः क्षीरार्णवसुते नमस्त्रैलोक्यधारिणि॥१३॥

विश्वेश्वरि नमस्तुभ्यं रक्ष मां शरणागतम्।
रक्ष त्वं देवदेवेशि देवदेवेशवल्लभे॥१४॥

दरिद्रं[1] त्राहि मां देवि कृपां कृत्वा ममोपरि।
नमस्त्रैलोक्यजननि नमस्त्रैलोक्यपावनि॥१५॥

ब्रह्मादयो नमन्ति त्वां जगदानन्ददायिनीम्।
रामप्रिये नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं जगद्धिते॥१६॥

आर्तिहरे नमस्तुभ्यं समृद्धिं कुरु ते नमः।
अब्जवासे नमस्तुभ्यं चपलायै नमो नमः॥१७॥

नमस्ते शीघ्रगामिन्यै चञ्चलायै नमो नमः।
परिपालय मां मातर्दासं त्वां[2] शरणागतम्॥१८॥

शरणं त्वां प्रपन्नोस्मि[3] कमले कमलानने।
त्राहि त्राहि महादेवि परित्राणपरायणे॥१९॥

किं बहूक्तेन भो सीते जल्पितेन[4] पुनः पुनः।
अन्यं मे शरणं नास्ति त्वमेव शरणं मम॥२०॥

श्रीसीता उवाच-

यत् त्वयोक्तमिदं[5] पुण्य ये पठिष्यन्ति मानवाः।
श्रोष्यन्ति ये महाभक्त्या तेषां दास्यामि सम्पदम्॥२१॥

यः पठेत् प्रातरुत्थाय श्रद्धाभक्तिसमन्वितः।
सुखसौभाग्यसम्पन्नो नीतिमान् बुद्धिमान् भवेत्॥२२॥

---

१. दारिद्र्यं -क
२. मां-ग
३. प्रपन्नोमि -क
४. जल्पिते -क
५. यत्त्वयोर्मिदं -क

पुत्रवान् गुणवान् श्रेष्ठो भोक्ता भवति मानवः।
इदं स्तोत्रं महापुण्यं महादारिद्र्यनाशनम्॥२३॥

क्षिप्रं प्रसादजननं चतुवर्गफलप्रदम्।
इत्थं वरांस्तु मुनये दत्त्वा रामेण संयुता॥२४॥

वने निनाय शर्वरीं विहारेण रमाभिधे।
प्रातःकाले रमातीर्थे स्नात्वा श्रीसरयूजले॥२५॥

सीतया सह धर्मात्मा अयोध्यां गन्तुमुत्सुकः।
ब्राह्मणैः कुलवृद्धैश्च क्षत्रियैर्नैगमेस्तथा॥२६॥

वणिक्जनैस्तथा पौरैः सैनिकैर्बहुभिस्तदा।
आरुह्य वाहांस्ते[1] सर्वे अयोध्यां प्रययुः रथैः॥२७॥

तटे तटे सरव्या श्च प्राप्तां गुप्तहरिं च ते।
तत्र स्नात्वा च दत्त्वा च रामचन्द्रकथामिमाम्[2]॥२८॥

अत्र पूर्वं रमानाथ तपस्तेपे सुदुश्चरम्।
नाशाय किल दैत्यानां देवानां विजयाय च॥२९॥

तदा प्रभृति लोके च नाम्ना गुप्तहरिः स्मृतः।
इत्येवं कथयन् रामो गमनाय मनो दधौ॥३०॥

अयोध्यां प्राप्य ते सर्वे प्रापुर्वेश्मानि नागराः।
राजद्वारं समागम्य रामो भ्रातृसमन्वितः॥३१॥

गजादुत्तीर्य राजानं प्रणाममकरोत् प्रभुः।
रामं चालिङ्ग्य बाहुभ्यां तथा पुत्रान् नृपोत्तमः॥३२॥

आनन्दं परमं प्राप दृष्ट्वा पुत्रान् समागतान्।
कौशल्यां च सुमित्रां च कैकेयीं च तथापराः॥३३॥

प्रणेमुस्ते कुमाराश्च परिष्वक्ताश्च मातृभिः।
प्रणम्य श्वश्रूः सीता च भगिनीभिर्मुदान्विता॥३४॥

ताभिश्चापि परिष्वक्ताः वध्वस्तास्तु वराननाः।
विजह्रुः पतिना सार्द्धं स्वे स्वे वेश्मनि ताः पुनः॥३५॥

---

१. वाहं ते –क

२. राम प्राह –ग

इमां तु तीर्थयात्रां वै रामस्य परमात्मनः।
यः शृणोति सदा भक्त्या कथयेद् वापि भक्तितः॥३६॥
तीर्थयात्राफलं तस्य जायते नात्र संशयः॥३७॥

इति श्रीसत्योपाख्याने सूतशौनकसंवादे
त्रिसप्ततितमोऽध्यायः।



चतुसप्ततितमोऽध्याय:

श्रीशौनक उवाच-

विहारं ब्रूहि रामस्य भो सूत करुणानिधे।
यस्य श्रवणमात्रेण न मनो याति कुत्रचित्॥१॥

श्रीसूत उवाच-

शृणुं विप्र महाभाग रामचन्द्रकथामिमाम्।
अशोकवनिकां रम्यां राघव: सीतया सह॥२॥

प्रविवेश विहाराय तस्या एव विनोदभाक्।
सखीसहस्त्रसंयुक्ता जानकी जनकात्मजा॥३॥

रमयामास रामं सा नानाभावैर्मनोरमे।
ह्रिया कीर्त्त्या च शीलेन भर्तु: सीता हरन् मन:॥४॥

अशोकवाटिकायां तु विजहार बहूनृतून्।
रमया सीतया सार्क रामचन्द्रो महामना॥५॥

एकदा जानकी देवी मालां पुष्पमयीमधात्[1]।
न्यदधे रामकण्ठे तु ह्यात्मानं तु ददर्श सा॥६॥

आत्मन: प्रतिबिम्बं तु चात्ममोहकरं[2] परम्।
कौस्तुभे रामचन्द्रस्य कण्ठदेशे मनोहरे॥७॥

मानं चकार सा बाला द्वितीया [3]बालशंकया।
एकपत्नीव्रतो रामो द्वितीयां तु[4] बिभर्त्त्यसौ॥८॥

इति मत्वा जगामाथ सख्या सुभगया सह।
अन्या अपि तदा जग्मु: सीतासख्य: सहस्त्रश:॥९॥

---

१. व्यधात् -ग
२. मोहकं -क
३. पत्नि -ग
४. द्वितीयं वै -क

कुञ्जान्तरे स्थितां सीतां शोचन्तीं तामवस्थिताम्।
परिवार्य तदा तस्थुः सर्वाश्चिन्तापरायणाः॥१०॥

किमियं माममापन्ना कथेयं कोपिता सती।
इति शोचन्ति ताः सर्वाः परिवार्य समन्ततः॥११॥

वीजयन्ति तथा ह्यन्याः चामरेण सुशोभनाः।
वीटकं तु करे गृह्य तस्थुश्चान्याः वराङ्गणाः॥१२॥

काश्चित्सुगन्धहस्ताश्च काश्चित्सिन्दूरसंपुटाः।
काश्चिदादर्शहस्ताश्च काश्चित्कंकतिकाकराः॥१३॥

भृङ्गारं चापराः गृह्य तस्थुश्चान्याः पतनगृहम्[1]।
एतस्मिन्नन्तरे काचित् सखी केशप्रसाधिका॥१४॥

[2]वेण्यां पुष्पाणि कर्तुं च जानक्याः प्रीतिसंयुता।
अपाङ्गैः नेत्रयोः[3] सा तु निषिद्धा तत्र सीतया॥१६॥

न चकार तदा वेण्यां पुष्पाणि सुरभीनि च।
तदा च सुभगा चाली ह्युवाच मैथिलीं प्रति॥१७॥

कृत्वा तु प्राञ्जलिं सुभ्रु वचनं प्रीतिसंयुता।

श्रीसुभगोवाच-

निषेधं कुरुषे कस्मादालिं केशप्रसाधिकाम्॥१८॥

का ते भ्रान्तिः समुत्पन्ना मह्यं ब्रूहि सुलोचने।

श्रीजानकी उवाच-

सुभगे त्वां प्रवक्ष्यामि ह्यात्मभ्रान्तिमनोहराम्॥१९॥

अहं पत्युः प्रकुर्वाणा मालां कण्ठे मनोहराम्।
पत्युः कण्ठे मणौ दृष्टा सुन्दरी दिव्यभूषणा॥२०॥

ह्यावभावं प्रकुर्वाणा मादृशी कञ्जलोचना।
सन्देहो मानसे जातो राघवोऽन्यां बिभर्ति किम्॥२१॥

मनसा भ्रान्तियुक्तेन स्थिता कुञ्जे पतिं विना।
कारणेनानेन मे रुद्धा सखी केशप्रसाधिका॥२२॥

---

१. पतद् गृहम् -क

२. अयं श्लोकः क-मातृकायां नास्ति।

३. अपांगान्नेत्रयोः -ग

श्रुत्वा वाक्यं तु सीतायाः जहास सुभगा सखी।
नेति नेतीति धुन्वाना शिरः पाणिं तु चात्मनः[१]॥२३॥

उवाच सस्मिता सीतां मा बुद्धिं त्वीदृशीं[२] कुरु।
त्वया ह्युक्तं परे लोके विरजायाः सुलोचने॥२४॥

नाट्येन मम तुष्टा त्वं याचितस्तु[३] पतिर्मया।
न प्रदास्यामि त्रेतायामेकपत्नीव्रतं पतिम्॥२५॥

विस्मृत्य वचनं तत्तु कथमेवं प्रभाषसे।
यादृशी कौस्तुभे दृष्टा नारीपङ्कजलोचना॥२६॥

तादृशीं पश्य चादर्शे[४] ह्यात्ममूर्तिं सुलोचने।
इत्युक्त्वा दर्शयामास मुकुरं निजपाणिना॥२७॥

दृष्ट्वा सीतात्मनो रूपं तादृशं सुमनोहरम्।
जहास सुस्मितापाङ्गी चात्मानं गर्हती मुहुः॥२८॥

आत्माज्ञानात् कृतं ह्येतत् मया पत्युश्च गर्हणम्।
आत्मनः किल दोषेण चात्मानं हिंसयाम्यहम्॥२९॥

पत्युर्वियोगजां[५] पीडां गमिष्यामि न संशयः।

श्रीसूत उवाच-

विमला नाम काचित्तु सखी रामस्य धीमती॥३०॥

व्यथितां जानकीं दृष्ट्वा राममागत्य चाब्रवीत्।

श्रीविमलोवाच-

किं करोषि महाराज पश्य सीतां वराननाम्॥३१॥

विषीदन्तीं सखीनां तु मध्ये त्विन्दुसमाननाम्।
श्रुत्वा तु वचनं तस्याः रामो रमयतां वरः॥३२॥

विषादमगमद् वीरः श्रुत्वा देवीं विषीदतीम्[६]।
आसनात् शीघ्रमुत्थाय सखीभिः परिवारितः॥३३॥

---

१. चात्मना -क
२. त्वीदृशां -क
३. तेस्तु -क
४. पश्चतादर्शे -क
५. पत्युर्विरहजां -ग
६. विषीदन्तीम् -क

गजराजगतिं वीरः पद्भ्यामेव चचाल ह।
विचारं मनसा कुर्वन् निश्चयं नाभिजग्मिवान्॥३४॥

आयान्तं तु पतिं दृष्ट्वा सीता सुरसुतोपमा।
प्रत्युज्जगाम सा बाला ह्रिया ह्यवनता सती॥३५॥

कोटिकन्दर्पलावण्यं विलोक्य सुन्दरं पतिम्।
गन्धर्वराजप्रतिमं दृष्ट्वा मुदमवाप सा॥३६॥

प्रणाममकरोत् प्रेम्णा प्रोवाच वचनं त्विदम्।
आत्माज्ञानान्महाराज दुःखिताहं त्वया विना॥३७॥

जीवधर्मं गता चाहं मानं कृत्वा त्वयि प्रभो।
एकपत्नीव्रते राजन् या भ्रान्तिस्तु मया कृता॥३८॥

तया दुःखमनुप्राप्ता पादौ ते च शयाम्यहम्।

श्रीसूत उवाच-

एवं गिरं ब्रुवन्तीं तां सीतां चन्द्रनिभाननाम्॥३९॥

आलिङ्ग्य तां बाहुभ्यां प्रोवाच वचनं प्रियाम्।

श्रीराम उवाच-

न च भ्रान्तित्वमापन्ना प्रिये प्रियतरे मयि॥४०॥

सदैव हृदये वासं करोषि त्वं सुलोचने।
एवमुक्त्वा महाबाहुः सीतां पीनपयोधराम्॥४१॥

दोर्भ्यां वक्षस्थले कृत्वा ह्यालिलिङ्ग प्रियां निजाम्।
पाणिना पाणिं संगृह्य[१] स[२] जगाम निजासनम्॥४२॥

सीतया सह चासीनः पीठे मणिविचित्रिते।
ततस्तु सख्यस्ताः सर्वाः लेभिरे परमं मुदम्॥४३॥

राघवेन समाज्ञप्ताः नृत्यं चक्रुर्मनोहरम्।
मृदङ्गं वादयामास[३] काचित् परमसुन्दरी॥४४॥

---

१. पाणिमादाय -ग

२. हया -ग

३. वादयामासु -क

वादयन्त्योपरा[1] वीणां कांश्यवाद्यं तथापरा।
वंशिकां वा नूपुरा[2] च पणवं मुरजं मृदुम्॥४५॥

गायन्त्योभिनयं चक्रुः रामस्याग्रे मनोहरम्[3]।
नानावेषधरास्तास्तु नृत्यमानाः कलं जगुः॥४६॥

रामं च रमयामासुर्महिषीं राघवस्य च।
सरयूं[4] ययुः पुनः सर्वाः क्रीडां चक्रुर्मनोहराम्॥४७॥

रामो रमयतां श्रेष्ठो रमयामास सुन्दरीम्[5]।
हावभावैः स्वकीयैस्तु तासां जग्राह मानसम्॥४८॥

भोजयामासुः ताः सर्वाः अन्नैर्नानाविधैः रसैः।
क्रीडित्वा सुचिरं तत्र सीतया सह वीर्यवान्॥४९॥

आनिनाय पुनः सर्वाः स्वकीये राजसद्मनि।
इदं तु चरितं रम्यं रामस्य परमात्मनः॥५०॥

श्रोतव्यं रसिकैः सर्वैर्भावुकैः[6] प्रीतिपूर्वकम्।
श्रुत्वा पापानि नश्यन्ति रामे भक्तिः प्रजायते॥५१॥

येषां तेषां न दातव्यं गोपनीयं प्रयत्नतः।
श्रद्धावते च वक्तव्यं रामभक्ताय शौनक॥५२॥

इति श्रीसत्योपाख्याने सूतशौनकसंवादे
चतुसप्ततितमोऽध्यायः।७४।



---

१. वादयन्त्योपरा –ग
२. तानपूरां –ग
३. मनोहराः –ग
४. सीधुं –ग
५. सुन्दरीः –ग
६. भावकैः –क

पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः

श्रीसूत उवाच-

कदाचित् पर्वते रम्ये नाम्ना शेषाचलाभिधे।
सीतया रमया साकं जगाम रघुनायकः॥१॥

कुल्या तु पर्वते रम्या समीपे च तिलोत्तमा।
पूर्वभागे च पीठं तु नाम्ना विद्याभिधं महत्॥२॥

दक्षिणे तु गणेशस्य कुण्डं यत्र मनोहरम्।
निवासो यत्र शेषस्य तस्मात् शेषाचलो भवेत्॥३॥

रामस्तु सीतया सार्द्धं विजहार सखीगणैः।
सखीभिः सहिता सीता पत्या स्वात्मवशेन च॥४॥

क्रीडां चकार सा बाला पर्वते सुमनोहरे।
नानावृक्षैः समाकीर्णे नानापुष्पैः सुमण्डिते॥५॥

वर्षायां श्रावणे मासि रेमे सीताधवेन च।
मयूराः कोकिलाः यत्र चातकाः पक्षिणोऽपरे॥६॥

कुजन्ति शतशोस्तत्र मण्डूकाश्च पुनः पुनः।
समाकर्ण्य गिरस्तेषां घटाः दृष्ट्वा मनोहराः॥७॥

आन्दोलनाय रामस्य सीता चक्रे मनस्तदा।
रत्नैः[1] सुरचितौ स्तम्भौ रत्नवेदिपुरस्कृतौ॥८॥

सुरत्नशिरसौ[2] तौ च तत्रान्दोलं विधाय च।
सख्यो निवेशयामासु रामचन्द्रं मनोहरम्॥९॥

तस्यैवाङ्के तथा सीतां लज्जया सुस्मितान्नाम्।
रामचन्द्रं घनश्यामं सीताविद्युल्लतोपनाम्॥१०॥

---

१. रत्नौ -क

२. सुरत्नौ सुरशौ -क

आन्दोलयन्ति सख्यस्तु प्रेम्णा युग्मं शनैः शनैः।
रागं हिंडोलकं नाम मल्लारं च कलं जगुः॥११॥

काश्चिन्नृत्यन्ति रामाग्रे वादयन्त्यस्तथापराः।
चामराणि[१] प्रकुर्वाणाः रश्मीन् कर्षन्ति चापराः॥१२॥

नागवल्लीदलं दिव्यं पूंगीफलसमन्वितम्।
रामचन्द्राय सीतायै ददन्त्यस्ताः[२] विजह्निरे॥१३॥

जलं सौगन्धिकं तास्तु ववृषुश्च तयोर्मुदा।
आन्दोले रेजतुस्तौ च सीतारामौ मनोहरौ॥१४॥

रक्तवस्त्रपरीधानौ नानारत्नैः सुभूषितौ।
शीघ्रे चान्दोलने याते भीतेव जनकात्मजा॥१५॥

सखेलं कण्ठमालिङ्ग्य भर्त्तारमुदममाप[३] सा।
उवाच सुस्मयन्ती सा[४] मा शीघ्रं धूर्यतामिदम्॥१६॥

तदा रामः प्रसन्नात्मा प्रियां चन्द्रनिभाननाम्।
सूक्ष्मां कनकवर्णाङ्गी पीनोन्नतपयोधराम्॥१७॥

कृत्वा वक्षस्थले श्यामामान्दोलसुखमन्वभूत्।
सीता मन्दाः सुगन्धाश्च वायवस्तं शिसेविरे॥१८॥

जलबिन्दुकणान् मेघाः प्रकिरन्ति तदा प्रभुम्।
देवाः पुष्पाणि वर्षन्ति ससीतं राघवं प्रति॥१९॥

आन्दोलनसुखं[५] कृत्वा सखीभिः सीतया सह।
आन्दोलनविमानात्तु सहसोतीर्य तया सह॥२०॥

पादुकां च समारुह्य प्रियापाणिं प्रगृह्य च।
पद्भ्यामेव महाराज न चचाल निकेतनम्॥२१॥

रामेच्छया तदा वर्षा बभूव महती पथि।
जलसिक्तास्तथा बालाः कौशुम्भवस्त्रधारिका॥२२॥

---

१. चामराय -क
२. ददन्त्यमा -क
३. मुपयाय -क
४. सुस्मयं सीतां -क
५. आन्दोलनं सुखं -क

च्योतन्ति जलबिन्दूश्च शाटीप्रान्तैस्तथालकैः।
देहलग्नानि वस्त्राणि जलक्लिन्नानि रेजिरे॥२३॥

अधस्तस्थुश्च वृक्षाणां रमण्यो यत्र तत्र च।
रामोऽपि सीतया सार्द्धं तथा तस्थौ स्मयन्[१] प्रभुः॥२४॥

सीतामादाय रामस्तु चोत्तरीयेण छादताम्।
सुरङ्गशाटिकां बालां प्रयान्तीं हंसनीमिव॥२५॥

गजराजगतिर्वीरो स्वयं कौशुम्भकञ्चुकः।
तस्थतुस्तौ च वृक्षस्य छायामाश्रित्य दम्पती॥२६॥

जलक्लिन्नं पतिं दृष्ट्वा शाटीप्रान्तेन तन्मुखम्।
मार्जयन्ती पतिं प्राह मया स्पृष्टौ कपोलकौ॥२७॥

कुण्डलं रचयामास पाणिना च तथालकान्।
सुस्मिता रामचन्द्रस्य मुकुटं प्रोच्छती[२] मुहुः॥२८॥

गन्धर्वराजप्रतिममपाङ्गैः पश्यती मुहुः।
रामोऽपि कञ्चुकेनैव प्रियायाः वदनाम्बुजम्॥२९॥

पश्यतीनां सखीनां तु ममार्ज प्रहसन् मुदा।
च्योतन्ती जलबिन्दुश्च मौक्तिकान्तीव निर्मलान्॥३०।

अलकै ऋजुतां प्राप्तैः श्रवद्भिः स्तनकुम्भयोः[३]।
ससूक्ष्मशाटिकां लग्नां देहे व्यञ्जितभूषणाम्॥३१॥

प्रियायाः सुषमां रामः पश्यन्नेव[४] मुहुर्मुहुः।
चूडामणिं तथा दिव्यां नासायां मौक्तिकं तथा॥३२॥

कर्णयोः कर्णपुष्पाणि रचयामास पाणिना।
जहसुस्तु तदा सख्यस्तयोः प्रीतिं विलोक्य च॥३३॥

परस्परं ब्रुवन्त्यश्च पश्यन्त्यश्च परस्परम्।
दाम्पत्यं नैव लोकेस्मिन् विद्यते नैव लभ्यते॥३४॥

---

१. स्थयन् -क
२. मोक्षती- ग
३. कुच -ग
४. पश्यन्तीव -क

अलौकिकं तु दाम्पत्यं विद्यते रामसीतयोः।
एतस्मिन्नन्तरे चैव जनन्याः प्रेषिता रथाः॥३५॥

षण्डा अनेकसम्प्राप्ताः प्रणिपत्य तु राघवम्।
रथेष्वारोपयामासुः सर्वास्ताश्च वरानना:॥३६॥

ससीतं राघवं प्राप्य रथे मणिविचित्रिते।
आनिन्युस्ते च प्रासादं नानारत्नविचित्रितम्॥३७॥

आधाय शुभवस्त्राणि सर्वा रेजेः पुनस्तदा।
एतत्तु[1] चरितं रम्यं सीताराघवयोः शुभम्॥३८॥

न वदेद् यस्य कस्यापि ह्यग्रे गोप्यं मनोहरम्।
प्रेम्णा वै शृणुते यस्तु तस्मै ब्रूयाद् विचक्षणः॥३९॥

इति श्रीसत्योपाख्याने सूतशौनकसंवादे
पञ्चसप्ततिः अध्यायः।



१. एतन्नु -क

षष्ठसप्ततितमोऽध्यायः

श्रीसूत उवाच-

एकदा कार्तिके मासे दीपमालां च राघवः।
तुलस्याः पूजनं लोके स्थापयामास प्रमेतः॥१॥

द्यूतक्रीडां चकाराथ सीतया प्रियया सह।
जितस्तया तदा रामः प्राह वाक्यं मनोहरम्॥२॥

श्रीराम उवाच-

त्वया जितोऽहं देवि किं करोमि तवाधुना।
य त्वं चेच्छसि दायानि तद् ददामि न संशयः॥३॥

श्रीसूत उवाच-

इति वाक्यं समाकर्ण्य पत्युः सा मृगलोचना[१]।
उवाच वचनं सा तु ह्यपाङ्गैः पश्यती पतिम्॥४॥

श्रीजानकी उवाच-

यदि दातुं तवेच्छास्ति मानसं देहि मे प्रियः।
यथा मे मानसं राजन् तथाहं त्वां रहः प्रभो॥५॥

आलिङ्गनं करिष्यामि चोष्ठौ पास्यामि ते प्रियम्।
इति श्रुत्वा वचस्तस्या रामो राजीवलोचनः॥६॥

इदं शरीरं ते देवि यथेच्छसि तथा कुरु।
गाढमालिङ्गनं भद्रे तुभ्यं दास्ये रहः प्रिये॥७॥

पुनर्द्यूतं[२] तथा चक्रे जिता रामेण जानकी।

श्रीजानकी उवाच-

जिताहं च त्वया वीर तुभ्यं दास्यामि किं वद॥८॥

---

१. मृगलोचनी -ग

२. घूतं -क

मह्यं ब्रूहि महाराज तन्मया क्रियतेऽधुना।
दास्यहं[१] ते सदा[२] स्वामिन् सेवकी ते पदाब्जयोः॥९॥

तुभ्यं किं किं न दास्यामि मानसं तु समर्पितम्।
आज्ञाकरी सदा राजन् विधेयां मामवैहि तु[३]॥१०॥

प्रियावाक्यं समाकर्ण्य रामः प्राह वराननाम्।
एवमेव सदा देवि कर्त्तव्यं च त्वया मयि॥११॥

श्रीसूत उवाच-

अक्षैस्तु क्रीडनं कृत्वा प्रियया सह राघवः।
आरुह्य शिविकां रामस्तीर्थं गुप्तहरिं ययौ॥१२॥

कार्तिके तीर्थराजोऽपि स्नातुमायाति नित्यशः।
कार्तिकं प्राप्य गर्जन्ति तीर्थानि सकलान्यपि[४]॥१३॥

देवं गुप्तहरिं दृष्ट्वा पापं नश्यति तत्क्षणात्।
तस्मिन् क्षेत्रे महादिव्ये सीतया च सखीगणैः॥१४॥

उवास तत्र धर्मात्मा कल्पवासचिकीर्षया।
अयोध्यावासिनः सर्वे नराः नार्यस्तु भूरिशः॥१५॥

रामदर्शनकामास्तु तथा जानपदाः जनाः।
पटवेश्मानि शोभन्ते शतशोऽथ सहस्त्रशः॥१६॥

आह्निकं कर्म कृत्वा तु सर्वे पश्यन्ति राघवम्।
फलं तु तीर्थयात्रायाः इदमेवं हि मेनिरे॥१७॥

पौर्णिमास्यां तदा स्नात्वा दत्वा दानानि भूरिशः।
स्वर्गद्वारं पुनः प्राप्य स्नानं कृत्वा तु सीतया[५]॥१८॥

तदा सीता ददौ दानं सखिभिः परिवारिता।
सत्काराः पूजिताः विप्राः नानावस्त्रैश्च भूषणैः॥१९॥

---

१. दासीहं -क
२. त्वया -क
३. त्वम् -ग
४. सलिलान्यपि -क
५. शीतया -क

भोजिताः परमान्नैश्च दक्षिणां च ददौ मुदा।
रामोपि विप्रवृन्देभ्यो ददौ दानं पुनः पुनः॥२०॥

अश्वाः गजा रथाश्चैव भूमिश्च शिविकास्तथा।
रामेण भूरिशो दत्ताः[1] प्रणताश्चैव भूसुराः॥२१॥

विधाय चाञ्जलीं रामो ब्राह्मणमिदमब्रवीत्।

श्री राम उवाच-

यूयं विष्णुस्वरूपाश्च युष्माकं चैव पूजनात्॥२२॥

प्रीयते लोकनाथस्तु रमाकान्तो न संशयः।
युष्माकं पूजनं ये तु करिष्यन्ति महीतले॥२३॥

गमिष्यन्ति परे लोके भुक्त्वा भोगांस्तु भूरिशः।

श्रीसूत उवाच-

वात्सल्यं वीक्ष्य ते विप्राः राघवस्य तथाविधम्॥२४॥

ऊचुः प्राञ्जलयो भूत्वा दत्वा चाशीषमुत्तमाम्।

श्रीविप्रा ऊचुः-

भवान्नारायणो देवः सीता लक्ष्मी न संशयः॥२५॥

श्रेयसे सर्वलोकानामवतीर्णौ[2] स्वमायया।
युवयोः पूजनं ये तु ध्यानं वै कीर्तनं तथा॥२६॥

करिष्यन्ति गमिष्यन्ति परलोकं परं नराः।
कीर्त्तिर्वै पावने लोके भवताद् वै रघुत्तमः॥२७॥

तदा रामः प्रसन्नात्मा सीतया सह वीर्यवान्।
पश्यतां सर्वलोकानां प्रणम्य द्विजपुङ्गवान्॥२८॥

आस्थाय शिबिकां रामः सीतापि शिबिकां स्वकाम्।
विवेश भवनं रम्यं भोगैः सर्वैरलङ्कृतम्॥२९॥

इति श्रीसत्योपाख्याने सूतशौनकसंवादे
षष्ठसप्ततितमोऽध्यायः॥७६॥



---

१. दत्वा -क

२. अवीर्णाः- क

सप्ततितमोऽध्यायः

श्रीसूत उवाच-

एवं वै फाल्गुने मासि[1] राघवः सीतया सह।
चकार विविधां क्रीडां भावुकानां[2] सुखप्रदाम्॥१॥

चरितानि भूरीणि रामस्य परमात्मनः।
न शक्यते मया वक्तुमपि जन्मशतैरपि॥२॥

श्रीशौनक उवाच-

ब्रूहि सूत महाभाग कृपां कृत्वा ममोपरि।
फाल्गुने च[3] कथं रामो विजह्रे सीतया सह॥३॥

श्रीसूत उवाच-

जानकी फाल्गुने मासि सखीः सर्वाः जगाद ह।
अयं वै फाल्गुनो[4] मासो[5] होलिकां क्रियतां मुदा॥४॥

होलिकां कर्त्तुमुद्युक्ताः वैदेहिवचनेन तु।
गायन्त्यो नर्त्तनं चक्रुर्वाद्यं चक्रुर्मनोहरम्॥५॥

हावभावप्रवीणास्तु सीताराघवयोः पुरः।
चिक्रीडुर्विविधां क्रीडां तयोर्हास्याय चाङ्गनाः॥६॥

अरुणं क्षोदमादाय विकरन्त्यः परस्परम्।
दृतिभिर्षिच्यमानास्तु रामेणापि वराननाः॥७॥

सीता कनकशृङ्गेण राघवे सिषिचे मुदा[6]।
रङ्गकुण्डे च रामेण सवस्त्रा स्नापिता मुदा॥८॥

---

१. मासे -ग
२. भावकानां -क
३. फाल्गुनस्य -क
४. फाल्गुने -क
५. मासे -क
६. शिपिचुर्मुदा -क

रामं चापि समानीय प्रसह्यं रङ्गकुण्डके।
पातयित्वा स्वयं सीता चिक्रीडे पतिना मुदा[1]॥९॥

सुशोणकञ्चुको रामः उष्णीषेण तदाभवत्।
औदञ्चनात्तु रङ्गस्य बहिर्निर्गत्य तस्थिवान्॥१०॥

तदा सखीभिरालिप्तश्चूर्णरक्तैः समन्ततः।
कज्जलं नेत्रयुग्मे च कर्त्तुकामाः उपस्थिताः॥११॥

निरञ्जनं च मे नाम साञ्जनं तद्[2] भविष्यति।
विचार्य मनसा ह्येवं गमनाय मनो दधौ॥१२।

अञ्जनेन ह्यनेनैव मन्थरावदनं मया।
कर्तव्यं कलुषं लोके हास्याय किल योषिताम्॥१३॥

तदा पलायितो रामः प्रहसन् नृपनन्दनः।
जानकी प्रेषयामास ह्यपाङ्गैश्च सखीगणः॥१४॥

स्वयं जगाम सा बाला वेगेनापि सखीगणैः।
अधावद् रामचन्द्रोऽपि कैकेय्याः सदनं प्रति॥१५॥

गुप्तो बभूव कैकेय्याः मन्दिरे रघुनायकः।
प्रेम्णा जुगोप कैकेयी रामं शशिनिभाननम्॥१६॥

आगतायां तु सीतायां सखीनां च गणैः सह।
मन्थरा कथयामास ताभ्यो रामं च गोपितम्॥१७॥

अत्रैव भवने रामो गुप्तो भूत्वापि वर्तते।
तदा तु कैकेयी राज्ञी रुष्टा वै मन्थरां प्रति॥१८॥

स्वयं निर्भत्सयामास मन्थरां चैव सूचिकाम्।
उवाच सस्मितां सीतां स्वयं देवी तु कैकेयी॥१९॥

रङ्गेन क्रियतामस्याः सीते कमललोचने।
वस्त्राणि बहुमूल्यानि क्लिन्नानि कर्तुमर्हथ॥२०॥

श्रीसूत उवाच-

इति श्रुत्वा वचं तस्याः सीतायाश्च सखीगणाः।
रङ्गैर्नानाविधैस्तांस्तु स्नापयोचक्रिरे मुदा॥२१॥

---

१. मुना -क

२. च -क

कज्जलं तु रामस्य नेत्रे कर्तुं समुद्यताः।
तत्तु तस्याः कपोले तु चक्रुः सर्वे सखीगणाः॥२२॥

सुभगा दर्शयामास मुकुरं तर्जनीगतम्।
दृष्ट्वा तु वदनं स्वस्य मन्थरा लज्जिताभवत्॥२३॥

पलायनपरा याता गुप्ता तिष्ठति मन्दिरे।
एतस्मिन्नन्तरे रामः कैकेयीभवनात् प्रभुः॥२४॥

निर्गत्य सहसा स्वस्य जनन्या भवनं ययौ।
कर्षन् मनांसि सर्वासां सुस्मितेन रमापतिः॥२५॥

कञ्चुकाद् उत्तरीयाच्च क्षरन् बिन्दुश्च रंगजान्।
पर्यङ्के जननीं दृष्ट्वा तस्याश्चाङ्के पपात च॥२६॥

प्रहसन्नम्ब अम्बेलि त्रिवर्ष इव बालकः।
माता तु वदनं तस्य मार्जती स्वेन पाणिना॥२७॥

ददर्श जानकीं प्राप्यां सखीभिस्तु सश्रृङ्गिणीम्।
श्वश्रूं दृष्ट्वा तदा सीतां लज्जितावाङ्मुखी ह्रिया॥२८॥

बभूव [1]चासितापाङ्गी निर्वार्य तु सखीगणम्।
तत्तु कनकश्रृङ्गं च सुभगायै ददौ[2] जवात्॥२९॥

सीता श्वश्रूमुवाचाथ श्रूयतां देवि मे वचः।
पुत्रस्त्वदीयो मां रङ्गै क्लिन्नां कृत्वा पलयितः॥३०॥

इदानीं तव चाङ्के तु साधुवत्तु विराजते।
सिक्ता मे कञ्चुकी[3] श्रृङ्गैर्वस्त्राणि च मुहुर्मुहुः॥३१॥

तथा मदीया वयस्याश्च[4] रक्तचूर्णेन रञ्जिताः।
इति वाक्यं तदा तस्याः श्रुत्वा चैवं जगाद सा॥३२॥

श्री कौशल्योवाच-

सोपालम्भमिदं वाक्यं न वक्तव्यं ममाग्रतः।
भवतीनां भयाद् भीरो ममाङ्के च समागतः॥३३॥

---

१. चाशिता -ग
२. प्रददौ -ग
३. कञ्चुकौ -क
४. षस्याश्च -क

अयं वै फाल्गुनो[1] मासः क्रीडा वै जायते बहु।
गृह्यतां पूजनं सीते मत् पुत्रात्तु यथेप्सितम्॥३४॥

इत्युक्त्वा बहुवस्त्राणि रत्नानि भूषणानि च।
कौसल्या प्रददौ ताभ्यः पुत्रप्रीत्यै स्मितानना॥३५॥

तदा तु जानकी देवी पाणिना पाणिमग्रहीत्।
रामस्य कमलपत्राक्षी वचनं चेदमब्रवीत्॥३६॥

गम्यतां प्रिय तत्रैव मन्दिरे मे मया सह।
तदा रामः समुत्थाय मात्राज्ञप्तो ययौ मुदा॥३७॥

प्रहसन् प्रियया साकं सखिभिः परिवारितः।
विजह्रे तत्र चागत्य रामो रमयतां वरः॥३८॥

इत्थं तु सुतरां रामश्चिक्रीडे निजवेश्मनि।
इदं तु चरितं रम्यं फाल्गुने तु प्रकीर्तितम्॥३९॥

यस्मै कस्मै न दातव्यं गोपनीयं प्रयत्नतः।
श्रुत्वा न सहते यस्तु रामं निन्दति यो नरः॥४०॥

न श्रावयेत् कदाचित्तु तस्मै दुष्टाय वाचकः।
पुस्तकं दर्शयेन्नैव ब्रूयाच्छ्रद्धावते स्वयम्॥४१॥

इति श्रीसत्योपाख्याने सूतशौनकसंवादे
सप्ततितमोऽध्यायः।७७।



१. फाल्गुने-क

अष्टसप्ततितमोऽध्यायः

श्रीसूत उवाच-

ज्येष्ठे मासि सिते पक्षे दशमी या[1] तिथिर्भवेत्।
दशहरा[2] च सा ज्ञेया दशपापानि हन्ति या॥१॥

ग्रीष्मो नाम ऋतुश्चैव तस्मिन् रामो मनो दधौ।
विहाराय सरव्याश्च जले पोतेन सीतया॥२॥

गच्छ सीते मया सार्द्धं सखीभिः परिवारिताः।
विहारं[3] तु करिष्यामि सख्याः निर्मले जले॥३॥

इत्युक्त्वा राघवः श्रीमान् जनानाज्ञापय तदा।
स्थाप्यतां[4] सरयूतीरे प्रतिसीरास्तु भूरिशः॥४॥

आज्ञया रामचन्द्रस्य तिरस्करणयस्तु[5] शोभिताः।
शिबिकां तु तदारुह्य सीतया च सखीगणैः॥५॥

गच्छन् ददर्श रामोथ सीतां चैव सखीगणान्।
शाटीप्रान्तं तु मुक्तानां मालया च विनिर्मितम्॥६॥

उत्तरीयं तथा तासां जानक्याश्चैव शोभितम्।
निःश्वास वातहार्य्यं च ददर्श पथि राघवः॥७॥

दीर्घिकानां पदम्भस्तु[6] नीचैः सोपानतो ययौ।
शोभन्ते[7] तत्र पद्मानि नालैरुच्चैर्यतस्ततः॥८॥

---

१. दशम्ययां -क

२. दशहरायां -क

३. शिविका तु तदारुह्य सीता -इति पाठः ग-मातृकायां 'विहार तु' एतत्पूर्वं प्राप्यते।

४. प्राप्यतां -क

५. तिरस्कारस्तु -क

६. च -ग

७. शोमते -क

नितम्बद्वयसं यातं ज्येष्ठे मासि सुशोभने।
मल्लिकानां च पुष्पेषु कुड्मलेषु [1]यतस्ततः॥९॥

भ्रमरः गायमानो हि, तत्र तत्र पदं दधन्।
गणनामिव पुष्पाणां कुर्वन् याति यतस्ततः॥१०॥

प्रयान्तीनां च बालानां मुखे स्वेदो बभूव ह।
शिरीषकुसुमं तेन गण्डे लग्नं न चापतत्॥११॥

कर्णादपि च्युतं तासां भुवं रामो व्यलोकयत्[2]।
ताभिः साकं महाराजो जगाम सरयूं नदीम्॥१२॥

अप्सरोभिर्यथा देवो मन्दाकिनीमिव देवराट्।
दुर्गात् पूर्वदिशाभागे[3] सरयू यत्र राजते॥१३॥

ऊर्मिभिः रत्नसोपानैः हंसैः पुष्पैः सुशोभनैः।
सीतासखस्य रामस्य वनिताभिर्युतस्य च॥१४॥

तस्याः तीर्थे विहर्तुं च मानसं बभूव ह।
उत्तीर्य शिविकाभ्यस्तु रामः सीतासखीगणैः॥१५॥

सोपानेषु ददौ[4] रन्ध्रीन् नूपरैर्हंसकैर्युतान्।
तेषां रावेन ते हंसा विवदाः[5] सहसाभवत्॥१६॥

सोपानेभ्यस्तदा सर्वाः स्त्रियश्च सलिले[6] विशन्।
सरव्याश्च जलं शुद्धं तिमिनक्रैर्विवर्जितम्॥१७॥

रामस्य चाज्ञया कृष्टाः शनसूत्रेण धीवरैः।
नारीनितम्बद्वयसं जलं नद्याः बभूव ह॥१८॥

पोते स्थितस्तदारामः पार्श्वस्थां जनकात्मजाम्[7]।
उपात्तचामरान्तां[8] तु बभाषे राघवः प्रियाम्॥१९॥

---

१. श्लोकोऽयं क- मातृकायां नास्ति।
२. वि-क
३. सर्वा-क
४. ददु-ग
५. विविग्ना-ग
६. जले-ग
७. चैव जानकीम्-ग
८. उपान्त -क

श्रीराम उवाच-

पश्य सीते[1] प्रकुर्वन्ति[2] सेचनं तु सखीगणाः।
आसां चैवाङ्गरागेण राजते सरयू नदी॥२०॥

आसां यदञ्जनं धौतं जलेन तु पुनः पुनः।
तदञ्जनं तु नौकाभिः वारिणा ध्रियते मुहुः॥२१॥

जलरागं तु कुर्वन्ति नयनेषु सखीगणाः।
पङ्कजानीव राजन्ते नेत्राणि विकचानि च॥२२॥

पयोधरगुरुत्वाच्च नितम्बस्य गौरवात्।
जले शक्ताः[3] न तर्तुं वै केयूरैर्बद्धबाहुभिः॥२३॥

क्लेशोत्तर[4] प्लवन्ति स्म अमी तव सखीजनाः।
अवतंसा शिरीषाणां शिरोभ्यः पतितां जले॥२४॥

निम्नगायाः प्रवाहे तु[5] यान्ति[6] पारिप्लवतां[7] हिते।
मुक्तातुल्यं यदम्भस्तु योषितां स्तनमण्डले॥२५॥

मालेव राजते तत्तु मुक्तानाभिव निर्मिता।
जलावर्तस्य नाभिस्तु कुचैव चक्रवाकयोः॥२६॥

विलासिन्यस्तु ते सीते तुल्यां शोभां प्रपेदिरे।
तीरस्थिताः प्रगायन्ति बहवाः[8] ह्येतां वराङ्गणाः॥२७॥

मृदङ्ग[9] जलवाद्यं तु कर्णे प्राप्तं मनोहरम्।
कौशेयं रक्तवस्त्रं तु जलार्द्रं तच्च राजते॥२८॥

---

१. पश्यतीते -क
२. प्रकुर्वीत -क
३. सिक्ताः-क
४. क्लेशोचरं -क
५. प्रवाहहेतु-क
६. पाति-क
७. पारिप्लुतां -क
८. वह्वो -क
९. मदङ्गं-ग

नितम्बेष्ववसानं[1] तु वद्धं रसनया च यत्।
जलसङ्गाच्च[2] वस्त्रस्य भजन्त्या मौनमेव च॥२९॥

सखिभिः वदने सिक्तारलकाः आर्द्रतां गताः।
च्योतन्ति जलबिन्दूश्च कपोलो परिलम्बिताः॥३०॥

आसां वेण्यो विराजन्ते जलेनैव विधूनिता।
नाग्य[3] इव विशोभन्ते पृष्ठभागे[4] यतस्ततः॥३१॥

जलार्द्राः अपि शोभान्ताः भेजुः सर्वाः वराङ्गनाः।

श्रीसूत उवाच-

तासां विहारं संवीक्ष्य स्पृहयामास जानकी॥३२॥

सीताया प्रार्थितो रामो नौविमानात्तया सह।
जलेऽवतीर्य रामाभी[5] रेमे रामो मनोरमः[6]॥३३॥

स्कन्धे विलोलमानस्तु[7] यथा रत्या मनोभवः।
यथा वन्यो गजेन्द्रस्तु गजीभिस्तु नदीजले॥३४॥

नराधिपेन ताः सर्वाः विरेजूस्ताः शुभाननाः।
इन्द्रनीलमणिश्यामं रामं ताः पङ्कजेक्षणम्॥३५॥

दृतिभिश्चापि स्वर्णानां स्वर्णाग्यः[8] सिषिचुः[9] स्म तम्[10]।
ताभिः सार्द्धं महाराजो गंगायां[11] सुरराडिव॥३६॥

अप्सरोभिश्च शच्या च रराज रघुनन्दनः।
एवं कृत्वा विहारं तु नद्याः कूले च राघवः॥३७॥

---

१. नितम्बेष्वबलानां -ग
२. जलगात्रस्य -क
३. नाग्न्यं -क
४. पृष्ठमाङ्ग -क
५. रामो भी -क
६. मनोरसः-क
७. विलोलमाल-ग
८. स्वर्ण्यांगयश्च -क
९. शिषिचुः-क
१०. स्तुतं -क
११. गंगायं-क

स्थित्वा विलोकयामास निःसरन्ती[१] च जानकीम्।
समुद्रमथने पूर्वं सखीभिः कमलामिव॥३८॥

आगच्छन्ती[२] जलात् कूलमार्द्रवस्त्रां ह्रियानताम्।
पीनस्तनद्वयं साध्वीमलकैश्चापि सिञ्चतीम्॥३९॥

एवं दृष्ट्वां प्रियां रामः पाणिना पाणिमग्रहीत्।
पटवेश्म[३] तदा रामो जगाम प्रियया सह॥४०॥

रामः सीता तथा चान्यो[४] वेषं कृत्वा मनोहरम्।
दत्वा दानानि विप्रेभ्यो यानान्यारुरुहु पुनः।
राम सीतामुपादाय विवेश निजमन्दिरम्॥४१॥

इति श्रीसत्योपाख्याने सूतशौनकसंवादे
अष्टसप्ततितमोऽध्यायः



---

१. निः सरन्ति -क
२. आगच्छन्ति-क
३. ग-मातृकाया नास्ति
४. चाल्पो -क

एकोनशीतितमोध्यायः

श्रीसूत उवाच-

एवं रामो रामनाथः विजहार सदैव हि।
मातरं पितरं भ्रातृन् पौरान्[1] भृत्यान् सखींस्तथा॥१॥

प्रीणयामास तान् रामो विनोदैर्मङ्गलप्रदैः।
साकेतं नगरं रम्यं नानारत्नैर्विराजितम्॥२॥

सत्या च विमला[2] चैव पुरी चाद्या प्रकीर्तिताः।
अयोध्या नाम विख्याता वेदे लोके तथैव च॥३॥

तत्र राजगृहे रम्ये नानारत्नैः विभूषिते।
अयोध्यानगरे रम्ये रत्नमण्डपशोभिते॥४॥

अनेकरत्नसङ्कीर्णे ज्वलनार्कसमप्रभे।
आवासैरुत्तमैर्युक्ते दिव्यप्राकारतोरणे॥५॥

सुवर्णदुर्गसंयुक्ते रौप्यताम्रककोष्ठके।
परिखामारकूटे च हर्म्यस्वर्णविराजिते[3]॥६॥

प्राकारोपवनाट्टालपरिखारत्नतोरणे।
अनेकगृहसंयुक्ते रचिते[4] विश्वकर्मणा॥७॥

स्वर्णरौप्यायसैः शृङ्गैः सङ्कुले सर्वतो गृहैः।
नीलस्फटिकवैडूर्य्यमुक्तामरकततोरणैः॥८॥

क्लिप्तहर्म्यस्थले[5] रम्ये सर्वदेवनमस्कृते।
सरयूतीरमासाद्य दिव्ये परमशोभिते॥९॥

---

१. पौशः-क
२. निर्मला -क
३. विराजते-क
४. रचिता-क
५. स्वर्णरू-क
६. लि-क

हस्त्यश्वरथपत्त्याद्यैः नानाभूतिविराजिते।
प्राकाराट्टालप्रतोलिभिस्तोरणैः काञ्चनैः शुभैः॥१०॥

[1]सुरूपवेषैः सर्वत्र सुविभक्तचतुष्पथे।
अनेकभूमिप्रासादे बहुभाण्डसुविक्रिये॥११॥

पद्मोत्पलशुभांशाभिर्वापीभिरुपशोभिते[2] ।
देवतायतनैर्दिव्यैर्वेदघोषैश्च शोभिते॥१२॥

वीणावेणुमृदङ्गाद्यैः शब्दैरुत्कृष्टकैर्युते।
शालैस्तालैर्नारिकेलैः पनसैरामलकैस्तथा॥१३॥

तथैवाम्रकपित्थाद्यैरशोकैरुपशोभिते ।
आरामैर्विविधैर्युक्ते [3]सर्वर्तुफलपादपैः॥१४॥

मालतीजातिबकुलापाटलानागचम्पकैः[4] ।
करवीरैः कर्णिकारैर्केतकीभिरलङ्कृते॥१५॥

निम्बजम्बीरकदलीमातुलिङ्ग[5]महाफलैः ।
लसच्चन्दनगन्धाद्यैर्नागरैरूपशोभिते ॥१६॥

देवतुल्यप्रभायुक्तैः क्षत्रियैश्च सुशोभिते।
स्वरूपाभिर्वरस्त्रीभिर्देवस्त्रीभिरिवावृते[6] ॥१७॥

श्रेष्ठैः सत्कविभिर्युक्तैर्बृहस्पतिसमैः[7] द्विजैः।
वणिग्जनैस्तथा पौरैः[8] कल्पवृक्षैरिवावृते॥१८॥

अश्वैरुच्चश्रवप्रख्यैर्दन्तिभिर्दिग्गजैर्युते[9] ।
तस्मिन् राजगृहे रम्ये नानारत्नैर्विभूषिते॥१९॥

---

१. स्व-क
२. पद्मोत्पलसुभागाभि-ग
३. सर्वत्र-क
४. पञ्चकैः-क
५. ल-ग
६. पुरुषाभि-ग
७. प्रकृति-ग
८. स्ताम्रपरैः-क
९. श्रवः-ग

अन्तःपुरे सदा रामो राजते सीतया सह।
सिंहासने महादिव्ये नानारत्नैर्विराजिते॥२०॥

वामे सीतां समालम्ब्य राजन्तं रघुनन्दनम्।
सीतासंलापचतुरं भक्ताभीष्टप्रदं सदा॥२१॥

सखीगणैस्तथा सद्भिः किङ्करैश्च सुसेवितम्।
पूरयन्तं सदा कामान् सेवकानां मुहुर्मुहुः॥२२॥

एवं ध्यायेत् सदा रामं जानकीपतिमव्ययम्।
रमते योगिनो यस्मिन् सत्यानन्दे चिदात्मनि॥२३॥

इति रामपदेनासौ परब्रह्माभिधीयते।
रामो माता पिता रामो भ्राता रामः सुहृत् सखा॥२४॥

स्वामी रामो महाराजः रामचन्द्रः सदावतु।
इदं तु चरितं रम्यं सीताराघवयोः शुभम्॥२५॥

श्रुत्वा व्यासान्मया तुभ्यं शौनकेदं प्रकीर्तितम्।
धन्यं यशस्यमायुष्यं पुण्यं वंशविवर्द्धनम्॥२६॥

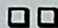
सदैव शृण्वतां लोके मङ्गलप्रदमुत्तमम्।
चतुर्वर्गप्रदं ह्येतच्छ्रोतॄणां मुदकारकम्॥२७॥

यश्चैतच्छृणुयाद्वापि वाचयेद् वा समाहितः।
उभौ तौ सुखमेधेते व्यास प्राह इदं शुभम्॥२८॥

वाचकस्य यथाशक्ति पूजां कुर्यात् महात्मनः।
मङ्गलानि प्रजाभ्यस्तु नृपेभ्यस्तु सदैव हि॥२९॥
साधुगोभूमिविप्रेभ्यः श्रीशो दिशतु मङ्गलम्॥३०॥

इति श्रीसत्योपाख्याने सूतशौनसंवादे बालचरित्रे
एकोनशीतितमोध्यायः॥७९।

पुष्पिका-(क-मातृका)
श्री श्री श्री श्री
पुष्पिका-(ग-मातृका)
शुभं भवतु संमत् १८ ८१ मिति कार्तिकमासे शुक्लपक्षे ३ चे॥



सत्योपाख्यान

(हिन्दी)

सत्योपाख्यान
(हिन्दी)

अ० १

वाल्मीकि वक्ता, श्रोता ऋषि गण। स्थान चित्रकूट।

कथा राम जन्म के पश्चात प्रारंभ होती है। चारों भाई दशरथ के पुत्र होकर उसके आँगन खेलते हैं। राजा के घर वशिष्ठ का आगमन हुआ। मुनि के आगमन का समाचार सहस्त्रों दासियों ने कौशल्या, कैकेयी आदि रानियों को दिया। सभी रानियाँ प्रसन्न भाव से पुत्रों के साथ वहाँ पहुँची। ऋषि को प्रणाम कर कौशल्या ने राम के हाथ से पूजा समर्पित करायी। इसी प्रकार सुमित्रा ने अपने दोनों पुत्रों के साथ तथा कैकेयी ने अपने पुत्र के साथ ऋषि को प्रणाम किया। ऋषि ने सभी रानियो को उनके पुत्रों समेत आशीर्वाद दिया।

अ० २

कौशल्या ने वशिष्ठ जी से अपना कुशल निवेदित करते हुए अपना स्वप्न एवं मन का सन्देह कहा कि वह अपने स्वप्न में अपने पुत्र राम को अत्यन्त प्रकाशमान शंख चक्र से युक्त एवं गरुड पर विराजमान देखती हैं। सुमित्रा ने भी अपना स्वप्न सुनाया कि वह लक्ष्मण को राजत विग्रह से युक्त सहस्त्र शिर से युक्त नाग के रूप में देखती हैं। कैकेयी ने अपने स्वप्न में भरत को शंख के रूप में देखने की बात कही। दशरथ की अन्य रानियों ने भी राम को हरि रूप में देखने की बात कही। तब वशिष्ठ ऋषि ने ध्यानस्थ होकर देखा कि भगवान् श्रीराम साक्षात् नारायण हैं एवं भूमि पर रावणादि राक्षसों के संहार हेतु अवतरित हुये हैं किन्तु इनकी माताओं को यह बोध नहीं है। यदि इन्हें सत्य का ज्ञान हो गया तो इनका रामादि पर से पुत्रभाव समाप्त हो जायेगा तथा ये वात्सल्य सुख से वंचित हो जायेंगी। ऐसा विचारकर ऋषि ने रानियों से कहा कि ये पुत्र गुण में नारायण के समान हैं, अतः स्वप्न में विष्णु के पार्षद के रूप में दिखाई पड़ते हैं। राजपत्नियों ने बच्चों को भूतादि बाधाओं से रक्षा हेतु, तथा नजर लगने (दृष्टि दोष) से बचाने के लिए उपाय करने के लिए कहा। वशिष्ठ ऋषि ने बच्चों की रक्षा हेतु नित्य प्रति वहाँ आने का वचन दिया। इसके पश्चात् वह अपने आश्रम चले गये।

अ॰ ३

एक बार भगवान् राम चन्द्र अपनी माता कौशल्या की गोद में खेल रहे थे। उसी समय धन्या नामक अतीव सुन्दरी एवं वस्त्राभूषणों से सुसज्जित धात्री वहाँ आ गई। श्रीराम चन्द्र अपनी माता की गोद से उसकी गोद में चले गये। उसने कौशल्या से कहा कि इस समय राजा दशरथ कैकेयी के भवन में हैं। मैं श्रीराम को सुन्दर आभूषणों से सजाकर राजा के पास ले जाना चाहती हूँ। कौशल्या की आज्ञा पाकर वह धात्री श्रीराम को अलंकृत कर कैकेयी के भवन में ले गई। बहुत सी सखियाँ भी राम के खिलौने लेकर उसके पीछे-पीछे गईं। वहाँ राजा रानी कैकेयी के साथ सुसज्जित भवन में बैठे थे एवं भरत को प्रेम से खिला रहे थे। धात्री ने श्री राम से राजा एवं रानी को प्रणाम करने को कहा। राम ने वैसा ही किया। राजा ने उन्हें गोद में लेकर उनके सिर पर प्रेम से सूँघा। कैकेयी ने राजा से कहा कि मुझे राम इतने अच्छे लगते हैं कि भरत भी उससे कम अच्छे लगते हैं। इतने में ही गेद खेलते हुए अपने सखाओं के साथ एवं भाई शत्रुघ्न के साथ लक्ष्मण भी वहीं आ जाते हैं। राजा दशरथ अपने पुत्रों एवं परिवार के साथ भवन में इतने सुख- मग्न हो गये जैसे स्वर्ग में अप्सराओं एवं शची के साथ इन्द्र सुख पूर्वक रहते हैं।

अ॰४

इस अध्याय में रामादि सभी भाइयों के युवा होने का उल्लेख प्राप्त होता है। कैकेयी के भवन में सभी रानियाँ आती हैं। राजा दशरथ के वचनानुसार रानी कैकेयी अपनी सभी सपत्नियों का स्वागत माला, चन्दन एवं पान के बीड़े से करती हैं। राजा अपनी रानियों के सम्मुख पुत्र-जन्म का महत्त्व प्रतिपादित करते हैं। रानियाँ रामादि पुत्रों के विवाह करने का प्रस्ताव राजा के सामने रखती हैं। उनकी बात कैकेयी की दासी मन्थरा को अच्छी नहीं लगती। वह कैकेयी को उसकी मुग्धता, सौन्दर्यगर्वित आदि का उलाहना देती है एवं पूर्व वृत्तान्त के ज्ञान न होने की बात कहती है। इसके पश्चात् वह कैकेयी को राजपत्नियों से अलग ले जाकर उन्हें उनके विवाह का वृत्त बतलाती है।

अ॰ ५

मन्थरा कैकेयी को विवाह-वृत्तान्त सुनाती है। एक बार नारद मुनि राजा दशरथ के पास ब्रह्मलोक से अयोध्या पहुँचे। उन्होंने अपने आगमन का कारण राजा को बताया कि नारद जी ने लोक भ्रमण के प्रसंग केकय नरेश की पुत्री को देखा। उस राज-कन्या की हस्त रेखा देखने के पश्चात् नारद दशरथ के पास उपस्थित हुये एवं उन्होंने दशरथ से उस कन्या के साथ विवाह करने का प्रस्ताव रखा क्योंकि उस कन्या से उत्पन्न पुत्र यशस्वी महाज्ञानी एवं तपस्वी होगा। ऐसा कहकर नारद जी ब्रह्मलोक चले गये। दशरथ अभी उस स्त्री की प्राप्ति के विषय में विचार ही कर रहे थे कि उसी समय देव योगिनी उनके पास

पहुँची एवं उनकी चिन्ता का कारण पूछा। राजा ने अपनी समस्या उसके समक्ष रखा। उन्होंने कहा कि यदि वह अपना दूत केकय-नरेश के पास भेजते हैं तो उनका उपहास होगा। दूसरी ओर नारद जी ने उस कन्या से विवाह करने का परामर्श दिया है। योगिनी दौत्य कर्म के लिये स्वयं प्रस्तुत हुई। उसने कहा कि वह अपने सामर्थ्य से गन्धर्व एवं देव स्त्रियों को भी मुग्ध कर सकती है। मानुषी की क्या बात। योगिनी ने राजा दशरथ को सहयोग का आश्वासन दिया। मार्ग में विभिन्न देशों, जनपदों नदियों आदि का अवलोकन करते हुए वह अतिशीघ्र कैकय पतन नगर पहुँची। वहाँ एक रमणीय सरोवर तट पर कुटिया बनाकर तप करने का विचार किया एवं भावी योजना बनायी। वहाँ लोग पत्तन होने के कारण स्नान करने अवश्य आते होंगे एवं अश्वपति नरेश की पुत्री भी आयेगी। पुत्री से संवाद स्थापित करके योगिनी ने कैकेय नरेश से मिलने की योजना बनायी जिससे राजा दशरथ का कार्य सिद्ध हो सकता था। इस प्रकार विचार कर तापसी वेश में उस सरोवर तट पर निवास किया। कालान्तर कैकेयी वहाँ स्नान करने पहुँची। योगिनी ने लक्षणों से यह ज्ञात कर लिया कि यही राजा अश्वपति की पुत्री है। योगिनी ने उसके लक्षण एवं रूप की प्रशंसा करते हुए कैकेयी के राजपत्नी होने की भविष्यवाणी की।

मन्थरा ने कैकेयी से आगे की कथा बताते हुए कहा कि कैकयी ने उस तापसी को राजभवन में लाकर निवास हेतु स्थान दिया एवं माता सहित सहित उस का सत्कार किया। तापसी ने कैकेयी के भाग्य के बारे में विस्तार से बताते हुये कहा कि यदि तुम्हारा पति सागर पर्यन्त पृथिवी का स्वामी हो तो तुम्हारा रूप सफल होगा।

अ० ६

कैकेयी ने उस योगिनी से ऐसे पति से विवाह संयोग हेतु प्रार्थना की। योगिनी ने उचित अवसर देखकर अयोध्या नरेश दशरथ की प्रशंसा करते हुए उनके साथ विवाह का प्रस्ताव रखा। कैकेयी ने भी कहा क़ि एक बार नारद ऋषि ने मुझसे राजा दशरथ के गुणों का वर्णन किया था। तब से मेरे हृदय में राजा दशरथ का निवास हो गया है। जिस विधि से राजा दशरेथ से मेरा विवाह हो, वह उपाय बताइये। तापसी ने उसे धैर्यपूर्वक उदासीन भाव से घर बैठने को कहा। भोजन, जल एवं मनोरंजन आदि से कैकेयी को विमुख देखकर उसकी सखियाँ कैकेयी की माता के पास गई और उनसे कहा कि जब से आपके घर में स्त्रियों को मोहित करने वाली योगिनी आयी है और उसके मुख से आपकी पुत्री ने राजाओं की कथा सुनी है, तब से उसे न भोजन की चिन्ता है और न ही शरीर की चिन्ता है। यह सब सुनकर माता शीघ्र ही कैकेयी के पास पहुँची।

अ० ७

कैकेयी की माता ने कैकेयी से उसके कष्ट का कारण पूछा। कैकेंयी ने उत्तर दिया

कि उसकी रुचि किसी वस्तु में नहीं हो रही है। तब रानी योगिनी के पास गई और हाथ जोड़कर उससे कहा कि आपके निकट मेरी पुत्री की क्या स्थिति हो गई है। लड़कियों से इस प्रकार राजाओं के गुणों की चर्चा विस्तार से नहीं करनी चाहिये। इससे उनका मन भटकता है। क्या आप यह लोक-चरित नहीं जानती है। अथवा, तपस्या में लगे होने के कारण आप लोक-व्यवहार नहीं जानती होंगी। योगिनी ने कहा कि मैं लोक व्यवहार नहीं जानती। तुम्हारी कन्या ने पृथिवी पर स्थित देशों एवं राजाओं के बारे में पूछा तब मैंने अयोध्या, सरयू नदी एवं अयोध्या नरेश दशरथ के बारे में बताया। मुझे न तो उच्चाटन आता है न ही मोहन। तुम्हारी पुत्री अनायास ही मोहग्रस्त हो गई है।

रात्रि में कैकेयी की माता अपने शयन-कक्ष में गईं। राजा ने उनको म्लान मुख देखकर कारण पूछा। रानी ने कैकेयी के अभिनिवेश को दशरथ में बताते हुए उसका विवाह दशरथ से करने का परामर्श दिया। राजा ने वैसा ही करने का आश्वासन दिया। प्रातः काल उन्होंने राजसभा में राजपुरोहित गर्ग ऋषि तथा सभी मन्त्रियों आदि से दशरथ के साथ कैकेयी के विवाह के विषय में परामर्श किया। सभी ने राजा की इच्छा का अनुमोदन किया किन्तु एक मन्त्री ने दशरथ के अधिक वय, पुत्रहीनता एवं बहुविवाह के कारण विवाह पर आपत्ति प्रकट की।

इस पर गर्ग ऋषि ने एक प्राचीन घटना सबको सुनाया। कैलास पर्वत पर अलकापुरी है, जहाँ नन्दा, गंगा एवं, अलकनन्दा नदियाँ बहती हैं। वहाँ के राजा कुबेर हैं। उन्होंने श्री हरि की प्रसन्नता हेतु यज्ञ का आयोजन किया। यज्ञ में सभी देवता गण, ऋषिगण, सपरिवार एवं गुहों के साथ शिव उपस्थित हुये। यज्ञ निर्विघ्न सम्पन्न हुआ। सभी ने यज्ञ में रावण के राक्षसादिकों द्वारा उपद्रव किये जाने का कारण भगवान् शिव से पूछा। भगवान् शिव ने सभी को भविष्य-चरित सुनाया कि अयोध्या में रघुवंशी दशरथ की तीन पत्नियाँ होंगी सुमित्रा, भानुमन्त की पुत्री कौशल्या एवं कैकेयी। उनके चार पुत्र-राम, लक्ष्मण, भरत एवं शत्रुघ्न होंगे। राम सबसे बड़े होंगे। वह पिता की आज्ञा शिरोधार्य करके वन जायेंगे एवं रावण का वध उसके पुत्र-पौत्रादिकों के साथ करेंगे। आप लोग चिन्ता मत कीजिये। गर्ग ऋषि ने कहा कि मैंने ऐसी कथा भगवान् शिव से पूर्वकाल में सुनी है। अतः कैकेयी का विवाह इक्ष्वाकु वंश के राजा के साथ होना चाहिये।

राजा ने महर्षि गर्ग से अपनी सहमति व्यक्त की किन्तु इस शर्त के साथ कि मेरी पुत्री कैकेयी से उत्पन्न पुत्र ही राजा का उत्तराधिकारी होगा। गर्ग ने उनकी बात स्वीकार करते हुये अयोध्या की ओर प्रस्थान किया।

समग्र वृत्तान्त को सुनकर कैकेयी ने योगिनी से कहा कि आप ऋषि गर्ग से भी पहले अयोध्या पुरी जाकर राजा दशरथ से मेरी दशा का इस प्रकार वर्णन कीजिए जिससे

राजा मुझे स्वीकार कर लें। योगिनी ने वैसा ही किया। राजा समग्र वृत्तान्त सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुये। इसके पश्चात् गर्ग ऋषि वहाँ पहुँचे। राजा ने उनका सत्कार किया।

अ० ८

राजा दशरथ द्वारा पूजित, सत्कृत एवं भोजन के लिये आग्रह करने पर ऋषि गर्ग ने उनके धर्म, शौर्य एवं यश की प्रशंसा की एवं अपना मनोरथ पूर्ण होने पर ही उनके अन्न को ग्रहण करने का अभिप्राय व्यक्त किया। राजा ने योगिनी के वचनों को ध्यान में रखते हुये उनकी वाञ्छा पूछी तथा पूरी करने की बात कही। गर्ग ऋषि ने बताया कि मैं काश्मीर देश के राजा द्वारा उनकी पुत्री के साथ सशर्त विवाह हेतु भेजा गया हूँ। उनकी शर्त है कि उनकी पुत्री से उत्पन्न पुत्र ही राजा होगा। राजा ने मन में विचार करने के पश्चात् विवाह के लिये सहमति व्यक्त की। गर्ग ऋषि ने भोजन के पश्चात् कैकेय पत्तन की ओर प्रस्थान किया। इधर अयोध्या में विवाह की तैयारियाँ होने लगी। काश्मीर देश के राजा द्वारा पूजित राजा दशरथ ने कैकेयी के साथ विवाह किया एवं मन्थरा के साथ कैकेयी को लेकर अयोध्या लौटे।

इस प्रकार मन्थरा द्वारा सशर्त विवाह वृत्तान्त सुनाने पर कैकेयी ने उसकी निन्दा की। इसी मध्य राजा ने कैकेयी को शत्रुघ्न द्वारा बुलवाया। चलते-चलते भी मन्थरा ने कैकेयी को उसकी साड़ी खींच कर समझाना चाहा।

अ० ९

मन्थरा के द्वारा साड़ी पकड़ कर खींचे जाने पर शत्रुघ्न ने उसे कैकेयी को छोड़ने को कहा तथा मन्थरा के कूबर पर गेंद मारते हुये माता का हाथ पकड़ पिता के पास ले गये। पीछे-पीछे गिरती-पड़ती चलती हुई मन्थरा बच्चों के साथ शत्रुघ्न के चिढ़ाने पर रोती हुई राजा के सामने उपस्थित हुई। राजा से शत्रुघ्न की भर्त्सना की और कहा कि उसी ने मुझे कुब्जा नाम से आपके राजभवन में कुख्यात किया है। पुनः उसने सुमित्रा से कहा कि तुम्हीं ने उसे ऐसा करने के लिए प्रेरित किया है। अभी सुमित्रा उसे समझा रही थी कि तभी श्रीराम की सुन्दरी धात्री धन्या वहाँ पहुँच गयी तथा कुब्जा से बच्चों से खेल-खेल में हुये अपराध को क्षमा करने को कहा तथा यह भी कहा कि तुम्हारे कूबर पर वज्रपात नहीं हो गया है, जो तुम रो रही हो। मन्थरा ने उसे भी बुरा-भला कहा तथा उस पर आरोप लगाया कि सब उसी का किया-धरा है। न राम को वहाँ वह लाती, न सभी की मातायें वहाँ आतीं, न कुछ होता। उसको सान्त्वना देते हुये एवं प्रच्छन्न परिहास करते हुये राजा दशरथ ने उसके कूबर पर हल्दी का लेप लगाने के लिए कहा, जिस पर मन्थरा ने राजा को उनके कहे का फल मिलने की बात कही। कैकेयी ने तथा अन्यों ने मन्थरा की भर्त्सना की। इसके पश्चात् मन्थरा लज्जित होकर एक कोने में चली गई। रानियाँ अपने भवन में

एवं राजा दशरथ कौशल्या के भवन में चले गये।

शौनक ऋषि ने सूत से मन्थरा का श्रीराम चन्द्र से द्रोह एवं उसके पूर्व जन्म का वृत्तान्त पूछा।

अ०१०

सूत ने मन्थरा के पूर्व जन्म का वृत्तान्त एवं रामराज्य में उसके द्वारा कराये गये विघ्न का वर्णन किया। लोमश ऋषि ने इस कथा का वर्णन किया था। दैत्य राजा प्रह्लाद के पुत्र विरोचन हुये। ये अत्यन्त दानी धर्मात्मा सत्य प्रतिज्ञ थे। मन्थरा इनकी पुत्री थी। राजा विरोचन ने एक बार देवों का राज्य जीत लिया जिससे देवता लज्जित एवं श्रीहीन होकर देव गुरू बृहस्पति की शरण में गये एवं राज्य-प्राप्ति का उपाय पूछा। बृहस्पति ने देवों को ब्राह्मण वेश में उसके भवन में जाकर उसके आयु को दान-स्वरूप माँग लेने का परामर्श दिया। देवों ने वैसा ही किया। यद्यपि विरोचन देवों के छद्म रूप को पहचान गये थे तथापि उनकी पूजा कर उनकी याचना पूछी। ब्रह्म रूप धारी देवों के द्वारा आयु माँगने पर विरोचन ने हँसते हुये शरीर का त्याग कर दिया। स्वर्ग से दैत्य के शरीर पर पुष्प-वर्षा होने लगी तथा दैत्य गण अत्यन्त दुःखी हो गये।

दुःखी दैत्यों ने एक बार सभा में इस पर विचार किया कि देवों ने छलपूर्वक हमारे राजा को मारा। हमें क्या करना चाहिए। इस पर असुर-कार्यों में निपुण विरोचन पुत्री मन्थरा ने कहा कि मैं अपनी विद्या से आप सबकी रक्षा करूँगी। आप लोग निर्भय होकर देवों को मारने के लिए प्रस्थान करें। इससे उत्साहित दैत्यगण अपने-अपने वाहनों पर आरूढ़ होकर ससैन्य चल पड़े। दैत्यों के उत्साह एवं प्रस्थान को देखकर देवदूत ने दैत्यों को प्रदान की जाने वाली मन्थरा द्वारा सहायता के विषय में इन्द्र को बताया। देवराज ने भी देवों को दैत्यों के वध हेतु आज्ञा दी। दोनों पक्षों में भयानक युद्ध हुआ। दैत्य गण पराजित होकर मन्थरा के वचनों का स्मरण करते हुये उसकी शरण में पहुँचे। मन्थरा देवों के विनाश हेतु आत्म विद्या से अपने गृह से निकल कर आकाश में चली गई।

अ०११

आकाश में स्थित मन्थरा ने सभी देवादिकों की गणना करके सभी को पाश-बद्ध कर दिया। उनके वाहनों एवं विमानों को भूमि पर गिरा दिया तथा उन्हें भी पाश से बाँध दिया। इसके पश्चात् देवों को घसीटने लगी। सभी देवता लज्जित हो गये तथा गन्धर्व देवों की निन्दा करने लगे। तब विश्वावसु ने उन्हें रोका। अपने स्वामी द्वारा भर्त्सित होने पर देवों की स्तुति करने लगे।

अ॰१२

गन्धर्वों द्वारा स्तुत देवगण मन्थरा के वध के लिए प्रयत्नशील हो गये। उन्होंने इन्द्र से प्रार्थना की कि इसे मार डालना चाहिये किन्तु इन्द्र स्त्री होने की कारण उसके वध के लिए उद्यत नहीं हुये। इसके पश्चात् देवता विष्णु के शरणागत हुये। विष्णु युद्ध के लिए तैयार हो गये तथा देवादिकों द्वारा उनकी स्तुति हुई।

अ॰ १३

विष्णु ने इन्द्र से कहा कि आप मन्थरा-वध के लिये प्रवृत्त होइये क्योंकि पापी व्यक्ति को, चाहे वह स्त्री हो, पुरुष हो या नपुंसक हो मारने में दोष नहीं लगता है। विष्णु से आज्ञा पाकर इन्द्र मन्थरा की ओर बढ़े एवं मन्थरा पर प्रहार किया। वज्रप्रहार से उसका मस्तक चूर्ण-हो गया। सभी दैत्य युद्ध क्षेत्र छोड़कर भाग गये। विष्णु भगवान् एवं सभी देवता अपने-अपने भवन चले गये। देवों के जाने के पश्चात् सभी दैत्य मन्थरा के समीप पहुँचे। मन्थरा ने उन्हें अपने को छोड़ कर भाग जाने पर धिक्कारा एवं डोली पर आरूढ़ कर घर ले चलने को कहा क्योंकि उसका सिर फट गया था, ग्रीवा एवं कटि भग्न हो गई थी तथा पीठ पर कूबर निकल आया था। घर पहुँच कर वह जोर-जोर से रोने लगी एवं दैत्यस्त्रियों ने उसे घेर लिया।

अ॰१४

दैत्य-पत्नियों को देखकर मन्थरा ने अपनी छाती पीटते हुये तथा असुरों को कोसते हुये कहा कि रण क्षेत्र में मेरी यह दशा तुम्हारे पतियों के कारण हुई है। इस पर दैत्यस्त्रियों ने उसका प्रतिवाद किया कि तुम अपने प्रबल पौरुष के प्रदर्शन हेतु रणक्षेत्र में गई थी। अथवा अपने रूप एवं यौवन के प्रदर्शन के माध्यम से देवों को मुग्ध करने गई थी। इसी प्रकार दैत्य स्त्रियों द्वारा उपहास उड़ाने पर मन्थरा ने रोते हुये कहा कि यह उपकार का परिणाम है। यह इन्द्र बड़ा ही पापी है जिसने एक स्त्री को युद्ध में मारा है। अथवा, यह दोष इन्द्र नहीं बल्कि विष्णु का है। बल्कि पुराणों मे इसके कुकृत्यों की अनेक कथायें हैं। इसने राम बनकर ताडका को तथा नन्द-सुत कृष्ण बनकर पूतना को मारा। वेदों में कहा गया है कि पराई स्त्रियों के साथ गमन नहीं करना चाहिए किन्तु वृन्दा के पति के वध हेतु इसने वृन्दा के साथ गमन किया। विष्णु का कथन है कि प्राणियों पर दया करो किन्तु स्वयं युग-समाप्ति पर प्रलय करता है। इस प्रकार यह अत्यन्त मायावी है। इसके कर्म भी प्रायः निरर्थक होते हैं-- यथा वृषभ के पीठ पर जिह्वा, बकरी के कण्ठ में स्तन ऊँट के पीठ पर कूबर आदि।

इसके भक्तों के कार्य भी इसी प्रकार होते हैं। प्रह्लाद के कारण विष्णु ने नरसिंह रूप धारण कर उसके पिता हिरण्यकशिपु को मारा। इसी प्रकार भक्त ध्रुव ने कठिन तप

के द्वारा विष्णु को सन्तुष्ट कर अपने भाई को मारा। अधिक कहने से क्या लाभ। यदि मैं जीवित रही तो इसी शरीर से अन्यथा मृत्यु के पश्चात् अन्य शरीर से विष्णु को अत्यधिक कष्ट दूँगी। यह कूबर मुझे अत्यधिक कष्ट दे रहा है। इसी प्रकार सोचती हुई उसकी मृत्यु हो गयी एवं वह पुनः काश्मीर में उत्पन्न हुई। उसकी कैकेयी से प्रगाढ़ मैत्री हो गई जिससे राजा ने उसे भी कैकेयी के साथ भेज दिया एवं राजा दशरथ ने उसे स्वीकार कर लिया। दीर्घ काल बीत जाने पर भी मन्थरा पूर्व वैर को भूल नहीं सकी एवं उसने राम के राज्याभिषेक में विघ्न उत्पन्न किया। किन्तु श्रीराम साक्षात् परमात्मा हैं। वह रावण के वध हेतु सीता के साथ दक्षिण दिशा में दण्डक वन, चित्रकूट आदि पर्वतों पर जा रहे हैं। अतः शोक नहीं करना चाहिये।

अ॰ १५

अयोध्या वासियों ने लोमश ऋषि से पूछा कि मन्थरा यद्यपि अत्यन्त पाप-बुद्धि की थी किन्तु किस पुण्य के प्रभाव से वह अयोध्या पहुँची। लोमश ऋषि ने कहा कि सभी मनुष्यों के बन्धन एवं मोक्ष का कारण उसका मन होता है। मन्थरा ने भले ही क्रोध वश लेकिन मन से मृत्यु के समय विष्णु का स्मरण किया था। उसने वेद में सुन रखा था कि देवों के कार्यसिद्धि के लिये महाविष्णु साकेत में निवास करेंगे। उसने अन्तिम समय में विचार किया कि विष्णु के कार्य में विघ्न डालने हेतु मैं भी वही रहूँगी। उसी प्रभाव से वह इस जन्म में अयोध्या पहुँची है। सदा राम का मनन, चिन्तन, स्मरण एवं दर्शन करने के कारण, चाहे कोई भी भाव हो वह निश्चित रूप से मृत्यु के अनन्तर मोक्ष को प्राप्त करेगी। सभी अयोध्यावासी भगवान् जगन्नाथ की मूर्ति हैं। अयोध्या नगरी धन्य है जहाँ नारायण ने अपने आपको चार विग्रहों में स्थापित किया है।

अ॰ १६

शौनक जी द्वारा पूछे जाने पर सूत ने श्री रामचन्द्र जी की लीला का वर्णन किया। राजा दशरथ एक बार पुत्र राम को अपने गोद में लेकर राजसभा में गये। वहाँ उपस्थित जनों एवं गन्धर्वादिकों ने श्रीराम का रूप एवं सौन्दर्य देखा। इस प्रसंग में भगवान श्रीराम के सामुद्रिक लक्षणों की चर्चा की गई है।

अ॰ १७

एक बार देवों, लोकपालों, ऋषियों एवं पितरों ने अयोध्या-स्नान का मन बनाया। इन्द्र, पार्वती सहित शिव, ब्रह्मा तथा गणेश अपने-अपने वाहनों पर आसीन होकर तथा गन्धर्व एवं अप्सरायें विमान से अयोध्या पुरी पहुँचे। उन्होंने तीर्थ को प्रणाम किया। इन्द्राणी ने इन्द्र से परिहास करते हुये पूछा कि ये सभी देव किस देवता, तीर्थ या देश को प्रणाम कर रहे हैं। इस पर इन्द्र ने इन्द्राणी को कर्मभूमि भरतखंड की महिमा बतायी कि यहाँ शुभ

कर्म करने से ही जीवादि देवत्व को प्राप्त करते हैं। मेरे इन्द्रत्व की प्राप्ति में यहाँ किये गये १०० यज्ञों का अनुष्ठान तथा तुम्हारे यहीं सम्पादित पुण्य कर्म देवराज की पत्नी बनने के कारण बनें।

इन्द्र ने भरत खण्ड के पुण्य क्षेत्र जगन्नाथ पुरी, काशी, गया, प्रयाग, चित्रकूट, महेन्द्रादि पर्वत, व्यङ्कटेश सेतुबन्ध रामेश्वर, द्वारका, मायापुरी (हरिद्वार), मथुरा, वृन्दावन तथा अयोध्या आदि स्थलों का परिचय इन्द्राणी को कराया। इन्द्राणी ने उन्हें प्रणाम किया।

अ० १८

इन्द्राणी के समान सावित्री अपने पति प्रजापति से स्थान के तथा उसके माहात्म्य के विषय में प्रश्न किया। ब्रह्मा ने स्थान का परिचय अयोध्या पुरी के रूप में दिया एवं यहाँ भगवान् विष्णु के रामावतार का प्रसंग बताते हुये सरयू नदी एवं अयोध्या पुरी का माहात्म्य बताया।

अ० १९

इस अध्याय में अयोध्या पुरी की आर्थिक समृद्धि का वर्णन किया गया है। सरयू के किनारे अत्यन्त विशाल बाजार था जहाँ अन्न के सहस्रों पर्वताकार ढेर लगे थे एवं अन्य वस्तुओं की दुकाने थीं। वहाँ क्रेता एवं विक्रेता दोनों ही विभिन्न देशों से आते थे। क्रेता विभिन्न वस्तुओं को खरीद कर अपने जलपोतों में रखते थे एवं अपने सामानों को बाजार में बेचते थे। वहाँ मणियों, मरकत, मुक्ता, गजमुक्तादि की दुकानें थीं। नगर में सर्वत्र प्रसन्नता एवं समृद्धि थी एवं वृष्टि आदि यथावसर होती थी। इस स्थान की शोभा एवं समृद्धि देखकर सभी देवादिकों ने ब्रह्मा से कहा कि युवतियाँ अतीव सुन्दरी एवं वस्त्राभूषण से सुसज्जित हैं तथा पुरुष भी इसी प्रकार हैं, जबकि स्वर्ग में ऐसा नहीं है, ऐसा क्यों है। कोई स्वर्ग क्यों जाना चाहेगा।

ब्रह्मा ने इस प्रश्न के उत्तर के लिए उन्हें स्वायम्भुव मनु के समक्ष जिज्ञासा प्रस्तुत करने के लिये कहा। उसी समय मनु अपने विमान से वहाँ गये। सबने अपना प्रश्न उनके समक्ष प्रस्तुत किया। मनु ने उत्तर दिया कि सभी प्राणी स्वर्ग प्राप्ति हेतु कर्म करते हैं क्योंकि भूतल पर जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि है। मल-मूत्र युक्त मानव शरीर नष्ट हो जाते हैं जबकि स्वर्ग में सभी सदैव युवा रहते हैं। शरीर से दुर्गन्ध नहीं उठता तथा न तो शरीर की छाया पड़ती है न ही वस्त्र गन्दे होते हैं। नेत्रों पर पलक नहीं होती अतः स्वर्गस्थ जन भूतल के प्राणियों से श्रेष्ठ होते हैं। यह सुनकर देवगण अति प्रसन्न हुये। किन्तु नारद जी ने कहा कि हे-राजन् तुम्हारा कथन पूर्णतः सत्य है तथापि अयोध्या माहत्म्य की दृष्टि से स्वर्ग से भी श्रेष्ठ है। क्योंकि स्वर्ग में वास करने पर पुण्यक्षीण हो जाने पर पुनः भूतल पर जन्म-मरण के चक्र से गुजरना पड़ता है किन्तु अयोध्या में मरने वाले मानव तथा अन्य

योनि के जीव भी वैकुण्ठ लोक के उस शीर्ष स्थान को प्राप्त करते हैं, जहाँ जाकर पुनः इस लोक में नहीं आना पड़ता। इसलिये अयोध्या स्वर्ग से भी बढ़कर है। विधाता ने अपने दोष के नाश के लिये पृथिवी पर बहुत सी स्त्रियों की रचना की। जब विधाता ने अत्यन्त सुन्दरी अहल्या की रचना की तो कहा गया कि यह रचना विधाता से घुणाक्षर न्याय से संयोगवशात् हो गई है। सुन्दर स्त्री अहल्या की रचना घुणाक्षर न्याय से नहीं हुई अपितु हस्त कौशल से हुई है। इसी को सिद्ध करने के लिए विधाता ने बहुत सी स्त्रियों की रचना की। अयोध्या में सभी स्त्रियाँ श्री की मूर्ति एवं पुरुष हरि की मूर्ति हैं। इसमें सन्देह नहीं है।

अ० २०

अयोध्या नगरी में स्फटिक निर्मित ऊँची-ऊँची अट्टालिकायें चन्द्र किरणों से युक्त होकर ऐसी प्रतीत होती हैं मानों चन्द्रकान्त से जलधारा अट्टालिकाओं पर गिर रही हो। यहाँ के भवन मणियों से निर्मित, स्तम्भ सुवर्ण निर्मित, पाकशाला की भूमि नीलरत्न निर्मित एवं आँगन रत्न जटित थे। गृहों में पिंजरे में सारिका तोता आदि पक्षी होते थे। स्त्रियाँ क्षौभ तथा कौशेय वस्त्र धारण करती थीं। राजमार्ग अत्यन्त दीर्घ थे जिन पर अश्व, गज एवं निर्बाध चलते थे। नगर बड़े-बड़े वृक्षों से युक्त था। इस नगर में अशोक वन, शान्तानिक वन, मन्दार वन, पारिजात वन, चन्दन वन, चम्पक वन, रमणक वन, प्रयोदक वन, आम्र वन, पनस वन, करम्ब वन आदि विविध प्रकार के १२ वन थे। इन बारह वनों में युवा वर्ग, आखेटक एवं राजा आदि क्रीडा करते थे। ब्रह्मा ने इनका परिचय कराते हुये अपने तथा देवों के विमानों को सरयू के समीप भूमि भाग पर उतारा। सभी ने सरयू तट पर स्नान-दान किया।

अ० २१

उसी समय ब्रह्मा के पुत्र वसिष्ठ ब्रह्मा के समीप पहुँचे। ब्रह्मा ने उनसे राजा दशरथ का एवं श्रीराम का कुशल-श्रेय पूछा। वशिष्ठ ने बताया कि राजा अपने पुत्रों के साथ आप का अभिनन्दन करने आ रहे हैं। ब्रह्मा ने हँसते हुये वसिष्ठ से कहा कि तुम देवों के साथ जाकर कहो कि मैं स्वयं उनके घर उनसे मिलने आ रहा हूँ। उसका कारण उन्होंने बताया कि जिसके घर में पुत्र रूप में स्वयं रमापति रामचन्द्र अपने भाइयों सहित हैं उसका दर्शन करने मैं स्वयं आऊँगा क्योंकि श्रीराम ही जगत-के मूल कारण हैं। किन्तु, उनका रामतत्त्व हमें प्रकट नहीं करना चाहिये। ऐसा करने से उनके पिता एवं नगरवासियों को अधिक सुख प्राप्त होगा। वसिष्ठ ने राजा दशरथ को ब्रह्मा का सन्देश दिया। देवों के साथ ब्रह्मा वहाँ पहुँच गये। राजा ने उनके आगमन का सन्देश पाकर अपने पुत्र राम को गोद में लेकर देवादिकों का यथोचित स्वागत सम्मान किया एवं उनके आगमन से अपने को धन्यभाग कहा।

अ० २२

ब्रह्मा जी ने राजा दशरथ के भाग्यवान् होने की बात को पकड़ते हुये उन्हें नारायण के समान पुत्रों के पिता होने के कारण अत्यन्त भाग्यवान् कहा क्योंकि उनके पुत्र युगों तक गो, ब्राह्मण, साधु एवं पृथिवी के रक्षक होंगे एवं इनके चरित पापों का नाश करेंगे। राजा अपने पुत्र के गुणों को सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुये। तदनन्तर नारद ने श्री नारायण की स्तुति की। राजा दशरथ के कहने पर उनके पुत्र की रक्षा हेतु श्रीराम जी के मस्तक, कण्ठ, वक्ष एवं चरणों का स्पर्श किया एवं बाहर चले गये।

अ० २३

राजा ने देवादिकों से कहा कि आज एकादशी तिथि है, अत: आप सभी मेरे गृह में फलाहार कीजिये, क्योंकि जिसके घर में देव, ब्राह्मण या ऋषि भोजन नहीं करते उनका गृह शून्य हो जाता है। ब्रह्मा ने कहा कि एकादशी को फलाहार भी नहीं करना चाहिए। फलाहार करना मध्यम होता है तथा अन्न खाना निन्दनीय होता है। अत: दो बार भोजन नहीं करना चाहिये। इसमें रात्रि में जागरण एवं दिन में हरिकीर्तन करना चाहिये। ब्रह्मा ने कहा कि आपके दर्शन से ही हम तृप्त हो गये हैं। राजा ने उन सबसे अपने पुत्र की रक्षा हेतु प्रार्थना की। ब्रह्मा ने गणेश से रक्षा हेतु प्रार्थना की। गणेश ने अपने कानों को हिलाते हुये अपने सूँड को राम के ऊपर तेजी से रक्षा हेतु घुमाया। राम ने भी कौतुक वश रोना प्रारम्भ कर दिया। गणेश ने अपना सूँड समेट लिया। इसके पश्चात् सभी देवी एवं देवों ने उनकी रक्षा हेतु उपचार किया।

अ० २४

गणेश के सूँड से डरे राम को राजा दशरथ ने अन्त:पुर में भेज दिया। कौशल्या ने भयभीत राम के लिए रक्षा मन्त्र का पाठ सभी रानियों के साथ मिलकर किया। इस रामरक्षाकर-स्तुति के पाठ से अन्य शिशुओं की भी रोग, भूत प्रेत, अल्पायु आदि से रक्षा होती है।

अ० २५

इस अध्याय में श्रीराम की बालक्रीडाओं का वर्णन है। शिशु राम अपने भाइयों के साथ आँगन में घुटने के बल चलते हुये खेल रहे थे। मातायें अपनी गोद में लेने के लिये उन्हें बुला रही थी। वे अपने नूपुरों के स्वर एवं करधनी के घुँघरुओं के स्वर सुनकर आश्चर्यचकित हो रहे थे। दर्पण में अपना मुख देखकर यह दूसरा बालक है ऐसा मान कर श्रीराम अपने हाथ से उसे छूते थे किन्तु उसे पकड़ न पाने के कारण रोने लगते थे। स्तम्भ में अपना प्रतिबिम्ब देखकर हँसने लगते थे। इसी प्रकार लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्न आदि की विविध बाल लीलाओं का वर्णन है।

अ० २६

इस अध्याय में काक भुशुण्ड की कथा है। यह हरि का परम भक्त था। वह रामदर्शन की लालसा से वहाँ पहुँचा। उसने हाथ में पूड़ी लेकर खाते हुये श्रीराम चन्द्र को देखा। उसके मन में यह सन्देह उठा कि बालक किस प्रकार परब्रह्म हो सकता है। यदि यह राम विश्वम्भर ईश्वर हैं तो मुझे अपनी शक्ति दिखायेंगे। ऐसा सोचकर राम के हाथ से पूड़ी लेकर आकाश में उड़ गया। श्रीराम चन्द्र ने भी उसके मन्तव्य को जानकर अपने एक रूप को वहीं छोड़ा एवं दूसरे रूप से उसके साथ दौड़ने लगे। जहाँ-जहाँ भुशुण्ड जाते थे वहाँ-वहाँ अपने पीछे श्रीराम को देखते। पाताल लोक में पहुँचकर उन्होंने देखा कि शेषनाग की गोद में श्रीराम खेल रहे हैं। इसके पश्चात् भुशुण्ड माघवती पुरी गये। वहाँ सिंहासन पर आसीन राम को देखा जिसको शक्र पंखा झल रहे थे। वीतहोत्र के नगर में अग्नि द्वारा सेवित राम को देखा। समन एवं निर्ऋति के भवनों में बालक रामचन्द्र पूजित देखा। इसी प्रकार वरुण, वायु, चन्द्र एवं शिव के लोक में, स्वर्ग लोक, में सत्यलोक में अज के गृह में श्रीराम को देखा। इसके बाद भुशुण्ड पृथिवीलोक पर आये। उन्होंने अपने पीठ पर बालरूप राम को देखा। पुनः राम को भयभीत करने के लिये अपने स्वरूप को अत्यन्त भयानक एवं पर्वताकार बनाया। तब श्रीराम ने गरुड को याद किया एवं आते ही उस पर सवार होकर काक के पीछे भागे एवं राम के आदेश पर गरुड ने काक को नीचे गिरा दिया एवं उसके वक्ष पर चढ़ बैठे। पीड़ित भुशुण्ड ने बालरूप राम की स्तुति की। स्तुति से प्रसन्न श्रीराम ने उसे क्षमा किया। भुशुण्ड ने गरुड के चरणों में भी प्रणाम किया। गरुड ने काक को उठाया एवं उससे राम-तत्त्व के विषय में प्रश्न किया। भुशुण्ड ने गरुड से कहा कि श्रीरामचन्द्र के चरणकमलों के स्पर्श से मुझे ज्ञान प्राप्त हुआ है। पुनः भुशुण्ड ने राम की स्तुति की। श्रीराम ने सदा उसके हृदय में निवास का उसमें एवं उसके आश्रम में माया का कभी भी प्रभाव न होने का वचन दिया।

अ० २७

इस अध्याय में राम के शैशव एवं माता-पुत्र के प्रेम का वर्णन किया गया है। एक बार कौशल्या सहित सभी रानियाँ, दासियाँ एवं राजा दशरथ अपने सभी बच्चों के साथ खेल रहे थे, उसी समय विश्वावसु संज्ञक गन्धर्व आ गये। राजा ने सभी रानियों के साथ उनका स्वागत किया। गन्धर्व ने राजा एवं रानी को वर्धापन देते हुये उनकी प्रसन्नता हेतु नृत्य-संगीत का कार्यक्रम प्रस्तुत किया। मृदङ्ग, मुरज, वंशी वीणा आदि तारों वाले यन्त्र एवं विविध वाद्यों का वादन प्रस्तुत किया। उनके साथ आयी अप्सराओं ने नृत्य प्रस्तुत किया। उन्होंने रघुवंशी राजाओं पर आधारित नाटक भी प्रस्तुत किया। इन प्रस्तुतियों को देखकर राजा, रानी एवं अन्य सभी जन, यहाँ तक कि श्रीराम चन्द्र भी मुग्ध हो गये। वह माँ के गोद से निकल

कर गन्धर्व की गोद में चढ़ गये। विश्वावसु ने भी संगीत छोड़कर बालक को गोद में लेकर अपने आप को धन्य माना। कौशल्या आदि राम की माताओं ने विश्वावसु को अपने यहाँ रह जाने के लिये कहा। विश्वावसु ने अपनी असमर्थता जताते हुये कहा कि उसे देवराज इन्द्र ने संगीत हेतु अपने यहाँ नियुक्त किया है अतः उनकी आज्ञा के बिना आपके घर में रहना सम्भव नही है। उनसे पूछ कर पुनः वापस आ जाऊँगा। राजा दशरथ ने तो अनुमति दे दी किन्तु कैकेयी क्रुद्ध हो उठी। उन्होंने कहा कि इन्द्र उसे हमारे घर में रहकर गाने से मना नहीं करेंगे। यदि वह पद के मद के कारण ऐसा करते हैं तो हमारे राजा उन्हें अपने बाणों से मार गिरायेंगे।

इसके पश्चात् कैकेयी ने राजा दशरथ से कहा कि बाण में पत्र लपेट कर इन्द्र लोक भेजिये। इन्द्र वैसा करें जिससे गन्धर्व यहीं रुकें। दशरथ ने वैसा ही किया। पत्र पढ़कर इन्द्र ने राजा दशरथ की बात को उनसे पूर्व मैत्री एवं सहयोग को ध्यान में रखते हुये स्वीकार किया किन्तु बिना अपराध के रानी कैकेयी के कठोर वचनों का फल देने का मन में निश्चय किया। उन्होंने देवों से कहा कि मैं रावण के वध हेतु राम के राज्याभिषेक के उत्सव में विघ्न उपस्थित करूँगा एवं यह कार्य कैकेयी के कंठ में वाणी को स्थापित कर कैकेयी के वचनों द्वारा कराऊँगा।

तदनन्तर इन्द्र ने अपने दूत को भेज कर राजा दशरथ को गन्धर्वादिकों के अपने पास रखने का संदेश दिया। राजा दशरथ अतीव प्रसन्न हुये। उन्होंने इन्द्र को दूत द्वारा प्रणाम पूर्वक धन्यवाद भेजा। विश्वावसु गन्धर्व अपने साथियों के साथ रामादि राजपुत्रों एवं अन्य लोगों का मनोरंजन करने लगे।

अ० २८

भगवान् राम की विविध बाललीलाओं का वर्णन इस अध्याय में प्राप्त होता है। एक बार रानी कौशल्या अपने पुत्र श्रीराम के साथ दासियों से घिरी हुई अट्टालिका पर चढ़ गयी। अपने गोद में पुत्र को लेकर उन्हें ऐसी प्रसन्नता हुई जैसे कोई दरिद्र निधि प्राप्त कर प्रसन्न होता है। इसी मध्य राजा दशरथ सुमित्रा के भवन में गये एवं अपने गोद में लक्ष्मण एवं शत्रुघ्न को बैठा कर प्रेम से देख रहे थे। इसी समय कौशल्या की एक दासी सुमित्रा के भवन में गयी। वहाँ राजा एवं रानी सुमित्रा को एक साथ हँसते-बोलते देखकर संकोच वश कौशल्या के भवन में चली आई। उसने वहाँ लक्ष्मण एवं शत्रुघ्न को देखा। उसे दोनों स्थानों पर बालकों को देखकर आश्चर्य हुआ। अपने भ्रम के निवारण हेतु वह कई बार दोनों भवनों में गई किन्तु दोनों स्थानों पर एक ही समय में लक्ष्मण एवं शत्रुघ्न को उपस्थित देखकर वह आश्चर्य चकित हो गयी। उसे बार-बार आते जाते देखकर राजा दशरथ ने उसके भ्रम एवं मोह का कारण पूछा। राजा द्वारा कई बार पूछने पर उसने बताया कि उसने

एक ही समय में दशरथ की गोद में एवं राम के निकट कौशल्या की गोद में भी लक्ष्मण एवं शत्रुघ्न को देखा है। उसकी बात सुनकर राजा भी आश्चर्यचकित हुये एवं उसके साथ जाकर उन्होंने भी रामचन्द्र को साथ लक्ष्मण एवं शत्रुघ्न को खेलते हुये देखा। पुनः गवाक्ष में से सुमित्रा के भवन की ओर देखा तो वहाँ भी लक्ष्मण एवं शत्रुघ्न खेल रहे थे। उन्हें भी सन्देह हुआ। राजा ने वशिष्ठ ऋषि को बुलवाया एवं दोनों स्थानों पर बालकों के दिखाई पड़ने का कारण पूछा। वशिष्ठ ऋषि ने ध्यान लगाकर इन बालकों के दिव्य स्वरूप को ज्ञात कर लिया किन्तु उन्हें यह उचित नहीं प्रतीत हुआ कि राजा को यह रहस्य बताया जाय। उन्होंने राजा से कहा कि यह गन्धर्वों का कार्य है। गान्धर्व विद्या के प्रभाव से सुमित्रा के भवन में सदा रहने वाले भरत एवं शत्रुघ्न आपको यहाँ दिखाई पड़ रहे है। आप चाहें तो गन्धर्व को बुला का पूछ लें। बुलाये जाने पर गन्धर्व उपस्थित हुये किन्तु उसके कन्धे पर भी दोनों बालक बैठे थे। राजा को सर्वत्र बालकों को देखकर हँसी आ गई। कुछ देर में राजा के निकट से बालक अन्तर्धान हो गये। वशिष्ठ ने राजा से कहा कि चूँकि लक्ष्मण राम के पायस के अंश से उत्पन्न हैं अतः लक्ष्मण राम के पास सदा रहें एवं भरत के साथ शत्रुघ्न खेलें। राजा दशरथ ने मुनि के जाने के बाद इस प्रकार की व्यवस्था की। सुमित्रा ने भी राजा दशरथ की आज्ञा का अनुपालन किया।

अ० २९

एक बार राजा दशरथ अपने वस्त्राभूषित पुत्र श्रीराम को लेकर घर से बाहर निकले। अट्टालिका पर स्थित रघुवंशी वीरसिंह की रत्नकला संज्ञक वधू राजा की गोद में भगवान् राम को देखकर इतनी मोहित हो गई वह अपने देह, गेह आदि को भी भूल गई तथा अचेत हो गई। उसकी सखियों ने उसे संभाला। वह अपने हृदय में यह लालसा करने लगी कि उसे अपनी गोद में श्रीराम को खिलाने का अवसर प्राप्त हो। उसके पति ने उसकी अत्यन्त उत्तम चिकित्सा करायी। वीरसिंह ने राज भवन में भी रत्नकला के अस्वस्थ होने की सूचना दी। कौशल्या ने रत्नकला के दुःख को सुनकर उसे देखने अपने पुत्र श्रीराम एवं परिजनों के साथ उसके भवन पहुँची। रानी कौशल्या को देखकर रत्नकला पर्यंक से उठ खड़ी हुई। उन्हें निकट ही आसन पर बैठाया एवं उनकी गोद में श्रीराम को देखकर उसका दुःख दूर हो गया। रत्नकला ने हाथ फैलाकर राम को अपनी गोद में बुलाया। भगवान उसकी आन्तरिक इच्छा को जानकर उसकी गोद में गये। रत्नकला ने उन्हें यथेच्छ दुलराया एवं मन से भगवान् विष्णु से प्रार्थना की कि मुझे भी राम जैसा पुत्र हो। रत्नकला का दुःख दूर हो गया। उसके दुःख एवं सुख का कारण कोई नहीं जान सका। बिना राम के मन की स्थिति कौन समझ सकता है।

अ० ३०

शौनक ऋषि ने सूत जी से पूछा कि किस जन्म में रत्नकला श्रीराम की माता बनी।

सूत ने आगे की कथा सुनाते हुये कहा कि रामचन्द्र जी को पुत्र रूप में पाने की कामना से रत्नकला अपने पति के साथ भगवान् राम की प्रेरणा से वशिष्ठ ऋषि के आश्रम में गई। वहाँ विष्णुमित्र नामक वशिष्ठ-शिष्य से उनकी भेंट हुई। उनके आगमन की सूचना अपने शिष्य द्वारा पाकर राम से प्रेरित वशिष्ठ ऋषि ने उन्हें अपने पास बुलाया। प्रणामादि कुशलक्षेम के अनन्तर वशिष्ठ ऋषि ने उनकी यात्रा का प्रयोजन पूछा। रत्नकला ने अपनी इच्छा को शब्दों में व्यक्त करने में संकोच किया। तब ध्यानस्थ होकर ऋषि ने उसके मन में विराजमान बाल-राम पुनः उसी शिशु को बाल-कृष्ण के रूप में देखा। इसके पश्चात् ऋषि ने रत्नकला से कहा कि तुम्हारा मनोरथ पूर्ण होगा किन्तु कष्टपूर्वक होगा। तुम दोनों उस स्थान पर जाओ जहाँ नारायण मुनि आज भी लोक-कल्याण हेतु तपस्या करते हैं। इस स्थान का नाम कलाप ग्राम है। वहाँ जाकर तुम दोनों चैत्र मास की पुनर्वसु नक्षत्र से युक्त नवमी से भगवान् जगन्नाथ की आराधना प्रारम्भ करो। उस दम्पती ने पुत्र रूप में रघुनन्दन का ध्यान करते हुये रामचन्द्र जी के नाम का निरन्तर जप किया। उनके उत्कट तप से प्रसन्न होकर मुनि ने उन्हें आशीर्वाद दिया कि द्वापर युग में उनका नन्द एवं यशोदा के नाम से गोकुल में जन्म होगा तथा श्रीराम कृष्ण रूप में तुम्हारे पुत्र बनेंगे।

इसके पश्चात् वीरसिंह एवं रत्नकला वापस अपने घर आ गये। इन लोगों ने ब्राह्मणादिकों को प्रभूत दान दिया। पुनः ये लोग राजा दशरथ के पास गये। राजा ने उनकी प्रशंसा की एवं उन्हें तीर्थाटन तथा भगवान् जगन्नाथ की आराधना का उपदेश दिया जिसमें उनकी मनोकामना पूर्ण होगी। दोनों हरि के आश्रम में पहुँचे। वहाँ वर्षों तक रहकर नवमी व्रत, तीर्थस्नान, जप एवं ध्यान किया। तब श्रीराम ने प्रसन्न होकर उन्हें दर्शन दिया एवं वर माँगने को कहा। दोनों ने श्री भगवान् की प्रेरणा से वर माँगा कि हमने जितने वर्ष तपस्या की है उतने वर्ष आप हमारे घर में पुत्र बन कर रहें और हम आपके ईश्वरीय तत्त्व को न जानें। श्रीराम ने उन्हें तथास्तु कहा एवं यह भी कहा कि द्वापर युग के अन्त में आप लोग वैकुण्ठ धाम जायेंगे एवं मोक्ष होगा।

ऐसा कहकर श्रीराम चले गये एवं इस दम्पती ने देह त्याग कर विष्णु लोक को प्रस्थान किया। वहाँ उन्होंने द्रोणोधर यज्ञ किया एवं तय किया। ब्रह्मा ने भी उन्हें श्रीहरि को पुत्र रूप में प्राप्त करने का आशीर्वाद दिया।

वीरसिंह एवं रत्नकला की यशोदा एवं नन्द के रूप में उत्पति हुई। भगवान् ने मथुरा में वसुदेव एवं देवकी के घर जन्म लिया किन्तु अपने वरदान को पूरा करने के लिये अपने माता-पिता को छोड़ कर राघव ने कृष्ण रूप में नन्द के गृह में निवास किया एवं उनके

भी वीरत्व पूर्ण कृत्य उसी प्रकार हैं जिस प्रकार राम के रहे हैं। दोनों में कोई भेद नहीं है-

रामस्तु कृष्णरूपेण रामरूपेण माधवः।
तयोः भेदं न कर्तव्यं कृत्वा वै पापमाप्नुयात्।।

--३०।६१

इस कारण से भगवान् हरि ने ११ वर्ष पर्यन्त गोकुल में निवास किया। इसके पश्चात् मथुरा प्रस्थान किया।

अ॰ ३१

शौनक ने सूत से नवमी व्रत की विधि एवं माहात्म्य पूछा। सूत जी ने इस विषय का प्रतिपादन इतिहास पूर्वक किया।

त्रेता युग में महेन्द्र पर्वत पर ऋषि अगस्तय ने तप किया। इस पर्वत के अधो भाग में ऋषि एवं ऊर्ध्वभाग में देवगण निवास करते थे। वही सुतीक्ष्ण संज्ञक शिष्य ने मुनि से नवमी व्रत का माहात्म्य पूछा। सुतीक्ष्ण ऋण ने नवमी तिथि का फल, व्रत की विधि, एवं पाप के क्षय के विषय में प्रश्न किया।

अ॰ ३२

अगस्त्य ऋषि ने नवमी तिथि का महत्त्व बताते हुये कहा कि चैत्र मास के शुक्ल पक्ष की नवमी तिथि को पुनर्वसु नक्षत्र में मध्याहन वेला में कौशल्या ने पुत्र को जन्म दिया। उस समय प्रसन्न होकर देवों, गन्धर्वों आदि ने वाद्य बजाया। राम जन्म के कारण यह तिथि एवं व्रत सभी व्रतों में उत्तम है। इस दिन व्रत पूजा एवं महोत्सव करने वाले मुक्ति प्राप्त करते हैं एवं यह तिथि सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाली है। इस दिन भोजन करने वाले घोर नरक को प्राप्त करते हैं। इस तिथि पर पितरों का तर्पण करने से उन्हें विष्णु-पद की प्राप्ति होती है। राम नवमी व्रत से तुलापुरुष दान का फल, कुरूक्षेत्र में दान का फल, पुनर्जन्म से मुक्ति आदि फल प्राप्त होता है। वैष्णवों को अष्टमी युक्त नवमी छोड़ देना चाहिये। नवमी में व्रत एवं दशमी में पारण करना चाहिए। श्रीराम का उनके परिवार सहित अन्यन्य भाव से ध्यान एवं द्वादशाक्षर मन्त्र का जप करना चाहिये।

सुतीक्ष्ण के मन्त्र विषय का प्रश्न करने पर अगस्त्य ऋषि ने 'श्रीराम' नाम के मन्त्र का उपदेश दिया। श्री राम के पूजन हेतु उनकी स्थापना एवं वस्त्राभरणों की चर्चा की, पुनः द्वादशाक्षर मन्त्र का तथा षोडशोपचार पूजन की विधि का उपदेश दिया। पूजन समाप्ति के पश्चात् मन्त्र निहित अर्घ का विधान है। इसके पश्चात् पुराणों, स्तोत्रपाठों, वेदपाठ, नृत्य गीत आदि से रात्रि जागरण कर स्नान, जप करने के पश्चात् दशाक्षर मन्त्र से श्री हरि को प्रणाम करने से व्रत, पूजन सम्पन्न होता है।

अ॰ ३३

नवमी पूजन के इतिहास एवं माहात्म्य की प्रसंग में पाँच पापियों की कथा आती है। मरुकान्तार स्थान पर पाँच पापी हुये जिनमें एक लुम्चक नाम का तेली, शंकुनामक जुलाहा, लुण्ठक संज्ञक नट, जन्तुहा नामक धीवर (मछुआरा) तथा धर्महा नामक कुम्भकार था। पञ्चग्राम में पाँचों एक साथ रहते थे। तेली को तेल पेरने से गो दोष हुआ। गुप्तचरों द्वारा दोष का ज्ञान होने पर राजा ने उसे ग्राम से बाहर कर दिया। तन्तुकार का अपने छोटे भाई की पत्नी से सम्बन्ध था। नट वन में सदा पथिकों को लूटता रहता था। जुलाहे के घर धनुष एवं बाण के साथ पापी व्यक्ति टिका था। राजा ने दोनों को पकड़ कर डण्डे मरवाये। मछुआरा एवं कुम्हार चोरी करते थे। राज पुरुषों ने एक बार चोरी करते हुये पकड़ा एवं बाँधकर राजा के समक्ष ले गये। राजा ने उन्हें मारने के स्थान पर देश-निकाला दे दिया क्योंकि चोरों के लिये सिर-मुँडवाना, उनका धन लेना तथा देश निकाला दण्ड है किन्तु उनका वध नहीं किया जाता है। इन पाँचो महापापियों -तेली, नर, कुम्हार जुलाहा तथा मछुआरे की भेंट वन में होती थी। वहाँ से ग्रामों में आकर ये पाँचों चोरी, छिनैती, वेश्यागमन, मद्यपान एवं मांसाहार आदि कुकृत्य करते थे। राजा ने उन सभी को अपने देश से बाहर निकाल दिया। इसके पश्चात् विभिन्न स्थानों पर घूमते हुये वे कुकृत्य करते रहे। एक बार चैत्र मास में राम नवमी पड़ी।

इन्द्रप्रस्थ देश से अयोध्या स्नान के लिये लोग चल पड़े। वे पापी उनके साथ चोरी एवं लूट की इच्छा से साथ हो लिये। यात्रियों के पूछने पर उन्होंने अपने बारे में बताया कि हम मरु-कान्तार स्थान के निवासी हैं। आप लोगों के साथ तीर्थयात्रा के लिए हम भी चल रहे हैं। मार्ग में उन पापियों को चोरी करने का अवसर नहीं प्राप्त हुआ। ये भी अयोध्या पहुँच गये। अयोध्या नगरी में काम, क्रोध, लोभ, दण्ड, स्तम्भ, मत्सर, निद्रा, तन्द्रा, आलस्य एवं पैशुन्य ये दश विघ्न मूर्तिमान् होकर हाथ में दण्ड लिये स्थित थे। उन्होंने इन पापियों को दण्ड लेकर मारने के लिए दौड़ाया। तब असित नामक एक दयालु मुनि ने मूर्तिमान् विघ्नों को उन्हें मारने से रोका एवं कहा कि इससे उनके पापतारण में अतीव पुण्य होगा। विघ्नों के हट जाने पर उन चोरों ने असित मुनि से पूछा कि कौन हमें रोक रहा है, कृपया आप हमारे सन्देह को दूर करें।

असित मुनि ने कहा कि आप लोग अतीव भाग्यशाली हैं जो आपलोगों का यहाँ आगमन हुआ। ये विघ्न हैं जो अयोध्या में नराधमों को आने से रोकते हैं। मैंने उन्हें रोक दिया तथा वे आप लोगों को छोड़ कर वापस चले गये। अब आप लोग विधिपूर्वक अयोध्या की यात्रा कीजिये जिसके प्रभाव से आपके पाप नष्ट हो जायेंगे। तब चोरों ने उनसे तीर्थयात्रा की विधि पूछी।

असित मुनि ने कहा कि जिसके हाथ-पैर एवं मन नियन्त्रित हो जो विद्या, तप एवं कीर्ति से युक्त हो, मन, वाणी एवं शरीर से पाप न करे, यथा- शक्ति दान दे, वह तीर्थ का फल प्राप्त करता है। स्वर्ग द्वार पर पहुँच कर मुण्डन कराये, स्नान करके जन्म स्थान का दर्शन करे तो व्यक्ति गोहत्यादि पापों से उसी क्षण मुक्त हो जाता है। चैत्र शुक्ल पक्ष की राम जन्म की नवमी आ गयी है। सभी आये हुये मनुष्य, देव, गन्धर्व एवं किन्नर आदि सरयूनदी में स्नान करके राम जन्म-स्थली का दर्शन करेंगे। आप लोग भी ऐसा ही करें एवं अत्यन्त अद्‌भुत एवं आश्चर्यजनक परिणाम देखें। ऐसा कहकर असित मुनि अन्तर्धान हो गये।

अ॰ ३४

ये पाँचो चोर अत्यन्त प्रसन्न भाव से नगर में प्रविष्ट हुये। उन्होंने आगे अयोध्या नगर की मूर्ति को देखा। यह देवी श्वेत वस्त्र पहने, दिव्य चन्दन से सुसज्जित, गले में दिव्य माला पहने अतीव सुन्दर लग रही थीं। चक्र पर आरूढ यह मनोहर मुख वाली देवी शंख एवं चक्र धारण किये थीं। वह चारों ओर सखियों से घिरी हुई थी। उनके द्वारा श्री अयोध्या जी को चामर डुलाये जा रहे थे। श्रीराम की प्रिय यह आदि पुरी देवों द्वारा सेवित, वशिष्ठ तथा वामदेव आदि मुनियों द्वारा पूजित अत्यन्त निर्मल थी। पुरी के इस स्वरूप का दर्शन उन चोरों को हुआ किन्तु अन्य यात्रियों को नहीं हुआ इसका कारण असित मुनि की संगति एवं उनका वर था।

चोरों के पापों को देखकर उस पुरी ने गदा लेकर उसे दौड़ाया। चोरों को भय हुआ कि क्या ये हमें मार डालेंगी। तभी उनके शरीर से पाप-समूह मूर्तिमान् होकर निकले। उनके वस्त्र नीले, मुख कठोर, नोक नीची, लोहे के आभूषण पहने, लाल केश वाले, कुछ हस्त-रहित कुछ पाद-रहित, कुछ नेत्र हीन, कुबड़े, काने, भयंकर एवं कुछ कोढ़ी थे। ये पाप-मूर्तियाँ विभिन्न वेषधारण किये थीं एवं युद्ध के लिये उद्यत होकर अयोध्या के सम्मुख गई। अयोध्या ने उन्हें गदा से मारा। वे सभी पाप वहाँ से भाग गये एवं पुरी से बाहर जाकर पीपल के वृक्ष आश्रय में जाकर भीषण रुदन करने लगे। पुरी ने उन चोरों का पुकारा और वे स्वर्ग-द्वार में प्रविष्ट हो गये। यह तिथि चैत्र मास की नवमी थी। सरयू नदी में स्नान कर उन चोरों ने श्रीराम के जन्म स्थान का दर्शन किया। इसके पश्चात् वे पाप मुक्त हो गये।

उस समय यम ने दोनों चित्रगुप्तों को बुलाकर उनके कान में पाँचों चोरों के पापों के परिमार्जन की बात कही। दोनों चित्रगुप्त अत्यन्त दुःखी होकर बोले कि हमने जो दीर्घ काल तक पापादि का लेखन किया, हमारा वह परिश्रम व्यर्थ चला गया। ऐसे तो कलिकाल में सभी पापी राम जन्म के अवसर पर साकेत जाकर पाप मुक्त हो जायेंगे। किन्तु यम

का आदेश हुआ कि चोरों के पापों का सम्मार्जन हो।

अ. ३५

यम-दूत सदा ही पृथिवी पर घूमते रहते हैं। उन्होंने पीपल पर स्थित दुःखी एवं शोकाकुल पाप विग्रहों को देखा एवं उनसे उनका परिचय पूछा।

पाप-मूर्तियों ने बताया कि हम मरुकान्तार स्थान में उत्पन्न हैं एवं पापियों द्वारा पालित हैं। ये पापी वेदोक्त मर्यादा को छोड़कर एवं अपने माता-पिता को छोड़कर प्रेम पूर्वक हमारा पालन-पोषण करते रहे हैं। ये यात्रियों के संग साकेत नगर आये। यहाँ पुरी ने हम सभी पापों को बहुत मारा जिससे दुःखी होकर हम चोरों का शरीर छोड़कर यहाँ निवास कर रहे हैं। आज चैत्र की राम नवमी है। आज व्रत, सरयू-स्नान एवं श्रीराम के जन्म-भूमि के दर्शन के प्रभाव से सभी चोर मुक्त होकर विमान से सन्तानक लोक चले गये। उनसे वियुक्त होकर हम अत्यन्त दुःखी हैं।

यमदूतों ने उन्हें सान्त्वना देते हुये कहा कि आपका आपके मित्रों भेंट करान में हम सहयोग करेंगे। यह विमला अयोध्या इतनी धृष्ट है कि पापियों को सद्गति प्रदान कर रही है। आप लोग यहीं ठहरे हम यम से कंह कर आते हैं।

यमदूतों ने संयमनी पुरी जाकर यम से पापों के दुख को कहा। यम ने उनसे कहा कि आप सब श्री हरि का माहात्म्य, अयोध्या का माहात्म्य, चैत्र शुक्ल नवमी का माहात्म्य एवं श्री राम जन्म-भूमि का माहात्म्य नहीं जानते हैं तभी आपकी बुद्धि विमला अयोध्या के प्रति दोषयुक्त हो गयी है। यदि स्वयं पुरी जिसके प्रति प्रसन्न हैं उसका यमराज भी क्या बिगाड़ लेंगे। तुम लोगों के दोषपूर्ण चिन्तन हेतु क्षमा-प्रार्थना करने मुझे नीचे जाना पड़ेगा। इसके पश्चात् यमराज भी भूत-प्रेत आदि गणों के साथ भैंसे पर सवार होकर अयोध्या पुरी पहुँचे। वहाँ साकेत नगरी के निकट उन्होंने शिल्पिराट् विश्वकर्मा को देखा। यम ने उनसे पूछा कि वह आज नवमी को कहाँ से आ रहे हैं तथा कहाँ जा रहे हैं। विश्वकर्मा ने उत्तर दिया कि मैं सरयू-जल में स्नान करके देवों के साथ जन्म-भूमि का दर्शन कर के आ रहा हूँ तथा ब्रह्मा के आदेश से उस परम स्थान पर जा रहा हूँ। वहाँ यात्रियों, नवमी व्रत करने वालों एवं सरयू स्नान करने वालों के लिये गृह-निर्माण करूँगा। विश्वकर्मा का उत्तर सुनकर यम-दूत आश्चर्यचकित रह गये। यमराज अपने भृत्यों को अयोध्या माहात्म्य सुनाते हुये वहाँ पहुँचे। अपने भैसे को छोड़कर हाथ जोड़ कर नगरी को मंत्र पढ़ते हुये "ऊँ विमलायै नमः" कह कर प्रणाम किया। गोप्रतार (गुप्तार घाट) पुरी का मुख भाग है एवं उससे पूर्व कण्ठ भाग है। वहाँ सरयू तट पर स्थित होकर यमराज ने अयोध्या पुरी की स्तुति की। अयोध्या पुरी ने स्तुति से प्रसन्न होकर वर माँगने को कहा। यमराज ने पुरी देवी से चोरों के शरीर से निकले पापों के मोक्ष-विधान के विषय में पूछा।

अयोध्या ने कहा कि सरयू तट पर यम-स्थल संज्ञक स्थान है। उर्ज मास के शुक्ल पक्ष की द्वितीया को जो वहाँ स्नान करेंगे उन्हें तुम्हारा भय नहीं होगा। पीपल पर जो चोरों के पाप हैं एवं तुम्हारे भी पाप मेरे वचनों के प्रभाव से नष्ट हो जाँये। जो कोई भी प्रातः उठकर मेरे इस अष्टक का पाठ करेगा उसके सभी पाप नष्ट हो जायेंगे एवं सकल अभीष्ट सिद्ध होंगे। इसके पश्चात् यम अन्तर्धान हो गये। उन पाप-विग्रहों का विनाश हो गया।

अगस्त्य-प्रोक्त अयोध्या माहात्म्य के विषय में यह निर्देश है कि इसे शठों, पापियों गुरु एवं वेद के निन्दकों को नहीं सुनाना चाहिये। यह विष्णु भक्तों के लिये विहित है।

अ. ३६

इस अध्याय में श्रीराम के बाल्यकाल का वर्णन है। सभी भाइयों सहित श्रीराम अपने मित्रों के साथ खाते एवं खेलते हैं। एक बार राजा दशरथ शुक्रमास की पूर्णिमा को सरयू-स्नान के लिये गये। राम ने अपने साथियों से पूछा कि पिता जी कहाँ गये हैं। हम सभी वहीं चलेंगे। वेत्रधर रक्षकों ने कहा कि राजा सरयू नदी गये हैं। बच्चों सहित राम ने भी वहाँ जाने की इच्छा प्रगट की। वेत्रधरों ने कन्धे पर बैठाकर उन्हें राजा के पास पहुँचाया। राजा उस समय स्नान-ध्यान के पश्चात् चलने के लिये उद्यत थे। राजा ने राम को गोद में लिया। उन्होंने सभी बच्चों से श्री सरयू को प्रणाम करने को कहा।

अ. ३७

राजा दशरथ ने सरयू-स्तुति की। सरयू देवी वशिष्ठ ऋषि की मानस-पुत्री हैं। इन्हें नारायण के नेत्रों से उत्पन्न कहा गया है। राजा ने उनकी पापनाशिनी महिमा का गान करते हुये उनसे अपने पुत्रों को अपनी शरण में लेने, उनकी रक्षा एवं पोषण के लिये प्रार्थना की। सरयू देवी ने कुमारों को दर्शन देने हेतु वस्त्राभूषणों से सुसज्जित रूप धारण किया एवं उनके सम्मुख उपस्थित हुईं। राजा एवं रामादि पुत्रों ने उनका चरण-स्पर्श किया। सरयू ने उन्हें आशीर्वाद देकर राम को अपने गोद में उठा लिया एवं उनके गले में स्वयं मुक्ता-माला डालकर उनके शिरो-भाग को प्रेम से सूँघा। उन्होंने राजा से कहा कि तुम्हारे ये बालक सम्पूर्ण लोकों में सभी के इष्ट होंगे। ये मेरे कोख में ही बसते हैं, यह तथ्य ज्ञानचक्षुओं से जाना जा सकता है। आपके द्वारा किये गये अष्टक के पाठ से लोगों को सभी तीर्थों में स्नान का फल प्राप्त होगा। इसके पश्चात् उन्होंने रामादि को अपनी कुक्षि में दिखाया। राजा देखकर आश्चर्यचकित रह गये। उन्होंने उनकी उत्पत्ति के बारे में प्रश्न किया।

सरयू ने अपनी उत्पत्ति की कथा सुनाई। सृष्टि के प्रारम्भ में भगवान् विष्णु के नाभि से उत्पन्न ब्रह्मा जी ने विष्णु की आज्ञा से तप किया। भगवान् का ध्यान करत हुये उन्होंने गरुड़ पर सवार भगवान् विष्णु को देखा जो अत्यन्त वेग से त्रिलोक से आये हुये थे। भगवान् विष्णु ने उन्हें अपने भक्ति में परायण देखकर उनका स्पर्श किया एवं उनके नेत्रों से जल

चू पड़ा। भगवान् विष्णु का सुख-स्पर्श पाकर ब्रह्मा ने अपने नेत्रों को खोल कर उनका दर्शन किया। कुंभक विधि से तप-ध्यान आदि का परित्याग किया तथा उन्हें दण्डवत् प्रणाम करके उनके मधुर सौन्दर्य को निहारने लगे। भगवान् विष्णु के नेत्रों से गिरे हुये जल को उन्होंने हाथों में लेकर अत्यन्त प्रेम से कमण्डलु में स्थापित किया तथा अपने चारों मुखों से उनकी स्तुति करने लगे। ब्रह्मा के स्तोत्र से प्रसन्न होकर भगवान् विष्णु उन्हें वर देकर चले गये। ब्रह्मा ने भगवान् के नेत्र-जल को ब्रह्म द्रव के रूप में ग्रहण कर एक मानस सर की मन के संकल्प से रचा की एवं उसी में उस जल को स्थापित किया।

कालान्तर राजा दशरथ के पूर्वज इक्ष्वाकु हुये। उनके काल में वशिष्ठ ऋषि ने मानस सर जाकर नदी के लिये तप कर के मञ्जुकेशी भगवान् को प्रसन्न किया। उन्होंने प्रसन्न होकर उनकी नदी सम्बन्धी कामना की पूर्ति हेतु मानस सर में स्थापित नेत्र-जल को नदी रूप में प्रदान किया। मैं (सरयू) वही नदी हूँ जो सरोवर से निकल कर आगे वशिष्ठ एवं उनके पीछे मैं (सरयू) अयोध्या पहुँची। विष्णु के नेत्र से उत्पन्न होने के कारण भगवान् विष्णु सरयू नदी के कुक्षि में वास करते हैं। जो भक्त जन सदा सरयू नदी की कुक्षि में विराजमान भगवान् राम का ध्यान करते हैं उन्हें भोग एवं मोक्ष दोनों लाभ साथ प्राप्त होते हैं। परब्रह्म ने भक्तों की रक्षा तथा दुष्टों के वध हेतु राजा दशरथ की तपस्या से सन्तुष्ट होकर उनके गृह में श्री राम के रूप में जन्म लिया है।

इस प्रकार अपनी उत्पत्ति के विषय में बता कर श्री सरयू देवी अनतर्धान हो गई। सभी अयोध्या वासी विस्मित होकर राजा दशरथ एवं सरयू नदी को धन्य-धन्य कहने लगे। इसके पश्चात् राजा दशरथ अपने बच्चों के साथ शीघ्र ही अपने गृह चले गये। श्री राम चन्द्र की कथा मधुर एवं सुखकारक होती है।

अ. ३८

भगवान् श्री राम के भाइयों के अतिरिक्त अनेक सखागण थे। कौशल्या के गृह में अनेक पाककर्म में निपुण सूद-गण थे जो अत्यनत प्रेम-पूर्वक श्री राम एवं उनके साथी बालकों को भोजन बना कर खिलाते थे। भोजन के पश्चात् बालकों के साथ राम कन्दुक-क्रीडा करते थे। सभी नगर वासी नर-नारी उनके कन्दुक-क्रीडा का अवलोकन अत्यन्त प्रेम से करते हैं। दिन भर क्रीडा के पश्चात् रात्रि वेला में अपने भाइयों के साथ सुन्दर एवं कोमल बिस्तर पर विश्राम करते थे।

अ. ३९

भगवान् श्रीराम अपने भाइयों एवं साथियों के साथ छोटे-छोटे धनुष-बाण लेकर सरयू नदी के तट पर लक्ष्य-सन्धान की क्रीडा करने लगे। दोपहर के समय राजा दशरथ अपने गृह में भोजन के लिये बैठे किन्तु बच्चों को न देखकर उन्होंने भोजन करने से मना

कर दिया एवं उनके बारे में पूछा। राजस्त्रियों ने शिबिकावाहकों को बालकों को लाने के लिये भेजा। बच्चों ने पिता की आज्ञा सुनकर बच्चे नगर की ओर शिबिका छोड़कर चल पड़े। गृह पहुँच कर बच्चे हाथ-पैर धोकर पिता के साथ भोजन के लिये बैठ गये। पिता ने प्रसन्न भाव से भोजन करते हुये श्रीराम से लक्ष्य-सन्धान के विषय में पूछा। उन्होंने चललक्ष्यसन्धान, शब्दोत्पत्ति सन्धान आदि के बारे में प्रश्न किया तथा उन्हें भाइयों के साथ अन्य विद्यायें सिखाने का भी आश्वासन दिया।

अ. ४०

शौनक ऋषि ने सूत से श्री राम की अन्य क्रीडा-कथाओं को पूछा। सूत जी ने बताया कि एक बार कौशल्यादि रानियों की सेविकाओं ने आपस में कहा कि राम आदि कुमार दिन में धनुष-बाण लेकर सरयू तट पर चले जाते हैं तथा हम दिन में उन्हें नहीं देख पाते। अतः हम लोग उनके धनुष-बाण तथा तलवार को छिपा देते हैं। इनके बिना कैसे वे लोग खेलने जायेंगे। रात्रि में दासियों ने वैसा ही किया कौशल्या आदि को इसका ज्ञान नहीं था। प्रातः राम ने जगने पर अपने साथियों को देखकर धनुष-बाण से खेलने का मन बनाया। उन्होंने लक्ष्मण से लाने के लिये कहा। लक्ष्मण को नहीं प्राप्त हुआ। राम ने अपनी अन्तर्दृष्टि से सेविकाओं के मनोभावों को समझ लिया। उनकी प्रसन्नता हेतु उन्होंने नर-लीला किया। चारों भाइयों ने प्रथमतः माताओं एवं धात्रियों से धनुष-बाण के बारे में पूछा। उनसे नकारात्मक उत्तर पाकर उन्होंने दासियों से पूछना प्रारम्भ किया। दासियों एवं श्रीराम के मध्य हुये संवाद श्रृंगार-रस प्रधान हैं। इसके पश्चात् श्री राम ने मन्थरा से धनुष-बाण के विषय में प्रश्न किया। उसने उत्तर दिया कि तुम्हारा धनुष-बाण चूल्हें में गया। उसके वाक्य को सुनकर लक्ष्मण अत्यन्त क्रुद्ध हो गये उन्होंने हाथ में कशा लेकर उसे मारने के लिये दौड़ाया। उसने कैकेयी के भवन में भाग कर अपनी रक्षा की। सेविकाओं ने रामादि भ्राताओं को उनका परिहास में छिपाये गये धनुष-बाण को प्रदान किया। वे सभी भाई अपने साथियों के साथ क्रीडा करने सरयू तट पर चले गये।

अ. ४१

भगवान श्री राम खेलते हुये सरयू तट पर पहुँचे। वहाँ एक नाविक धीवर ने प्रणाम कर श्रीराम चन्द्र से कहा कि एक अतिबलशाली महिष इस क्षेत्र में घूम रहा है तथा उस मार्ग से जाने वालों को दौड़ा रहा है। अतः आप अपने साथियों के साथ उधर मत जाइये। किन्तु धीवर की बात सुनकर उन बालकों ने संकेत में लक्ष्मण को भैंसे वाले स्थान पर चलने को कहा। सभी वहाँ पहुँचे तथा वहाँ धनुष से टंकार किया। शब्द सुनकर वह महिष पूँछ उठाये एवं सींगों से भूमि खोदते उनके सम्मुख उपस्थित हो गया बच्चों ने उसे अपने तीर एवं खड्ग आदि से मारने का निश्चय किया। तब तक सहसा वह महिष राम के

सम्मुख उपस्थित हो गया एवं उन्हें दौड़ाया। राम ने सामान्य बाण से ही उसे मार गिराया। उस महिष ने अपना रूप त्याग कर दिव्य अलंकारों से सुसज्जित देह धारण किया। वह बिल्व नामक गन्धर्व था। उसने श्री राम की स्तुति की। श्रीराम ने उससे उसके महिष स्वरूप का कारण पूछा। बिल्व ने बताया कि पूर्व काल में वह अपने गान-विद्या के प्रभाव से गर्वोन्मत्त रहता था एवं यज्ञादिकों में अन्य गन्धर्वों को जीत कर अत्यन्त प्रसन्न होता था। एक बार कुरूक्षेत्र में वैवस्वत मनु के यज्ञ में भी उसने अपने गान विद्या से अन्य गन्धर्वों को जीत लिया। वहाँ महर्षि नारद ने बिल्व को जीतने की इच्छा से वीणा बजायी। गन्धर्व को उनका गान एवं वादन समझ में नहीं आया। उसने उनके संगीत की प्रशंसा नहीं की। महर्षि नारद ने उसे यज्ञ में आये लोगों का उपहास उड़ाने के कारण उसे महिष होने का शाप दिया एवं शाप से मुक्ति का उपाय श्रीराम द्वारा मूर्धा पर बाण-ताडन बताया। आज उसे यह सुवसर प्राप्त हुआ। इसके पश्चात् बिल्व अपने लोक एवं श्रीराम चन्द्र अपने भाइयों एवं साथियों के साथ घर लौट आये।

अ. ४२

श्रीरामादि सभी बालैक प्रातः काल उठकर दैनिक क्रियाओं से निवृत्त होकर आखेट के लिये निकल पड़े। वनों में घूमते हुये श्रीराम को एक मनुष्याकार वल्मीक (दीमक की बाँबी) दिखा जो कुशों, सर्पों के कञ्चुक, लता-गुल्मादिकों से आवृत था। उत्सुकता वश राम अपने साथियों के साथ वहाँ पहुँचे तथा उन्होंने अपने हाथ से वल्मीक को छुआ। देखते ही देखते वह वल्मीक दिव्य-देही बन गया। वह पीताम्बर, माला-मुकुट एवं कुण्डल आदि अलंकारों से अलंकृत, मस्तक पर तुलसी की माला से सुशोभित था। वह श्री राम के चरणों पर गिर पड़ा। श्री राम ने उससे उसका परिचय पूछा। उस वल्मीक से उत्पन्न दिव्यदेही ने कहा कि मेरा नाम डिंडिरोह किरात है एवं हिमाचल मेरा वास है। मैं धनुष-बाण लेकर सदा ही आखेट हेतु धूमा करता था।

एक बार पशु मृग-समूह के पीछे भागते-भागते मैं सायंकाल थक कर मार्ग में गिर पड़ा। मृग-यूथ भय वश वन में घुस गया था। संयोगवश वही २५ साधु-गण वहाँ आ गये एवं उन्होंने दयावश अपने साथ चलने का आमन्त्रण दिया। रात्रि बीतने पर उन्होंने शालिग्राम का पूजन किया एवं मुझे प्रसाद दिया। साधुओं के दर्शन तथा शालिग्राम शिला के दर्शन एवं चरणामृत से मेरे पाप दूर हो गये तथा नैवेद्य से मन शुद्ध हो गया। उन्होंने पशु-वध से उत्पन्न पाप तथा यमालय में उसके परिणाम के विषय में बताया। उन साधुओं की बातें सुनकर मुझे ज्ञान हुआ तथा मैंने साधुओं से उनके साथ तीर्थयात्रा करने की प्रार्थना की। उनके साथ तीर्थाटन करते हुये मैं अयोध्या पहुँचा। वहाँ संगम, गोप्रतार एवं स्वर्ग द्वार आदि स्थानों पर होते हुये वे महात्मा इस पुलिन पर पहुँचे। यहाँ तीन रात्रि पर्यन्त निवास करने

के पश्चात् वे अन्य तीर्थों की ओर प्रस्थान कर गये एवं तपस्या कर के वे स्वर्ग चले गये। मैं भी यही नारायण का ध्यान करते हुये समाधिस्थ हो गया एवं मुझे अपना शरीर भी विस्मृत हो गया। परिणामस्वरूप मेरे शरीर में वाल्मीक हो गये। आपके स्पर्श से मुझे पुनः अद्भुत शरीर प्राप्त हो गया। आप साक्षात् नारायण हरि हैं। आपने मेरा उद्धार किया। आपको प्रणाम है।

इसके पश्चात् डिंडिर ने श्री राम के ब्रह्मरूप का वर्णन करते हुये उनकी स्तुति की।

अ. ४३

(इस अध्याय में श्री राम किशोरावस्था पार कर यौवन में पदार्पण कर चुके हैं।)

एक बार श्री राम चन्द्र जी ने अपने भाइयों के साथ प्रातः कालीन दैनिकक्रिया से निवृत्त होकर आखेट हेतु अपने साथियों को बुलाया। साथ ही आखेट में सहायक कुत्ते पकड़ने वाले, जालधारक, सेन, सिंह, लकड़बग्घा, कुलिंग पक्षी आदि के पालन करने वालों को भी बुलवाया। इनके अतिरिक्त अनेकों गजारोही, अश्वारोही, रथारोही एवं उष्ट्रारोही वीर भी धनुष-बाण एवं भुशुंडी आदि अस्त्रों से सुसज्जित वहाँ उपस्थित हुये। श्रीराम ने सुसज्जित होकर, माता एवं पिता से आज्ञा लेकर भाइयों के साथ प्रस्थान किया। रामचन्द्र ने शोण संज्ञक अश्व पर, भरत ने उच्चैः श्रवा संज्ञक अश्व पर, इसी प्रकार लक्ष्मण एवं शत्रुघ्न अपने अपने अश्व पर सवार होकर तथा हाथ में कशा लेकर लोगों के देखते देखते प्रस्थान किया। उस समय अनेकों वाद्य बजने लगे।

प्रस्थान के समय राजकुमारों के ऊपर चामर से हवा किया जा रहा था। श्री रामचन्द्र ने हरा उष्णीष, हरा कञ्चुक तथा हरे मणियों के आभूषणों को धारण कर रखा था। उनके स्कंध पर तीन स्थानों से नत धनुष एवं दो तुणीर थे। दाहिने हाथ में रत्न-मुद्रा थी। वह स्वर्णपुच्छ वाले बाण को धीरे-धीरे घुमा रहे थे। वह कान में कुण्डल, प्रसाधित केश, मस्तक पर तिलक, रत्नमाला से सुशोभित तथा कमर पर खड्ग बाँधे हुये थे। उनके पैरों में उपानह थे। उनके इस सुसज्जित रूप को देखकर सभी नगरवासी नर-नारी राजा दशरथ के एवं उनकी रानियों के भाग्य को सराहते रहे। नगर की रमणियाँ राम को रमा के भाव से प्रेमपूर्ण दृष्टि से देखती रही। जो श्री राम प्रलय काल में विष्णु रूप में समग्र जगत् को पीकर समुद्र में शयन करते हैं, उन राम को एक रसिक-स्त्री ने एक ही आँख से भावों द्वारा पी लिया। अनेक स्त्रियों ने उन्हें मातृभाव से देखा एवं उनके लिये अपने प्रिय उद्गार व्यक्त किये।

इसके पश्चात् निषादराज गुह अपने सभी आयुधों से युक्त होकर एवं सेवकों से घिरे हुये श्रीराम को वन-वन में आखेट की शिक्षा देने के लिये महाराज दशरथ की आज्ञा

से उपस्थित थे। श्री राम ने उनसे प्रेम पूर्वक आखेट-प्रशिक्षण हेतु आग्रह किया। गुह ने कहा-आप स्वयं ही सभी को शिक्षा प्रदान करने वाले हैं। आपको क्या शिक्षित करना है, तथापि आपकी आज्ञानुसार आपको आखेट की शिक्षा दूँगा। इसके पश्चात् निषादराज घोड़े पर सवार सहित चल पड़े। सरयू तट पर सैनिकों ने अश्व एवं गजादिकों की क्रीडा करायी।

अ. ४४

इसके पश्चात् गुह की सेना धीरे-धीरे अयोध्या के वन में तमसा नदी के तट पर पहुँची। निषादराज गुह ने वन्य-जीवों का क्षेत्र चुन कर श्रीराम के सम्मुख उपस्थित वन की भयानकता, लता-पुष्पों से शोभा, भयानक वन्य जीवों की उपस्थिति आदि का वर्णन किया।

गुह की बात सुनकर श्रीराम ने कुत्तों को एवं उनके साथ जालधारकों को जाने का आदेश दिया। ऐसा होने पर वन में कोलाहल उत्पन्न हुआ एवं जीव-जन्तु अपना स्थान छोड़कर माण्डव्य ऋषि के स्थान पर पहुँचे। माण्डव्य ऋषि ने शिष्यों से राजकुमारों के आगमन का वृत्तान्त सुना एवं श्रीराम के निकट पहुँच गये। श्री रामादि ने ऋषि को प्रणाम किया। ऋषि ने वन्य फलों को उनके स्वागत हेतु अपने हाथों से दिया। श्रीराम ने आश्रम के कुशल-क्षेत्र के बारे में पूछा। माण्डव्य ऋषि ने अपने आश्रम के निकट होने वाले आखेट को रोकने की बात कही क्योंकि आश्रम के निकट हिंसा का वातावरण बनता है तथा इससे आखेटक को महान् दोष होता है। उन्होंने आखेट हेतु वहाँ से दक्षिण गोमती नदी के तट पर सैन्य-क्रीडा हेतु परामर्श दिया। श्री राम ने वैसा ही किया।

अ. ४५

श्री राम ने वसन्त ऋतु को देखकर विदूषक को देखा। विदूषक ने उनका भाव समझ कर वसन्त ऋतु का वर्णन प्रारम्भ किया। विदूषक ने सूर्य के उत्तरायण के कूँजने की तथा आम्रादि एवं विविध पुष्पों की चर्चा की एवं प्रकृति के परिवर्तन के साथ मनुष्यों एवं अन्य जीवों पर काम के प्रभाव की चर्चा की।

अ. ४६

श्री राम ने मृगया से प्रेम लगा कर अपने वसन्तोत्सव का आयोजन किया। उन्होंने अपने भाइयों एवं आखेट के कुत्तों के साथ निषादराज गुह तथा अपने साथियों को लेकर वन में प्रवेश किया। वहाँ उन्होंने अपने घोड़ों को नचाया तथा अपने धनुष की टंकार से सिंह आदि वन्य पशुओं को उद्वेलित किया। इसके पश्चात् श्रीराम ने चल-लक्ष्य पर शर-सन्धान का अभ्यास किया। इसी मध्य उनके समक्ष कृष्णसार मृगों का समूह आया। श्री राम ने उनमें से एक पर लक्ष्य-सन्धान किया किन्तु उसकी मृगी ने मृग के सामने खड़े

होकर उनके सामने व्यवधान उपस्थित किया। श्रीराम उसके मृग के प्रति प्रेम को देखकर मुग्ध हो गये तथा उन्होंने दूसरे मृग पर भी बाण नहीं छोड़ा इसी बीच में निषादराज गुह ने उन्हें सिंह, एवं गज के शिकार के लिये परामर्श दिया। इसके पश्चात् श्रीराम ने कोलों के पल्वल की ओर के मार्ग का अनुसरण करते हुये सम्मुख आते हुये वराह का वध किया। इसके पश्चात् पल्वल से एक खड्ग-धारी सेना के सम्मुख आ खड़ा हुआ जिसे सैनिकों ने मार गिराया। सेना के आगे बढ़ने पर घोड़ों के स्वर सुनकर सिंह बाहर आया। तब श्री रामचन्द्र ने कहा कि इस सिंह को मारने का बीड़ा कौन उठायेगा। निषाद राज गुह ने यह चुनौती स्वीकार करते हुये पूछा कि इसका वध तलवार से करूँ या बाण से। श्रीराम के कहने पर उसने बाण से उसका वध किया। श्रीराम ने गुह के प्रति प्रेम प्रदर्शित किया एवं आगे बढ़े। इसके पश्चात् भरत ने अकेले ही सिंह के आखेट की इच्छा व्यक्त की। एक सिंह के सम्मुख आने पर भरत ने बाण से प्रहार किया। इससे वह सिंह मरा तो नहीं, किन्तु भरत के प्रहार से एक दिव्य देह धारी, शंख चक्रधारी, चतुर्भुज विष्णु-पार्षद के सदृश व्यक्ति सम्मुख उपस्थित हुआ एवं भरत को प्रणाम किया। भरत ने उससे उसका परिचय एवं सिंह योनि की प्राप्ति का कारण पूछा।

अ. ४७

भरत को उस पुरुष के उत्तर में जो कथा सुनाई, वह इस प्रकार है–

मेरा पूर्वजन्म कलिंग देश में हुआ एवं मैं शंकर नामका ब्राह्मण था। दुष्टों के संग के प्रभाव मेरा ब्राह्मणत्व क्षीण हो गया, जिसके कारण में वैष्णव, द्विज एवं देवों की निन्दा करने लगा। एक बार घूमते-घूमते मैं प्रयाग में भरद्वाज मुनि के आश्रम पर पहुँचा। वहाँ भरद्वाज मुनि हवन कर रहे थे। वह खीर के साथ घी, शर्करा, तिल एवं खीर का हवन कर रहे थे एवं अन्य मीठे फलों की भी आहुति दे रहे थे। यह देखकर मुझे अत्यन्त आश्चर्य हुआ एवं ऋषि का उपहास उड़ाते हुये मैंने कहा कि आग में पड़ कर तो सब जल जायेगा। इससे अच्छा तो आप मुझे यह सब दे दें। मैं खाकर सिंह के समान बली हो जाऊँगा।

इस पर क्रुद्ध महर्षि भरद्वाज ने कहा कि तुम वेद की निन्दा कर रहे हो। वेद साक्षात् नारायण हैं एवं वेदों के द्वारा श्रीहरि की आराधना की जाती है। तुम्हारे मन में सिंह भाव है, अतः तुम सिंह बनोगे। ऋषि का शाप सुनकर मैं भयभीत हो गया एवं हाथ जोड़कर ऋषि से शापमोचन का उपाय पूछा। तब भरद्वाज ऋषि ने त्रेता युग में श्री राम के अनुज भरत के शर-प्रहार से सिंहत्व से मुक्ति की बात कही। आज उनकी कही बात सत्य हो गई। इसके पश्चात् उन्होंने श्री भरत जी को प्रणाम किया एवं प्रस्थान करने की अनुमति माँगी।

शंकर के साथ भरत जी ने भी श्री राम की ओर प्रस्थान किया। उनके मित्रों ने श्री

रामचन्द्र को समग्र वृत्तान्त सुनाया। श्री राम जी के चरणों में प्रणाम कर शंकर ब्राह्मण विष्णुलोक को प्राप्त हुआ।

अ. ४८

इसके पश्चात् श्री राम चन्द्र की सेना आगे चल कर गोमती नदी के तट से सम्बद्ध वन में प्रविष्ट हुई। सांयकाल देखकर श्री राम चन्द्र ने वहीं रात्रि-विश्राम का मन बनाया। वन में मेधावी ऋषि का आश्रम था। वह श्री राम को आया हुआ जानकर फल-पुष्पादि हाथ में लेकर उनके पास उपस्थित हुये। प्रणामादि के पश्चात् ऋषि उन्हें अपने आश्रम ले गये एवं उनक सत्कार किया। ऋषि की आज्ञा पाकर श्री राम ने सेना वहीं ठहरा दी। सन्ध्या वन्दन के पश्चात् माता कौशल्या द्वारा प्रेषित पक्वान्न का भोजन उन्होंने भाइयों एवं मित्रों के साथ किया। सैनिकों के केले के पत्ते पर भोजन किया। सभी अश्व गजादि पशु भी भोजन से तृप्त हुये। प्रकाश-व्यवस्था हेतु वृक्ष-वृक्ष पर दीप जलाये गये। पशुओं के उपस्कर वृक्षों पर रखकर सभी निद्रा-मग्न हो गये किन्तु सभी की रक्षा हेतु कुछ रक्षक एवं स्वयं शत्रुघ्न रात्रि पर्यन्त बिना सोये सनद्ध रहे।

किन्तु रात्रि के अन्तिम पहर में उपद्रव हो गया। सभी सेना गज अपनी जंजीरे छुड़ा कर भागने लगे। वन्य हाथी के मद की गन्ध पाकर सैन्य गज छुड़ा कर भागने लगे। हाथियों के भय से अश्व भी भागने लगे। जो हाथी वृक्षों में श्रृंखलाबद्ध थे, वन्य गज ने उन-उन वृक्षों को ही तोड़ दिया। इस कोलाहल एवं भगदड़ को देखकर शत्रुघ्न ने कारण जानना चाहा। पूरी घटना की जानकारी के पश्चात् निषादराज गुह ने उस हाथी के वध का परामर्श दिया। शत्रुघ्न गुह के साथ धनुष बाण लेकर गज की ओर चल पड़े। वह गज भी जन-समूह को देखकर आगे शत्रुघ्न की ओर बढ़ चला। शत्रुघ्न के बाण के प्रहार से वह धराशायी हो गया एवं वह जीव गज शरीर को छोड़ कर वैष्णव देहधर हो गया।

शत्रुघ्न द्वारा गज देह की कथा पूछने पर उसने बताया कि वह पूर्व जन्म में दुर्व्यसनरत विष्णु एवं ब्राह्मण निन्दक माहिष्मती का ब्राह्मण था। एक बार कोई विष्णुभक्त विद्वान् ब्राह्मण सुदर्शन वहाँ आया एवं सरोवर में स्नान करके घंटा एवं शंख आदि की ध्वनि के साथ विष्णु की उपासना की। इस ब्राह्मण ने उसे विष्णुभक्त का उपहास गज के चीत्कार के समान स्वर में किया, जिसके परिणाम स्वरूप उसे गज होने का शाप मिला। उसने अतीव अनुनय-विनय करते हुये शाप-मुक्ति का उपाय पूछा। सुदर्शन ब्राह्मण ने त्रेता युग में गोमती नदी के तट पर शत्रुघ्न के हाथों गज-योनि से मुक्ति का उपाय बताया जो सत्य हुई। इसके पश्चात् वह ब्राह्मण शत्रुघ्न की स्तुति करते हुये परम पद को प्राप्त हुआ।

रात्रि व्यतीत होने के पश्चात् श्री राम भी उठे। उन्होंने सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनकर शत्रुघ्न एवं निषादराज गुह की अत्यन्त प्रशंसा की। तब तक सूर्योदय हो गया।

अ. ४९

इसके पश्चात् श्री राम अपने भाइयों एवं साथियों के साथ गोमती तीर से आगे चले। मार्ग में उन्हें एक पुं-मृग दिखाई पड़ा। उन्होंने उसके आखेट का मन बनाया। रथ अत्यन्त वेग से आगे बढ़ता जा रहा था। मृग भी अपने प्राणों की रक्षा हेतु अत्यन्त वेग से भाग रहा था। इसी मध्य राम चन्द्र जी की सेना भी उनके निकट आ पहुँची। सेना के कोलाहल तथा दुन्दुभी बजने का स्वर सुनने से दो बालखिल्य ऋषि वहाँ उपस्थित हुये। उन्होंने राम को आश्रम के निकट मृग का आखेट करने से रोका। राम ने रथ से उतर कर उन्हें प्रणाम किया एवं अपने अज्ञान के लिये क्षमा माँगा। ऋषियों ने प्रसन्न होकर राम को सीता के साथ विवाह होने का आर्शीवाद दिया।

इसके पश्चात् मध्याह्न काल में श्री राम ऋषिशृङ्ग के आश्रम में पहुँचे। ऋषि ने अपने शिष्यों से आगन्तुकों के बारे में पूछा क्योंकि वन्य-जीव सेना के कोलाहल से प्राण-भय उपस्थित जान कर इधर-उधर भाग रहे थे। ऋषिशृङ्ग प्रेषित शिष्यों को सम्मुख देखकर लक्ष्मण ने उन्हें प्रणाम किया एवं ऋषि दर्शन की इच्छा व्यक्त की। महामति संज्ञक शिष्य ने उन्हें कहा कि इस समय ऋषि अग्नि-होत्र कर रहे हैं। आप शान्ता (श्री राम की बहन) के साथ बैठकर उनकी प्रतीक्षा करें। शिष्य ने मुनि के पास श्री राम के आगमन का समाचार पहुँचाया। सैनिकों तथा श्री राम ने अपने धनुष की प्रत्यञ्चा उतार दी। भगिनी शान्ता ने श्री राम चन्द्र का एवं अन्य भाइयों का मुख-सम्मार्जन, पाद्य एवं नीराजन आदि द्वारा उनका सत्कार किया। शृङ्ग ऋषि भी अपनी पूजा अर्चना पूर्णकर वहाँ पहुँचे। प्रणामादि सम्पन्न होने पर ऋषि ने योगमाया के प्रभाव से अन्नादि उत्पन्न किया एवं सैनिकादि सभी को भोजन कराया। रात्रि में सभी ने सरयू तट पर विश्राम किया। ऋषि की आज्ञा से रात्रि में सैकड़ों अप्सराओं ने यथायोग्य वात्सल्य भाव से सम्पूर्ण सैन्य परिवार की सेवा की। इस प्रकार श्री राम की अपने परिजनों सहित रात्रि अत्यन्त सुख-पूर्वक बीती।

प्रातः स्नानादि के पश्चात् श्री राम चन्द्र ने ऋषि से गमन की अनुमति माँगी। ऋषि शृङ्ग ने उन्हें अनुमति देते हुये कहा कि सरयू नदी में यह भयंकर ग्राह रहता है जो लोगों को भयभीत करता है। श्री राम ने उसे मारने का वचन दिया। इसके पश्चात् वह धनुष-बाण लेकर सरयू तट पर बैठ गये। ग्राह भी जन-रव सुनकर नहाने वालों को खींचने की कामना से नदी जल सो बाहर निकला। श्री राम ने उसको बाण से मार डाला। ऋषि से अत्यन्त प्रसन्न भाव श्री राम को गले लगाया एवं विदाई की। श्री राम अपने भाइयों एवं सैनिकों के साथ प्रसन्न भाव से आखेट करते एवं पशुओं को शकट में रखते हुये अयोध्या पहुँचे। सभी नगर वासियों ने, राजा दशरथ एवं कौसल्यादि सभी रानियों ने उनका स्वागत किया।



सत्योपाख्यान
(उत्तरार्ध)

अ. ५०

सत्योपाख्यान का उत्तरार्ध सीता-चरित एवं सीता-राम के विवाह से सम्बद्ध है।

शौनक ऋषि ने सूत से सीता जी के जन्म एवं राम से विवाह का कारण पूछा। सूत जी ने कहा कि एक बार भगवान् विष्णु लक्ष्मीजी के साथ बैठे थे। वहीं देवगण दिव्य कानन में विचरण कर रहे थे एवं भगवान् हरि के सम्मुख चारों वेदों का गान तथा नृत्य कर रहे थे। वहाँ माया का साम्राज्य भयोत्पादक नहीं था। वहाँ अनेक अप्सरायें पार्षद थीं एवं ऋतुराज गन्धर्व वहाँ प्रतिदिन जाते थे। उसकी एक वासन्तिका नामक लड़की थी। वह भगवान् विष्णु के समक्ष नृत्य करती थी एवं लक्ष्मी के साथ बैठती थी। वह नृत्य गीत एवं भावाभिनय में अत्यन्त प्रवीण थी। उसने नृत्य के विभिन्न शास्त्रीय पक्षों विभिन्न गतियों, दृष्टियों एवं भावों की अभिव्यक्ति से विष्णु भगवान् को सन्तुष्ट किया। भगवान् विष्णु ने उसे वर माँगने को कहा। भगवान् के ऐसा कहने पर वह लज्जित हो उठी। उसेक हृदयगत भावों को जानकर श्री लक्ष्मी जी बोलीं कि श्री विष्णु द्वापर युग में कृष्णावतार के समय आठ पटरानियों के मध्य तुम भी लक्ष्मणा रानी बनोगी।

वासन्तिका ने लक्ष्मी जी के चरणों में प्रणाम करते हुए त्रेता युग में रामचन्द्रावतार में अपने बारे में पूछा। श्री लक्ष्मी जी ने कहा कि रामचन्द्रावतार में श्री राम एक पत्नीव्रत धारी होंगे एवं मैं सीता के नाम से पृथिवी से उत्पन्न होऊँगी एवं तुम मेरी सुभगा नामक सखी बनोगी। हम दोनों की सेवा कर तुम्हें ब्रह्म की प्राप्ति होगी। मैं अपने पति के साथ भूलोक जाऊँगी। अयोध्या में राजा दशरथ के घर मेरे पति श्रीमान विष्णु होंगे, शेष लक्ष्मण, शंख भरत एवं सुदर्शन चक्र शत्रुघ्न होंगे। मैं जनक की, भूमि से उत्पन्न पुत्री होऊँगी। उनकी औरस पुत्री शेष की शक्ति उर्मिला होगी। उनके भाई कुशध्वज की पुत्री माण्डवी शंख की एवं श्रुतकीर्ति सुदर्शन चक्र की पत्नी होगी। अणिमा आदि विभूतियाँ मेरी सखियाँ होगी। श्री लक्ष्मी के मुख से समग्र वृत्तान्त जान कर वासन्तिका अत्यन्त प्रसन्न हुई। मिथिला में लक्ष्मी की अणिमादि सखियों ने तथा अयोध्या में वैकुण्ठ वासियों ने जन्म ग्रहण किया।

अ. ५१

एक बार मिथिला नरेश ने यज्ञ करने की इच्छा से ब्राह्मणों एवं ऋषियों को आहूत किया। सोने के हल से यज्ञ प्रारम्भ किया। उनके आगे शतानन्द ऋषि थे। उस समय वैशाख मास (माधव मास) मंगलवार शुक्ल पक्ष, पुष्यनक्षत्र, नवमी तिथि की। पृथिवी का पूजन कर जनक ने हल-कर्षण किया। लाङ्गल के मुखाग्र भाग से धरती फोड़ कर लक्ष्मी कन्या रूप में प्रकट हुईं। उनका नाम सीता पड़ा। उनके जन्म के समय गन्धर्व एवं अप्सराओं का गीत-नृत्य, दुन्दुभि के स्वर एवं पुष्प-वृष्टि हुई। उसी समय राजा जनक को आकाश-वाणी हुई कि इस कन्या का पालन-पोषण करो क्योंकि इसके द्वारा तुम्हारा कल्याण होगा। नारद मुनि ने भी इस बात की पुष्टि की। राजा ने अपनी गोद में कन्या को उठा कर अपनी पत्नी सुनेत्रा को सौंपा। उन्हीं के संरक्षण में सीता का पालन हुआ। इसके पश्चात् सुनेत्रा के उर्मिला तथा कुशध्वज की पत्नी के श्रुतकीर्ति एवं माण्डवी संज्ञक पुत्रियाँ हुईं। जनक के मन्त्री के यहाँ सुभगा नाम से वासन्तिका का जन्म हुआ। जानकी के साथ ही अष्ट सिद्धियों एवं नव निधियों का सखी भाव से जन्म हुआ। ६ वर्षों में ही जानकी अत्यन्त रूपवती हो गईं अपने हावभाव एवं शरीर की वृद्धि आदि की दृष्टि से श्यामा (नायिका का एक भेद) के सदृश प्रतीत होती थीं। वह जिस भी स्त्री पुरुष को देख लेती थी, वह अत्यन्त प्रसन्न होकर अपने आप को अतीव भागयशाली मानता था। वह सखियों के साथ कभी सरोवर में स्नान करने, कभी उपवन, कभी गौरी पूजन करने के लिये जाती थी, तो पुरवासी उन्हें पुत्रीवत् देखते थे। कभी-कभी स्वयं भोजन पका कर ब्राह्मण को भोजन कराती थीं। वेदज्ञ ब्राह्मण उनकी दिव्य शक्ति को जानते थे। उनकी दृष्टि मात्र से संसार सम्पदा-युक्त हो जाता था। वह सीता एकान्त में कभी गीत गाती, कभी वीणा मृदंग आदि बजातीं, तो कभी फूलों की माला बना कर देवों को चढ़ाती थी। सुनेत्रा अपने पुत्री के रूप एवं गुणों को देखते हुये उनके विवाह के बारे में सोचने लगीं।

एक बार सीरध्वज (जनक) राजा को एकान्त में देखकर सुनेत्रा ने सीता के विवाह की चर्चा की। जनक ने इसे कन्या के भाग्य के द्वारा सम्पन्न होने कार्य कहा। इसके पश्चात् पति-पत्नी अपने भवन में गये एवं राजा स्वयं कुशासन पर रात्रि में सोये। उनके स्वप्न में साक्षात् भगवान् शंकर प्रकट हुये एवं उन्होंने कहा कि तुम्हारे भवन में मेरा धनुष पूजित होता है। तुम्हें यह प्रतिज्ञा करनी होगी कि जो शिव का धनुष तौल कर (हाथ से उठाकर) तोड़ेगा, उसी को मैं अपनी कन्या दूँगा। ऐसा कह कर शिव अन्तर्धान हो गये। जनक ने अपनी प्रतिज्ञा की घोषणा करा दी। सभी राजा धनुष तोलन एवं भंग करने के लिये मिथिला पहुँचने लगे। धनुष की रंगभूमि एवं पिनाकस्थल अत्यन्त रमणीय एवं रत्नों से निर्मित थी। वहाँ सभी पुरवासी शिष्यों सहित मुनि-गण, जनक की पत्नियाँ आदि सभी यथायोग्य आसन पर कौतुहलवश बैठे थे। वहाँ रावण द्वारा प्रेषित उसका सचिव प्रहस्त, बलि का पुत्र बाण,

सुधन्वा आदि राजा सभा में बैठे थे। तभी सीता अपनी सखियों के साथ वहाँ समाज में पहुँची। उन्हें देखकर राजा-गण विभिन्न प्रकार की शृङ्गार चेष्टायें करने लगे। सीता ने शिव-धनुष के निकट जाकर उसकी पूजा की। पुनः अपनी माताओं के पास चली गईं।

अ. ५२

धनुष-यज्ञ की सभा में मागधों ने जनक की सम्पूर्ण प्रतिज्ञा को राजाओं को सुनाया। धनुष के पास बारी-बारी से सभी राजा गये। किसी को वह सर्प प्रतीत हुआ तो कोई अन्धा हो गया और पूछने लगा कि धनुष कहाँ है। दूसरा राजा सिंह के समान गर्व करता हुआ धनुष के पास गया तो उसे धनुष के स्थान पर सिंह दिखाई पड़ा। कहीं सिंह उसे खा न जाय इस भय से वह भूमि पर गिर पड़ा। अन्य राजा ने उसे छुआ तो धनुष के तेज से उसका हाथ जलने लगा। राजा चण्डपति को वह धनुष शिव-रूप दिखलाई पड़ा। वह उसे प्रणाम कर अपने आसन पर आ कर बैठ गये। राजाओं ने समवेत रूप से धनुष उठाने का उपक्रम किया, किन्तु धनुष को हिला तक न सके। इसके पश्चात् बलि का पुत्र बाण अपने आसन से उठा। उसने निकट जाकर धनुष में भगवान् शिव का दर्शन किया। उसने धनुष को प्रणाम कर कहा कि मैं घर जा रहा हूँ क्योंकि मेरी इतनी योग्यता नहीं है इस शिव रूप धनुष के निकट जाऊँ।

इसके पश्चात् रावण के सचिव प्रहस्त ने रावण का गुणगान करते हुये कहा कि उससे सीता का विवाह जनक को कर देना चाहिये। इससे जनक का कल्याण होगा। ऐसी स्थिति में सागर पर्यन्त पृथिवी जीत कर रावण जनक को दे देगा। जनक ने उत्तर दिया कि यदि वह भी आकर धनुष का तोलन बलपूर्वक करे तो उसे कन्या दे दूँगा, अन्यथा नहीं दूँगा। प्रहस्त ने कहा कि चूँकि वह शिव-धनुष है इसलिये रावण ऐसा नहीं करना चाहता है। किसी अन्य देवता का होता तो चूर्ण कर देता। अचानक वह उठकर चलने लगा और बोला-रावण निश्चित ही इस कन्या का हरण करेगा। जनक ने उत्तर दिया कि यदि रावण ऐसा करता है तो उसके नाश का कारण सीता ही होगी। वह राक्षस जनक की भर्त्सना करते हुये लंका चला गया।

इसके पश्चात् राजा सुधन्वा ने जनक से कहा कि धनुष के साथ सीता मुझे दीजिये, नहीं तो मैं तुम्हारी पुरी को लूट लूँगा। रंगभूमि से बाहर निकलो, मेरे सेवक तुम्हें लात-घूँसों से मारेंगे।

इस प्रकार कोलाहल होने पर जनक के पक्ष वाले शस्त्रधारी उनके निकट खड़े हो गये। विवेकी राजाओं ने दोनों को हटाकर इधर-उधर किया। रंगभूमि से निकल कर क्रोध-मूर्छित राजा सुधन्वा ने अपनी सेना क साथ मिथिला नगरी को अवरुद्ध कर दिया तथा जनक से युद्ध किया। लम्बे समय तक युद्ध चला एवं रण में बहुत लोग हताहत हुये।

सुधन्वा द्वारा अवरुद्ध होने के कारण पुरी में तृण धान्य आदि नहीं पहुँच पा रहा था। तब दुःखी राजा ने सदा शिव का स्मरण किया। शिव द्वारा प्रेषित सेना के सहयोग से राजा जनक ने युद्ध किया एवं युद्ध में सुधन्वा मारा गया। अन्य राजादि वहाँ से भाग गये। राजा ने इक्षुमती नदी के तट पर सांकाश्या नगरी में अपने भाई कुशध्वज को राजा बनाया। इसके बाद राजा जनक ने पुनः यज्ञ का आरम्भ किया एवं सभी राजाओं को शिव धनुष के तोलन एवं भंजन हेतु आहूत किया।

अ. ५३

भगवान शिव से आज्ञा-प्राप्त विश्वामित्र मुनि सिद्धाश्रम से श्री राम की प्राप्ति हेतु साकेत नगर की ओर चल पड़े। राजद्वार पर उपस्थित होने पर द्वारपालों ने उन्हें प्रणाम किया एवं राजा को उनके आगमन की सूचना दी। राजा दशरथ ने वशिष्ठ आदि ऋषियों के साथ उनका स्वागत किया एवं चरणों में प्रणाम किया। वशिष्ठ ऋषि ने राजा तथा विश्वामित्र ऋषि को गले लगाया। अर्घ-पाद्यादि देने के पश्चात् राजा दशरथ ने उनसे आगमन का प्रयोजन जानना चाहा। विश्वामित्र ऋषि ने राजा दशरथ से श्री राजचन्द्र जी को माँगा। राजा दशरथ ने उन्हें अपने पुत्र श्री राम को लक्ष्मण के साथ आशीर्वाद देते हुये सौंपा। दोनों बच्चों ने पिता का पैर छुआ तो पिता के आँखों से अश्रु-बिन्दु बह कर उनके मस्तक पर गिरने लगे। उन्होंने दोनों पुत्रों को रक्षकों के स्थान पर आशीष से संयुक्त किया। वे जिस मार्ग पर चल रहे थे वहाँ आशीष की ही आवश्यकता थी न कि सेना की। दोनों भाई माता-पिता को प्रणाम कर ऋषि का अनुसरण कर रहे थे। अयोध्या से बाहर निकल कर उन्होंने दोनों भाइयों को बला एवं अतिबला विद्या प्रदान की। मार्ग में ऋषि दोनों भाइयों को इतिहास-कथाओं को सुनाते जा रहे थे जिससे उन्हें मार्ग में चलने के कष्ट का अनुभव नहीं हो रहा था। मार्ग में चलते हुये वे पशु-पक्षी, मेघ, ग्रामवासियों, ग्रामवधुओं, सुरापान करने वाले गोपों, गायों आदि को देखते जा रहे थे। दुही जा रही गायें अपने बछड़ों को चाट रही थीं। उन्हें देखकर श्रीराम चन्द्र ने सोचा कि मैं भी द्वापर युग में कृष्ण रूप में जन्म लेकर दूध दूहूँगा। इसी प्रकार मार्ग में खेतों में अन्न खाने वाले मृगादिकों को भगाती कृषक पत्नियाँ, गोपिकायें एवं ग्राम्य-स्त्रियाँ दिखाई पड़ी।

उन स्त्रियों ने भी राम एवं लक्ष्मण को देखा एवं उन्होंने ऋषि से पूछा कि ये दोनों बालक आपके शिष्य हैं या पुत्र हैं। इन दोनों की मातायें कहाँ है, जिन्होंने अपने पुत्रों को तुम्हें सौंपा। वे मातायें अत्यन्त कठोर प्रतीत होती हैं।

विश्वामित्र ने उनसे कहा कि ये दोनों राजा दशरथ के पुत्र राम एवं लक्ष्मण हैं एवं यज्ञ की रक्षा हेतु मैंने इन्हें राजा से माँगा है। मैं इन्हें सिद्धाश्रम लेकर जा रहा हूँ। इसी मध्य वन से अन्य गोप भी वहाँ आ गये। उन्होंने उन्हें दण्डवत् प्रणाम किया। राम-लक्ष्मण

एवं विश्वामित्र ने वहाँ रात्रि विश्राम किया। पुनः उन लोगों ने सिद्धाश्रम की ओर प्रस्थान किया। मार्ग में उन्हें एक भयानक वन मिला। मुनि की आज्ञा से दोनों भाइयों ने धनुष की प्रत्यञ्चा चढ़ा ली। धनुष का स्वर सुनकर वहाँ ताडका आ गई। वह वृद्धा भाद्र-मास की रात्रि के सदृश काली एवं भयानक थी। वह कपालकुण्डला, बड़े-बड़े वृक्षों को कपकँपाती हुई, प्रेतों को वस्त्र रूप में धारण किया, महानाद करती हुई, धूलि की भयानक वृष्टि करती मनुष्यों के आँतों की माला पहने थी। अपनी ओर उसे हाथ उठाकर आती देख कर राम ने उसे मार गिराया किन्तु स्त्री जान कर हत्या नहीं की। पुनः विश्वामित्र की आज्ञा से ताडका के हृदय पर प्रहार किया एवं वह मर कर स्वर्ग चली गई। श्री राम के ताडका-वध करने से सन्तुष्ट विश्वामित्र ने उन्हें मन्त्र प्रदान किया जिससे वह इच्छानुसार रूप-धारण कर सकते थे। इसके पश्चात् सिद्धाश्रम में पहुँच कर विश्वामित्र ने यज्ञ की दीक्षा ली एवं धनुष धारण कर के राम एवं लक्ष्मण मुनि की रक्षा करने लगे। छठें दिन आकाश में राक्षस-गण आ गये एवं आकाश एवं रुधिर वृष्टि करने लगे। श्री राम ने ऊपर देखा एवं उनके नेता मरीच पर प्रहार किया। मुनि ने अपनी पूजा एवं यज्ञ को पूर्ण किया। दोनों राजकुमारों ने मुनि को प्रणाम किया एवं मुनि ने उन्हें आशीर्वाद दिया।

अ. ५४

उसी समय राजा जनक का प्रतिहार मुनि के पास पहुँचा और उसने राजा जनक के यहाँ धनुर्यज्ञ की सूचना एवं उन्हें वहाँ चलने का आमन्त्रण दिया। विश्वामित्र ऋषि ने अन्य ऋषियों एवं दोनों राजकुमारों के साथ मिथिला की ओर प्रस्थान किया। मार्ग में गौतम ऋषि का आश्रम पड़ा। राम चन्द्र ने अहल्या के शाप की भी कथा सुनी एवं उसे देखने के लिये वहाँ पहुँचे। उनके पाद-तल की उड़ी धूल शिला के ऊपर पड़ी और वह शिला अतीव सुन्दर स्त्री बन गई। उसने श्रीराम की स्तुति की एवं पति के साथ पुनः चली गई।

इसके पश्चात् वे सभी धनुष-यज्ञ देखने की इच्छा से मिथिला पहुँचे। राजा जनक ने राजदूत द्वारा विश्वामित्र आदि के आगमन का समाचार पाकर उनका यथोचित स्वागत-सत्कार किया। शतानन्द मुनि ने भी आकर विश्वामित्र को प्रणाम किया। कुशल-क्षेम के पश्चात् राजा जनक ने राम एवं लक्ष्मण को देखा। उनके दिव्य स्वरूप, तेज एवं सौन्दर्य को देखकर मुनि से उनका परिचय पूछा। विश्वामित्र ऋषि ने राम एवं लक्ष्मण का परिचय कराया। उनके द्वारा मारीच, सुबाहु आदि के पराभव, गौतम ऋषि के पत्नी के उद्धार की कथा सुनाई ओर कहा कि इनके पराक्रम की चर्चा वाणी नहीं कर सकती। रंग-भूमि में राजाओं के समूह में इनका पराक्रम धनुष पर परिलक्षित होगा।

अ. ५५

सभा में ऐसा कह कर महामुनि शान्त हो गये। राजा जनक दोनों राजकुमारों को

राजा दशरथ का पुत्र जान कर अत्यन्त प्रसन्न हुये एवं उन्होंने दोनों भाईयों का अत्यन्त दुलार किया। उन्होंने अपने आप को, अपने राज्य एवं पुरी को धन्य माना। इक्ष्वाकु वंश में उत्पन्न महाराज निमि राजा जनक के पूर्वज थे। इसलिये उन्हें राम-लक्ष्मण से अधिक अपनत्व का अनुभव हुआ।

इसके पश्चात् राजा जनक ने अपने में सोचा एवं उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ कि वह राम साक्षात् नारायण एवं लक्ष्मी-पति हैं तथा हल के अग्र भाग से यज्ञ- भूमि से उत्पन्न सीता साक्षात् लक्ष्मी हैं। अतः सीता स्वयं राम का वरण करेंगी। यह सोचते हुये उन्होंने तपस्वियों एवं दोनों कुमारों को अपने गृह में चलने का अनुरोध किया। किन्तु अत्यन्त विनम्रता पूर्वक मुनि ने उनके गृह में ठहरने से मना करते हुये उन्हें सन्ध्योपासना हेतु जाने के लिये कहा एवं स्वयं भी सन्ध्यापूजन करने लगे।

इधर राजा जनक ने राम एवं लक्ष्मण के विषय में सोचते हुये मन बनाया कि राम के साथ सीता एवं लक्ष्मण के साथ ऊर्मिला का विवाह करूँगा। निश्चित् रूप से राम ही धनुष भङ्ग करेंगे। प्रातः काल राजा ने मुनियों एवं राजकुमारों को अपने यहाँ भोजन पर दूत द्वारा आहूत किया एवं अपनी पत्नी सुनेत्रा को अपनी सखियों के साथ दोनों राजकुमारों को ध्यान से देखने एवं उनका विधिवत् सत्कार करने के लिये कहा।

अ. ५६

दूत द्वारा निमन्त्रण पाकर मुनि विश्वामित्र अन्य मुनियों एवं राम-लक्ष्मण के साथ राजभवन पहुँचे। वहाँ उनका प्रेम के आवेग से परिप्लुत सत्कार हुआ। रानी सुनेत्रा ने भी अपनी सखियों एवं सीता सहित मुनियों को प्रणाम किया एवं राम तथा लक्ष्मण को बारम्बार देखती हुई अत्यन्त प्रसन्न हुईं। दोनों भाइयों का स्वरूप, स्वभाव, सौन्दर्य, वस्त्राभरण आदि सभी दिव्य थे। जनक पुर की स्त्रियाँ विभिन्न भावों से उन्हें देख रही थी। राजा जनक के भवन में दोनों भाइयों एवं दोनों राजकुमारों का भोजन हुआ।

अ. ५७

शौनक ऋषि ने सूत से रामचन्द्र जी के विवाह एवं धनुष के भंग होने की कथा पूछी जिसके श्रवण से मुक्ति प्राप्त होती है।

सूत ने कथा को आगे बढ़ाते हुये कहा कि राजा जनक ने पुनः राजाओं धनुष-भङ्ग हेतु रंग भूमि में आहूत किया। वहाँ सभी राजाओं एवं अतिथियों के साथ विश्वामित्र भी मुनियों एवं राम-लक्ष्मण के साथ वहाँ पहुँचे। वहाँ राजा जनक ने अपना प्रण दोहराया। मुनि ने राम को धनुष-भङ्ग का आदेश दिया। राम ने धनुष को निकट जाकर देखा एवं उसकी प्राचीनता एवं मध्य मे जीर्णता को जान कर कर अत्यन्त सहजता से धनुष उठा

कर, उस पर प्रत्यञ्चा चढ़ा कर तोड़ दिया। सीता ने श्री राम के गले में जयमाला डाल दी। सर्वत्र प्रसन्नता छा गयी एवं जय जयकार होने लगा।

अ. ५८

अगले दिन प्रातः काल राजा जनक ने विश्वामित्र के पास जाकर कहा कि हमें राजा दशरथ के पास अपने दूत भेजकर उन्हें यहाँ बुलाना चाहिये। विश्वामित्र ने उन्हें वैसा ही करने का परामर्श दिया। राजा जनक के दूतों ने राजा दशरथ को राम के द्वारा शिव-धनुष को तोड़े जाने का समाचार सुनाया। इस स्थिति में सीता से धनुष तोड़ने वाले के साथ विवाह की राजा जनक की पूर्व प्रतिज्ञा भी बताई। दूतों ने राजा दशरथ को अपनी सेना अपने दोनों पुत्रों (भरत एवं शत्रुघ्न) तथा ऋषियों के साथ जनक पुर पहुँच कर राजा जनक के आमन्त्रण को स्वीकार करने का अनुरोध किया। महर्षि वशिष्ठ के साथ मन्त्रणा करते हुये जनक पुरी बरात लेकर जाने की तैयारी करने लगे। उन्होंने अपनी पत्नियों को भी राम का सीता के साथ विवाह की सूचना दी। नृत्य, गीत एवं वाद्य आदि के साथ राजा दशरथ ने बरात लेकर प्रस्थान किया।

अ. ५९

राजा दशरथ गुरू वशिष्ठ एवं अन्य सैनिकादिकों के साथ जनक पुरी पहुँच गये। राजा जनक ने उन सबका व्यञ्जन, भोजनादि से स्वागत किया। पिता-पुत्र, दोनों वशिष्ठ-विश्वामित्र एवं अन्य ऋषि, एवं चारों भाई आदि सप्रेम मिले। इसके पश्चात् वेद-ध्वनि, वाद्य ध्वनि आदि के साथ राजा दशरथ के चारों पुत्र सुसज्जित होकर राम-सीता के विवाह हेतु चल पड़े। सभी नगर वासी नर एवं नारी श्रीराम चन्द्र जी की बरात देखने लगे। श्रीराम की शोभा देखने के लिये अपने-अपने भवनों के गवाक्षों की ओर जाती हुई उतावली स्त्रियों में कोई केश-प्रसाधन छोड़कर, कोई पैरों में आधा-अधूरा आलता लगा कर, कोई एक ही आँख में काजल लगाकर तो कोई आधे-अधूरे वस्त्र पहने थीं। सभी ने राम के रत्नाभूषणों से सुसज्जित दिव्य रूप को देखा।

अ. ६०

श्री राम चन्द्र को देखकर मिथिला पुरी की स्त्रियाँ आपस में कहने लगी कि यदि राजा जनक धनुष-यज्ञ का आयोजन न करते तो राम यहाँ कैसे आते तथा सीता एवं राम का विवाह कैसे होता। यह सब बातें सुनते हुये भाइयों साथियों एवं पिता दशरथ के साथ श्री राम चन्द्र राजा जनक के द्वार पर पहुँचे। वहाँ राजा जनक ने अपने पुत्र लक्ष्मीनिधि के साथ उनका स्वागत किया। इसके पश्चात् राम एवं सीता का विवाह हुआ जिसमें पाणिग्रह, अग्नि प्रदक्षिणा, लाजा-होम आदि सभी कार्य सम्पन्न हुये। इसके पश्चात् लक्ष्मण एवं उर्मिला, भरत एवं माण्डवी, शत्रुघ्न एवं श्रुतकीर्ति का विवाह सम्पन्न हुआ।

अ. ६१

विवाह के पश्चात् चारो भाई दिव्य आसन पर बैठे। सभी राजकुल की स्त्रियाँ, ब्राह्मणी, उमा, इन्द्राणी एवं अन्य लोकपालों की स्त्रियाँ वहाँ आ गई। उन्होंने कुमारों को भोजन, व्यञ्जन आदि परोसा। इसके पश्चात् लक्ष्मीनिधि की पत्नी सिद्धि श्री राम के पास पहुँची एवं उनका पीताम्बर हाथ से खींच कर उनसे परिहास करते हुये कहा कि आपने मेरी ननद सीता के साथ विवाह कर उसे ग्रहण किया तथा अन्य ननदों को भाइयों के साथ विवाह कर ग्रहीत किया। आप मुझे भी कुछ पूजा दीजिये। यह कहते हुये उन्होंने चारों भाइयों को पान का बीड़ा दिया। पुनः पूजा की माँग की। उन्होंने कहा कि यदि आप मेरी पूजा नहीं करेंगे तो या तो मैं आपके साथ आपकी पुरी चलूँगी। नहीं तो आप मेरे सेवक बनकर मेरी नगरी में बसें। राम चन्द्र ने उत्तर दिया कि जनक कुल के लोग ऋद्धि-सिद्धि के उपासक होते हैं। हम तो भोग करते हैं, अतः हे सिद्धि मैं तुम्हीं को ले चलूँगा।

सिद्धि ने कहा कि ठीक है मैं ही तुम्हारी दासी बन जाऊँगी। किन्तु मेरी ननद से विवाह करने के बदले मुझे कुछ पूजा दीजिये। श्री राम ने उन्हें इच्छानुसार वस्त्र, रत्न, वाहनादि लेने की छूट दे दी।

तब सिद्धि ने कहा कि आप मुझे एवं मेरे पति को अपनी भक्ति प्रदान कीजिये जिस भक्ति से हम आपके दास हो जायेंगे। इसी मध्य उनकी सखी शारदा ने भी सीता के संग अयोध्या पुरी चलने की बात की। उसका कारण यह था कि राजा दशरथ गोरे हैं। सुना है, कौशल्या भी गोरी हैं तो आप कैसे साँवले हो गये। वह सखी वहाँ जाकर राम की माताओं को देखने की योजना बनाने लगी। पुनः उसने श्रीराम को नारायण, लक्ष्मण को शेष स्वरूप, भरत को शंख स्वरूप एवं शत्रुघ्न को चक्र रूप में देखा। उसके इस प्रकार कहने पर उन चारों भाइयों ने जन-सभा मे अपने मूल-स्वरूप के रहस्य को उद्घाटित न करने के लिये उस स्त्री को नेत्र-संकेत से रोका एवं श्रीराम के दर्शन के प्रभाव से सम्पूर्ण सभा सम्मोहित हो गयी एवं सभी आत्मविस्मृत हो गये। इसके पश्चात् वर-पक्ष के साथ सभी का भोजन हुआ। बरातियों को भोजन के समय गालियाँ भी गाई गयीं। इसके पश्चात् राजा दशरथ एवं श्री राम आदि सभी वधुओं के साथ शिविर में आ गये एवं ब्राह्मणों तथा याचकों को दान दिया।

अ. ६२

मिथिला में कुछ दिन निवास करने के पश्चात् राजा दशरथ ने अयोध्या जाने के लिये राजा जनक से कहा। जनक ने उन्हें रत्न एवं वस्त्रादिक के साथ गज एवं अश्वादि भेजे। राजा की आज्ञा से राम ने अपनी सासों के पास पहुँच कर विनम्र भाव से उनसे कहा कि महाराज अयोध्या जाना चाहते हैं। हम भी भाइयों के साथ जाना चाहते हैं। आप लोग

मुझे धर्म-पुत्र होने के नाते मत भूलियेगा। मैं भी आप सबको नहीं भूल सकूँगा। इसके बाद सभी माताओं ने चारों बेटियों को वस्त्राभरण से सुसज्जित कर गले लगाया एवं उनके वियोग के भय से कातर हो गई।

राजा जनक ने रानियों से विधिपूर्वक मङ्गल-कृत्यों को करने को कहा। माताओं ने सीता को शुभाशीष देते हुये तथा मंगल कृत्य करते हुये श्री राम से कहा कि यदि इससे सेवा करने मे क्रभी कोई त्रुटि हो तो कभी इसके दोष को हृदय में मत रखियेगा। इसके पश्चात् चारों बेटियों को माताओं ने भरे मन एवं अश्रूपूरित नेत्रों से सुसज्जित डोलियों में बैठा कर विदा किया।

अ. ६३

जनक पुरी से विदा हुई बारात वधुओं के साथ अयोध्या पुरी पहुँची। मार्ग में उन्हें अनेक शुभ-शकुनों के दर्शन हुये। मार्ग में ही जमदग्नि पुत्र परशुराम भी श्रीराम के दर्शन हेतु पहुँचे। उन्हें धनुष-भङ्ग की घटना ज्ञात हो चुकी थी। उन्होंने श्री राम को नारायण रूप में देखा एवं उन्हें प्रणाम किया। इसके पश्चात् राजा दशरथ अपने पुत्रों एवं सेना के साथ अयोध्या पहुँचे। वहाँ उनका स्वागत हुआ। पूरे नगर में उत्सव छा गया। कौशल्या आदि रानियों ने वधुओं सहित पुत्रों का मङ्गल गीत-वाद्य एवं आरती आदि के साथ स्वागत किया। उन्हें देव-दर्शन कराया गया। राजा ने विप्रों याचकों आदि को प्रभूत दान दिया एवं नगर-वासियों का सुस्वादु भोजन आदि से सत्कार किया।

अ. ६४

रात्रि आने पर श्रीराम के शुभ-विवाह के अवसर पर इन्द्र द्वारा भेजी गयी अप्सराओं ने राजा दशरथ के परिवार एवं उनके समाज के समक्ष नृत्य प्रस्तुत किया। उसी समय देवर्षि नारद वहाँ पहुँचे। राजा दशरथ ने सपरिवार उनका सत्कार किया। नारद ऋषि ने वहाँ नृत्य-गीतादि से प्रसन्न होकर नृत्य-कौतुक प्रस्तुत किया। नृत्य करते हुये उन्होंने मन्थरा को हास्य हेतु वानरी के समान अलंकृत किया। मन्थरा ने भी उनका साथ देने के लिये कैकेयी के निकट से उठकर नारद का वस्त्र पकड़ कर हँसते हुये कहा कि न तो तुम्हारे जैसा सुन्दर वर है और न ही मेरे जैसी सुन्दरी कहीं है। विधाता ने हम दोनों की जोड़ी बनायी है। यह सुन कर सभी लोग हँस पड़े। नारद ने भी हँसते हुये कहा कि तीनों लोकों में मैंने भी तुम जैसी नहीं देखी। मैं तुम्हारे कूबर पर अत्यन्त प्रसन्न हूँ। सभी लोग पुनः हँस पड़े। नारद ऋषि ने सभी को आशीष दिया। सभी अप्सरायें अपनी-अपनी पूजा पाकर अपने-अपने स्थान पर वापस चली गयीं। सीता एवं राम के विवाह का वर्णन सुनने वाले भोग एव मुक्ति दोनों प्राप्त करते हैं।

अ. ६५

अयोध्या पुरी के वासी वधुओं एवं रामादि को देखने के लिये राजभवन पहुँचे। कौशल्यादि रानियों को प्रणाम कर एवं रानियों से सत्कृत होकर जानकी आदि वधुओं को देखा एवं उनकी प्रशंसा करते हुये उन्हें रत्न उपहार स्वरूप दिये। कौशल्या आदि ने उन्हें अपने पुत्रों के विवाह के अवसर पर प्रीति पूर्वक उपहार एवं भोजन आदि दिया।

एक बार सीता ने अपने प्रासाद के कक्ष से पुरी का अवलोकन करते हुये पुरी की वैकुण्ठ-धाम से तुलना की। दोनों ने सुखपूर्वक रात्रि व्यतीत की। प्रातः होने पर श्रीराम ने नित्य क्रिया के पश्चात् राज-कार्य में पिता का सहयोग किया एवं सीता ने स्नानादि के पश्चात् सासों को प्रणाम किया एवं रानी कौशल्या के पास गईं।

अ. ६६

श्री राम की माता ने सीता से अत्यन्त प्रसन्न-भाव से पुत्रों के सहित राजा दशरथ, ऋषियों एवं विप्रों हेतु भोजन बनाने एवं उन्हें भोजन कराने के लिये कहा। सीता ने अपनी बहनों के साथ भोजन बनाया एवं भगवान् हरि को भोग लगाकर राजा दशरथ, उनके पुत्रों, गुरूजनों आदि को भोजन के लिये बुलाया एवं सभी को प्रेम पूर्वक भोजन कराया। राजा दशरथ ने गुरुओं के परामर्श पर सीता को चूडामणि संज्ञक मणि प्रदान किया जो उन्हें इन्द्र से प्राप्त हुआ था। इसके पश्चात् सीता ने अपनी सासों एवं दास-दासियों आदि सभी को प्रीति-पूर्वक भोजन कराया एवं अन्त में बहनों के साथ स्वयं भोजन किया। सीता की पाकशाला में सदा अन्नपूर्णा का वास होता है।

अ. ६७

शौनक ऋषि ने श्रीराम एवं सीता के कथा के श्रवण-लोभ से उनसे और राम-चरित सुनाने की प्रार्थना की।

कथा को आगे बढ़ाते हुये सूत ने कहा कि एक बार सीता ने श्रीराम जी से सरयू नदी के उत्तर तीर पर अपनी बहनों, सखियों एवं भाइयों के साथ विहार हेतु इच्छा प्रगट की। श्रीराम ने उनको स्वीकृति देते हुये अपने पिता से कहा कि आपकी बहुयें एवं मिथिला से आये लोग अयोध्या के चारों ओर स्थित सभी तीर्थों का दर्शन करना चाहते हैं। राजा दशरथ से आज्ञा पाकर श्रीराम ने लक्ष्मण, भरत एवं शत्रुघ्न तथा वीरों एवं सैनिकों के साथ तीर्थयात्रा हेतु प्रस्थान किया। जानकी अपने बहनों एवं अन्य स्त्रियों के साथ शिविका में आरूढ थीं एवं रामादि गजादि पर आरूढ थे। सभी सरयू तट पर पहुँचे। इसके पश्चात् सभी भाई अपनी-अपनी पत्नियों के साथ जल-पोतों पर सवार हो गये। मजादि पशु एवं अन्य स्त्री-पुरुष महापोत पर सवार हो गये। रामादि भाई यात्राकाल में सरयू तट-स्थित तीर्थों

का परिचय देना प्रारम्भ करते हैं।

प्रथमतः लक्ष्मण सहस्रधारा तीर्थ का परिचय देते हैं जिसके पश्चिम में राजतीर्थ उसके मध्य में पापमोचन तीर्थ तथा पूर्व में स्वर्ग द्वार है। यहाँ सरयू जल में लक्ष्मण शेष रूप में निवास करते हैं एवं सदैव स्नान हेतु यहाँ आते हैं। यहाँ प्रति वर्ष आना चाहिये। इस स्थान का महत्त्व श्रावण मास के शुक्ल पक्ष की पञ्चमी तिथि को अधिक होता है। यहाँ शेष रूप लक्ष्मण की पूजा एवं उनके निमित्त दानादि करना चाहिये।

इसके पश्चात् श्रीराम स्वर्गद्वार का परिचय देते हैं, जो अगणित तीर्थो का फल प्रदान करती है। यहाँ स्नान-दान आदि का अत्यधिक महत्त्व है। इसके पश्चात् नावें सरयू नदी के उत्तरी तट पर लगीं।

अ. ६८

सभी नाव से उतर कर पार्वती सर के पास गये जहाँ महादेव सदैव पार्वती के साथ निवास करते हैं। वहीं एक आश्रम देख कर श्री राम ने अपने सैनिकों एवं भाइयों के साथ विश्राम का मन बनाया एवं कई पटवेश्म (टेन्ट) लगवाया जिसमें श्री राम, उनके भाई तथा स्त्रियों ने विश्राम किया। इसके पश्चात् पर्वतीय तडाग में स्नान करने के पश्चात् पार्वती सहित शिव का पूजन हुआ। सभी ने भोजन आदि के पश्चात् नृत्य, गीत, वाद्य एवं हरि कथा सुनते हुये रात्रि जागरण किया। अर्ध-रात्रि बीत जाने पर वहाँ पार्वती एवं देव-गणों के साथ शिव प्रगट हुये। श्री राम ने सीता के साथ एवं अपने भाइयों तथा भ्रातृ-पत्नियों के साथ शिव का पूजन किया। भगवान् शिव ने श्री राम को साक्षात् नारायण एवं सीता को लक्ष्मी बताते हुये उन्हें संसार-सागर के पार कराने वाला कहा। श्री राम नाम लेने से मनुष्य मुक्त हो जाता है। उन्होंने श्रीराम से प्रार्थना की वह सदा सीता के साथ उनके हृदय में निवास करें। भगवान् शिव काशी में श्रीराम के नाम का दान करते हैं। इसके पश्चात् भगवान् शिव पार्वती एवं गणों के साथ अन्तर्धान हो गये। यह सब देखकर एवं सुनकर सभी नर-नारी आश्चर्य में पड़ गये एवं स्वप्न में उन्हें नागशय्या पर शयन किये श्रीराम का सीता के साथ दर्शन हुआ, जिनकी स्तुति शिवादि देव गण कर रहे थे। ह्री, कीर्ति, सावित्री, भू देवी, रति एवं उमा उनके पैर दबा रही थीं। पुरवासियों ने अपने आप को भी वैकुण्ठ धाम में देखा।

अ. ६९

आधा पहर रात्रि शेष रहने पर वाद्य-वादकों ने आनक-वाद्य प्रस्थान करने हेतु एवं समय की सूचना देने हेतु बजाया। सभी सैनिक एवं सेवक उठ गये एवं पशुओं को अन्नादि दिया। इसके पश्चात् वन्दि-जनों ने स्तुति पाठ करके श्रीराम एवं सीता को तथा अन्य भाइयों को जगाया। सभी ने उठकर नित्यक्रिया से निवृत्त होकर उत्तर दिशा की ओर प्रस्थान किया।

चलते-चलते सभी मनोरमा नदी के किनारे पहुँचे। सभी ने मनोरमा के जल में स्नान किया सीता एवं राम ने नदी में जल विहार किया। यह स्थान उद्दालक ऋषि का यज्ञ स्थान था। यहाँ सबने स्नान, दान एवं भोजन किया।

अ. ७०

श्रीराम के मित्र निषाद राज गुह ने एवं सेवकों ने वन-क्षेत्र को साफ कर दिया एवं वन्य-जीवों को ढक्का-वाद्य बजा कर भगा दिया। इसके पश्चात् सीता के साथ श्रीराम एवं सभी वन में विहार हेतु प्रविष्ट हुये। वहाँ ६ ऋतुएँ उनके विहारार्थ उपस्थित हुईं। सभी वधुएँ अपने-अपने पति क साथ वन के अन्य भागों में विहार हेतु चली गईं। सीता एवं राम ने पुष्पादि से क्रीडा की। सांयकाल होने पर सभी भाई अपनी-अपनी पत्नियों के साथ शिविर लौट आये।

अ. ७१

प्रातः काल सभी उठ कर मनोरमा नदी के भूमि-भाग का अवलोकन करते हुये मख-स्थान पर पहुँचे। उस तीर्थ पर स्नान, दान एवं भोजन करने के पश्चात् आगे बढ़े। मार्ग में एक रमणीय सरोवर दिखाई पड़ा। उसका नाम पूछने पर सुमन्त्र ने उसका इतिहास सुनाया।

इस सरोवर के पास उग्रतपा नामक ब्राह्मण ने स्वर्ग-प्राप्ति हेतु तप किया था। उनके तप को भंग करने के लिये इन्द्र ने पाँच वेश्याओं को भेजा। उनके आलिंगन से ऋषि ने क्रुद्ध होकर उन्हें बड्वा होकर वही रहने का शाप दिया और कहा कि इस तडाग की प्रसिद्धि लोक में पञ्चाश्वा तडाग नाम से होगी। उनके शाप-मोचन का उपाय श्री राम एवं सीता के अवलोकन से होगा। ऐसा सुन कर श्रीराम ने करुणा करके वहाँ निवास किया एवं सीता के साथ सरोवर पर पहुँचे तथा सीता से उनके शाप की चर्चा करते हुये उनके शाप निवारण के लिये कहा। सीता की दृष्टि पड़ते ही वे अश्वा रूप त्याग कर सुन्दर स्त्री बन गयीं एवं श्रीराम एवं सीता को प्रणाम करते हुये विमान पर आरूढ़ होकर स्वर्ग-लोक चली गईं। तभी से यह तडाग तीर्थ हो गया वहाँ स्नान-दान से शाप मोचन होता है। इसके पश्चात् सीता ने श्रीराम से प्रार्थना करके वहाँ एक कुल्या (नहर) बनवाया जिसे राम रेखा तीर्थ कहते हैं। वहाँ स्नान-दान से पाप क्षीण होते हैं।

अ. ७२

वहाँ रात्रि व्यतीत कर अगले दिन पुनः सरयू नदी पार कर उस स्थान पर पहुँचे जहाँ स्वयं बिल्वहरि निवास करते हैं। उस स्थान पर सीता को देखने की इच्छा से ग्रामवधुयें पहुँची। सीता से मिलकर एवं उनसे बातचीत करने के पश्चात् वे स्त्रियाँ प्रणाम कर

अपने-अपने घर गईं। उन स्त्रियों को सीता ने पर्याप्त वस्त्राभरण श्रृंगार सामग्री आदि दिया। अतः वह स्थान मण्डन नाम से लोक में प्रसिद्ध हुआ।

अगले दिन प्रातः स्नानादि के अनन्तर बिल्वहरि की पूजा कर श्रीराम नन्दिग्राम पहुँचे। यह क्षेत्र तमसा एवं सरयू नदी के मध्य में स्थित है एवं यहाँ का जल गंगा जल के समान पवित्र है। नन्दिग्राम में निवास एवं रात्रि जागरण के पश्चात् भरत की पत्नी माण्डवी ने अपने पति से यह इच्छा प्रकट की कि यहाँ वे अपने नाम से एक कुण्ड बनवायें। श्रीराम की आज्ञा से भरत ने वहाँ एक सुन्दर पद्म एवं पशुपक्षियों से युक्त 'भरत कुण्ड' बनवाया। यह स्थान नन्दिग्राम के दक्षिण एवं गयाकूप के उत्तर है।

अ. ७३

स्नान दानादि के पश्चात् श्री राम अपने परिवार एवं सैनिकों आदि के साथ रमणक वन पहुँचे। वहाँ रमापाद नामक कोई वृद्ध महामुनि निवास करते थे। पुष्प-चयन करते समय सीता को वासन्तिका नामक सखी ने उन्हें देखा एवं उन्हें प्रणाम करके सीता से उनके दर्शन के लिये कहा। सीता राम के साथ रमापाद मुनि के दर्शन हेतु पहुँची। सीता ने नूपुर की ध्वनि सुनकर योगिराज ने अपने नेत्र खोले एवं नारायण एवं लक्ष्मी को श्रीराम एवं सीता के रूप में देखकर उन्हें प्रणाम किया एवं जानकी देवी की लक्ष्मी के रूप में स्तुति करने लगे। उनकी स्तुति से प्रसन्न होकर सीता ने उन्हें आशीर्वाद दिया कि जो कोई आपके द्वारा उक्त इस स्तुति का पाठ एवं श्रवण करेगा उसे मैं सम्पत्ति प्रदान करूँगी। इसका पाठ करने वाला सुख, सौभाग्य युक्त, नीतिमान, बुद्धिमान, पुत्रवान, गुणवान, श्रेष्ठ एवं भोक्ता होगा एवं यह स्तुति महादारिद्र्य का नाश करेगी।

इसके पश्चात् रमा वन में रात्रि निवास कर एवं प्रातः काल रमातीर्थ में सरयू नदी में स्नान कर श्री राम ने अपने परिजनों के साथ अयोध्या के लिये प्रस्थान किया एवं सरयू तट पर गुप्तहरि तीर्थ पहुँचे। उस तीर्थ का माहात्म्य बताते हुये उन्होंने कहा कि पूर्व काल में यहाँ भगवान् विष्णु ने दैत्यों के विनाश एवं देवों के विजय हेतु उग्र तप किया था। तब से इस स्थान का नाम गुप्त हरि पड़ा। इसके पश्चात् सभी अयोध्या में अपने अपने घर पहुँचे। सभी भाइयों एवं उनके वधुओं ने राजा दशरथ एवं सभी माताओं को प्रणाम किया एवं अपने-अपने भवनों में गये।

अ. ७४

शौनक ऋषि के पूछने पर सूत ने अशोक वनिका संज्ञक उपवन में सीता एवं राम के विहार का वर्णन किया। इसी प्रसंग में उन्होंने एक घटना का वर्णन करते हुये बताया कि एक बार जानकी देवी ने पुष्पमाला बना कर श्रीराम को पहनाया एवं स्वयं भी पहना और अपना प्रतिबिम्ब श्री राम के कण्ठ में धारण किये गये कौस्तुभ मणि में अपना सुन्दर

प्रतिबिम्ब देखा। उनके मन में आशंका हुई कि श्रीराम ने अपने मन में किसी और स्त्री को बसा रखा है यद्यपि वह एक पत्नी व्रत हैं। वह मान कर के अपनी सखी सुभगा के साथ वहाँ से अन्यत्र चली गयीं। अन्य सखियाँ भी उनकी सेवा एवं प्रसाधन में लग गई किन्तु उन्हें कुछ भी अच्छा नहीं लग रहा था। उन्होंने सबको मना कर दिया। इस पर सुभगा ने उनसे इसका कारण पूछा। उन्होंने अपने मन का संशय बताया। सुभगा ने हँसते हुये उनसे कहा कि ऐसा मत सोचिये। आप अपने आपको शीशे (आदर्श) में देखिये आपको वैसी ही स्त्री दिखाई पड़ेगी जैसी आपने श्रीराम के कौस्तुभ में देखा। ऐसा ही दिखाई पड़ने पर उन्हें अपने पति पर शंका करने का कष्ट हुआ। दुःख से अभिभूत होने पर उन्होंने कहा कि बिना दोष के पति पर आरोप लगाने के दंड स्वरूप उन्हें पति-वियोग निश्चित् ही प्राप्त होगा। इतने में श्रीराम की बुद्धिमति विमला संज्ञक सखी ने जाकर श्रीराम से सीता की व्यथा बताई। श्रीराम सीता के पास पहुँचे। सीता ने उनसे अपनी भ्रान्ति बताई एवं दुःख व्यक्त किया। श्री राम ने उनसे अपनी कहा कि तुम तो सदा ही मेरे हृदय में रहती हो। इसके पश्चात् सभी सखियों ने नृत्य, गीत एवं वाद्य आदि से उनका मनोरंजन किया।

अ. ७५

इस अध्याय में श्री राम एवं सीता के तीर्थाटन का वर्णन प्राप्त होता है। एक बार श्री राम सीता के साथ शेषाचल संज्ञक रमणीय पर्वत के पास पहुँचे। उस पर्वत के समीप तिलोत्तमा कुल्या थी। उसके पूर्व-भाग में विद्या संज्ञक पीठ, दक्षिण भाग में गणेश कुण्ड है। वहाँ शेषाचल पर्वत पर शेष का सर्वदा निवास रहता है। वहाँ राम एवं सीता ने सखियों के साथ क्रीडा की। दोनों ने हिन्डोले में बैठकर झूला झूलने का सुख उठाया। उस समय शीतल, मन्द एवं सुगन्ध वायु बह रही थी मेघ फुहारें बरसा रहे थे एवं देव पुष्प-वर्षा कर रहे थे।

इसके पश्चात् सीता की सखियों ने सीता का शृंगार किया। सीता एवं राम ने एक दूसरे का शृंगार करते हुये आपसी प्रीति का सुख उठाया।

अ. ७६

एक बार कार्तिक मास में दीपावली एवं तुलसी-पूजन का उत्सव मनाया गया। राम ने सीता के साथ द्यूत-क्रीडा की। सीता ने श्री राम को जुये में हरा दिया। सीता से उन्होंने पूछा कि तुम्हें क्या चाहिये। सीता ने प्रत्युत्तर में उनसे उनका मन माँगा। सीता को राम ने प्रेम-पूर्वक प्रत्युत्तर दिया। इसके पश्चात् राम ने क्रीडा में सीता को जीता। सीता ने पराजय के बदले सर्वदा के लिये आज्ञाकारी सेविका होने का वचन दिया। द्यूत क्रीडा के पश्चात् सीता एवं राम ने गुप्तहरि तीर्थ की ओर प्रस्थान किया। इस तीर्थ के दर्शनमात्र से समस्त पापों का क्षय होता है। वहाँ सीता एवं उनकी सखियों के साथ कल्पवास किया।

वहाँ पूर्णमासी को स्नान-दान के पश्चात् स्वर्ग द्वार तीर्थ पहुँचे एवं वहाँ स्नान तथा दान दिया एवं ब्राह्मणों की स्तुति एवं पूजा की। ब्राह्मणों ने उन्हें नारायण एवं लक्ष्मी का स्वरूप मानते हुये आशीर्वाद दिया कि जो कोई भी आप दोनों का पूजन एवं ध्यान करेगा वह इस लोक में कीर्ति एवं अन्ततः उत्तम लोक को प्राप्त करेगा। इसके पश्चात् सीता एवं राम अपने प्रासाद लौट आये।

अ. ७७

फाल्गुन मास में सीता एवं राम ने भावुक भक्तों को सुख प्रदान करने वाली अनेक क्रीडायें कीं। सूत ने शौनक ऋषि के प्रश्न करने पर सीता एवं उनकी सखियों की होलिका-क्रीडा का वर्णन किया। उनकी सखियों ने सीता एवं श्रीराम के सम्मुख नृत्य एवं गायन प्रस्तुत किया। उन्होंने लाल रंग के जल को एक दूसरे पर डाला। सीता ने कनक पिचकरी से श्रीराम पर रंग डाला तथा राम ने उन्हें रंग-कुण्ड में वस्त्र सहित उन्हें नहला दिया। पुनः दोंनों ने एक साथ रंग भरे कुण्ड में क्रीडा की। इसके पश्चात् बाहर निकल लाल चूर्ण (अबीर-गुलाल) लगाया। सखियों ने भी उन्हें लाल चूर्ण लगाया। इसके पश्चात् वे काजल लेकर श्रीराम की आँखों में लगाने के लिये उद्यत हुई। श्रीराम ने विचार किया कि मुझे 'निरंजन' कहा जाता है। यदि इन्होंने मुझे अंजन लगा दिया तो मेरा नाम 'साञ्जन' हो जायेगा। यह अञ्जन तो मुझे मन्थरा के मुख पर लगा कर उसको कलुष करना है। परिहास हेतु श्रीराम हँसते हुये वहाँ से भाग खड़े हुये एवं कैकेयी के भवन मे प्रविष्ट हो गये। जानकी भी अपनी सखियों के साथ वहाँ पहुँची। श्री राम कैकेयी के भवन में जाकर छिप गये। कैकेयी ने भी उन्हें प्रेम से छिपा लिया। किन्तु मन्थरा ने उन्हें राम का पता बता दिया। रानी कैकेयी उससे रुष्ट हो गईं एवं उन्होंने सीता से मन्थरा को ही रंगने को कहा। उसे रंगने के बाद पुनः सखियाँ श्रीराम की आँखों में जो काजल लगाने को उद्यत थी, मन्थरा के कपोलों पर मल दिया एवं उसे दर्पण दिखाया। मन्थरा अत्यन्त लज्जित होकर एक ओर छिप कर बैठ गयी। इसी बीच में श्रीराम कैकयी के भवन से निकल कर अपनी माता के भवन में पहुँचे एवं रंग चुवाते वस्त्रों से अपनी माँ की गोद माँ-माँ कहते हुये उनकी गोद में घुस गये। माता ने प्रेम पूर्वक उनके मुख को पोछते हुये जानकी एवं उनकी सखियों को पिचकारी के साथ देखा। सीता सास को देखकर लज्जित हो गयीं। कौशल्या ने उन्हें रोका एवं प्रसन्न भाव से उन्हें अपने पुत्र की ओर से वस्त्राभरण प्रदान किये। इसके पश्चात् माता की आज्ञा से अपने भवन गये। साथ में सीता एवं उनकी सखियाँ भी गईं। इस प्रकार फाल्गुन मास में सीता एवं राम की क्रीडा हुई।

अ. ७८

ज्येष्ठ मास की शुक्ल पक्ष की दशमी को दशहरा कहा गया है। यह दश पापों को

हरण करती है अतः इसे दशहरा कहा जाता है। ग्रीष्म ऋतु में (ज्येष्ठ मास में) श्रीराम ने सीता के साथ सरयू नदी में पोत द्वारा जल विहार का मन बनाया। उनके साथ सीता जी की सखियाँ भी गयीं। उन्होंने साथ गये लोगों को सरयू नदी के किनारे अनेकों प्रतिसीर (कपड़े के पर्दों से निर्मित कक्ष, टेन्ट हाउस) स्थापित कराने का आदेश दिया। मार्ग में दीर्घिका, पद्मों, भ्रमरों एवं पुष्पादिकों की शोभा देखते हुये श्रीराम एवं सीता अपने साथियों के साथ सरयू तट पर पहुँचे। सरयू नदी दुर्ग के पूर्व दिशा में स्थित है। यहाँ का तट सोपान से युक्त है तथा नदी का जल घड़ियाल आदि रहित एवं शुद्ध है। वहाँ वाहन से उतर कर तथा पोत में सवार होकर सरयू नदी में विहार करने लगे। इसके पश्चात् नदी तट पर पहुँच कर नदी से किनारे की ओर आती हुई सीता को राम ने देखा एवं हाथ बढ़ा कर उन्हें सहारा दिया। नदी से निकलती सीता ऐसी प्रतीत हुईं मानों समुद्र-मन्थन के पश्चात् लक्ष्मी जल से प्रगट हो रही हों।

इसके पश्चात् ब्राह्मणों को दानादि देकर वाहन में बैठकर श्रीराम चन्द्र सीता एवं साथियों के साथ अपने भवन गये।

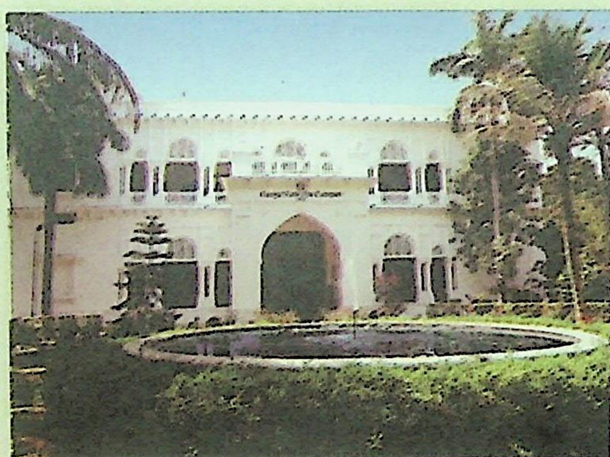
अ. ७९

इस प्रकार रमापति राम ने अपने माता-पिता भाइयों, पुरवासियों, सेवकों एवं साथियों को सदैव प्रसन्न रखा। साकेत नगर रत्नादिकों से युक्त था एवं अयोध्या पुरी आदि काल से 'सत्या' एवं 'विमला' नाम से प्रसिद्ध रही है। यहाँ राजभवन रत्नादिकों से विभूषित था एवं नगर में रत्न मण्डप, उत्तम आवास दिव्य प्रकार तोरण, सुवर्ण दुर्ग, रूपा एवं ताम्र के वन प्रकोष्ठ थे। नगर परिखा, आरकूट, सुवर्ण हर्म्य, प्राकार, उपवन, अट्टालिका, रत्न तोरण एवं विभिन्न गृहों से सुशोभित था। इसे विश्वकर्मा ने रचा था। सभी भवन सुवर्ण, रौप्य एवं धातुओं के शृंग से सुशोभित थे। इसमें नील, स्फटिक, वैदूर्य एवं मरकत के तोरण बने थे। नगर में हस्ती, अश्व आदि के चलने योग्य विस्तृत मार्ग, सुन्दर एवं सुसज्जित चतुष्पथ, अनेक कई मंजिलों वाले प्रासाद, पद्म उत्पल आदि से युक्त वापियाँ, विभिन्न देवालय जहाँ मृदङ्ग, वेणु आदि वाद्य बजते रहते थे। विभिन्न प्रकार के ताल, नारियल आदि के वृक्षों से युक्त आराम (बगीचा) थे जहाँ विभिन्न प्रकार के पुष्पों एवं फलों के वृक्ष थे। यहाँ की स्त्रियाँ सुन्दर एवं श्रेष्ठ थीं। ब्राह्मण बृहस्पति के सदृश विद्वान् थे एवं सत्कवियों का आवास था। समृद्ध वणिकों का निवास था। राजभवन श्रेष्ठ अश्वों तथा गजों से युक्त था। अन्तः पुर में श्री राम सदैव सीता के साथ रत्नजटित सिंहासन पर विराजमान रहते थे। उनके निकट सखियाँ, साथी तथा भक्त जन उनकी सेवा में सनद्ध रहते थे। इस रूप में श्रीराम एवं सीता का ध्यान करना चाहिये। योगी जन सत्यानन्द रूप राम का सदैव ध्यान करते हैं। राम शब्द से कहे जाने वाले राम ही पर ब्रह्म हैं। श्रीराम ही माता, पिता, भाई,

तथा परम मित्र हैं। श्रीराम एवं सीता का यह चरित अत्यन्त रमणीय एवं शुभ है, जिसे व्यास से सुनकर शौनक ने सुनाया। इनका चरित सुनने वाले एवं सुनाने वाले दोनों ही धन्य होते हैं। उन्हें यश, आयु पुण्य एवं वंशवृद्धि रूपी फल प्राप्त होता है तथा चतुवर्ग (धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष) की प्राप्ति होती है। वक्ता एवं श्रोता दोनों ही सुख पाते हैं। इस कथा को सुनने के पश्चात् कथा वाचक का यथाशक्ति सत्कार करना चाहिये।

प्रजाओं का सदैव कल्याण हो, राजा का कल्याण हो, साधुजनों, गौवों, ब्राह्मणों एवं भूमि का श्रीपति श्री राम सदैव मंगल करें।







राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्
गङ्गानाथझापरिसरः
चन्द्रशेखर–आजादोद्यानम्,
प्रयागः – 211002





राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्

गङ्गानाथझापरिसरः

चन्द्रशेखर-आजादोद्यानम्,

प्रयागः - 211002